ISSN 0976-8645

जाह्नवी

JAHNAVI SANSKRIT E-JOURNAL

A portal of Sarasvatniketanam

चतुश्चत्वारिंशदङ्के भवतां हार्दं स्वागतम् ।

http://www.jahnavisanskritejournal.in/

सारस्वत-निकेतनाख्या संस्कृतसेवासरणिः पूज्यगुरुपादैः कीर्तिशेषैः राष्ट्राधीशपुरस्कृतैः **देवानन्दझावर्य्यैः** प्रातस्मरणीयैः स्वनामधन्यैः राष्ट्राधीशपुरस्कृतैः **तुलानन्दाऽपरनामनारायणझावर्य्यैश्च** उद्घाटिता विद्यावाचस्पत्युपाधिभाक्-सदानन्दझाऽनुगता एषा सरणिः बिपिनझाद्वारा संस्कृतानुरागिसहयोगैः विविधेषु रूपेषु संस्कृतप्रचार-प्रसाराय सन्नद्धा वर्तते तेषु रूपेषु एवायं प्रबन्धः जाह्नवी संस्कृत ई जर्नलनाम्ना विश्वेऽस्मिन् प्रथितः ।

अस्मद्विषये

Sl	Point	Detail
1	Name	Jahnavi Sanskrit E-Journal जाह्नवी संस्कृत ई-जर्नल
2	Uniqueness	1. Ever First Sanskrit E-Journal worldwide. 2. Strict review process (in PRACTICE) 3. UNPAID (Free of Cost) 4. To Promote Quality Research. 5. Reviewers/Editors from foreign (Citizen)
3	Distribution (Subscribers)	Worldwide (visit SID detail on the Web)
4	Website (URL)	http://www.jahnavisanskritejournal.in/
5	Frequency	Quarterly
6	Area	Indology
7	Language	Sanskrit, Hindi, and English
8	Started	20-01-2010
	ISSN-Online (Worldwide)	0976-8645
9	ISSN-Offline (Worldwide)	ID-28413
10	UGC (India)	4109
11	UGC Care (India)	Applied 19/6/2019 Accepted- Jan, 2020
12	Journal Factor (Worldwide)	JF2451
13	RNI (India)	ID 2019097097
14	SCOPUS (Worldwide)	Title registered
15	Contact	jahnavisanskritjournal@gmail.com
16	DOI (Worldwide)	Title registered
17	Copyright (Govt. India) (Paid)	Title registered Under Copyright Act 1957
18	Inaugurations-	• India & Abroad (Atlanta and Darth mouth, MA) • Renowned Scholars/Vice-Chancellors i. e. Prof. H. K Shatpathi, Prof. R. Devanathan, Prof Radhavallabh Tripathi, • It is inaugurated by Different Chairman of Ramakrishna Mission, Sahitya Academy Awardee.

19	**अंकपरिचयः (प्रकृताङ्कस्य)**	**Issue**-44 **Vol**- I **Year**- 11 **DOI**- 30-01-2021 **लोकार्पणकः**:- Prof. Asanga Tilakratne **स्थानम्**-Via G-Meet (Lagama, Darbhanga, Bihar) **प्रतिनिधिः**:- Dr. Ramesh Jha
20	**मुख्यसम्पादकः**	डा. सदानन्द झा (डी. लिट्)
21	**सम्पादकमण्डलम् (प्रकृताङ्कस्य)**	डा. मीनाक्षी डा. सुनील के.एस्. डा. श्लेषासचिन्द्र
22	**प्रबन्धसम्पादकः**	डा. बिपिन कुमार झा
23	**परामर्शदातारः (प्रकृताङ्कस्य)**	प्रो. मुरलीमनोहरपाठकः प्रो. शशिनाथझाः प्रो. ब्रजभूषणओझाः
24	**मुख्यपुनर्वीक्षकाः (प्रकृताङ्कस्य)**	प्रो. पीयूषकान्तदीक्षितः डा. राधामाधवभारद्वाजः डा. सन्दीपसरकारः
25	**सम्पादनसहायकाः (प्रकृताङ्कस्य)**	श्री हाक् छेंखी श्री मोहितमिश्रः सुश्री सुहासिनीपाण्डेय डा. वीणापाणित्रिपाठी
26	**तकनीकिसहायकः (प्रकृताङ्कस्य)**	श्रीमनीषमिश्रः
27	**मीडियाप्रभारी**	डा. रामसेवकझाः डा. नारायणदत्तमिश्रः

विषयसूची

	मुख्यसम्पादकीयम्	डा. सदानन्दझाः
	प्रकाशकीयम्	डा. बिपिनकुमारझाः
	Ceremonial Inauguration of *Jahnavi*: First Sanskrit E-Journal	मान्याः असङ्गतिलकरत्ने
1	कालः कलयतामहम्	प्रो. पीयूषकान्त दीक्षित
2	The Buddhist Logicians and Public Debates: 5th-7th Centuries AD	Dr. Radha Madhav Bharadwaj
3	अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्यसंवर्धने आचार्यरामजीठाकुरस्य योगदानम्	डा. रत्नमोहन झा
4	वैशेषिकदर्शने शब्दस्य गुणत्वसिद्धिः	डॉ. विश्वेशः वाग्मी
5	अमूर्त्त “व्रज” से मूर्त्त ब्रज की यात्रा	डा. मीनाक्षी
6	निरुक्ते व्याकरणांशाः	डा. दिद्दिगि वंशीकृष्णः
7	Cultural and Scientific Evaluation of *Nārikela* (Coconut) in Indian Perspective	Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi
8	An Analysis on Intangible Cultural Heritage Chhau	Atanu Bandyopadhyay
9	साम्प्रतिककाले धर्मशास्त्रस्य प्रासंगिकता	डा. प्रीति पारेश्वरि महान्ति
10	तैत्तिरीयोपनिषद् सम्मत शरीर में अन्नरसमयत्व की अवधारणा	प्रियंका मिश्रा
11	Interpretation of Vedas: Oversee by Time Factor (?)	Dr. Pranati Mohapatra Mishra
12	सम्प्रदानसंज्ञाविचारः	Dr. G.S.V. Dattatreya Murthy
13	The Impact of the Upaniṣad**:** A Formation of Rabindranath's Mind	Sri Gopal Acharjaya
14	Unsung royal poets of Sanskrit from *Saduktikarṇāmṛtam.*	Debobrato Sarkar
15	Swami Vivekananda's Vision on The Social- Religious Aspect of Bharat: An Analysis	Dr. Shlesha Sachindra
16	अथर्ववेदे रसायनविज्ञानम्	वेणुधरदाशः
17	काव्यशास्त्रे प्रयोजनस्वरूपविमर्शः	सोमा प्रामाणिकः
18	संस्कृतसाहित्य में नारियों की स्थिति	डॉ० विवेकशर्मा
19	आधुनिक सन्दर्भ में मानव-जीवन संरक्षण हेतु संस्कृत साहित्य की उपादेयता	डा. गायत्री गिरीश मिश्रा
20	महाभारते युद्धविज्ञानस्य समुन्नतस्वरूपं प्रतिपादितम्	डॉ. प्रसूनकुमारमिश्रः
21	तर्कसंग्रहभाषापरिच्छेदग्रन्थानुसारं कारणस्वरूपविमर्शणम्	Pranabesh Bhattacharya
22	Revisiting Old Values in Indian Education System	Dr. Deepika Pandey
23	Relevance of Yogashastra in Preservation of Human Life	Mrs. Soma Dey

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

मुख्यसम्पादकीयम्

शिवशिरसि वसन्ती संविदानन्दनीरा
हृदयकलुषपुञ्जं प्रक्षिपन्ती विदूरे।
सघनतमसि दिव्यं ज्योतिरालोकयन्ती
प्रसरतु भुवि भव्या भारती कापि दिव्या।।

अये मान्यमान्याः सुरसरस्वतीस्नेहसम्भृतस्वान्ताः शास्त्रविचारपरिशीलनलब्धजनाः भारतीयसंस्कृतसेवा समाराधनरताः शास्त्रसमुत्थसुधारसास्वादकुशलाः गुणैकपक्षपातिनः संस्कृतानुरागिणः पाठकाश्च।

संसारस्य प्रथमान्तर्जालीयसंस्कृतत्रैमासिकजान्हव्याः पत्रिकायाश्चतुश्चत्वारिंशदङ्कमिमं साम्प्रतं द्रुहिणगृहिणीसपर्यारतानां विद्वद्वर्गाणां तत्र भवतां श्रीमतां सकलशास्त्रनिष्णातानां संस्कृतसमाराधनतत्पराणामाचार्याणां करकमलयोः समर्पयन् मोमुद्यते मे मनः।

विदन्त्येव विद्वांसो यदधुना विज्ञानप्रभावात् सम्पूर्णजगति कुटुम्बायमाने अस्याः सुरभारत्या प्रचारप्रसारश्च सुकरः संवृत्तः। एकादशवर्षादधिककालात अस्याः लोकार्पणकार्यक्रमाः देशे-विदेशे अमेरिकास्थ-अटलाण्टानगर्यादिष्वपि कार्यक्रमाः सम्पन्ना अभूवन्।

एतत्परम्परायामस्माकं परमसौभाग्यवशादेव श्रीलंकास्थकोलम्बो-विश्वविद्यालयीय-बौद्धदर्शनविशिष्टप्राचार्य-पदममलङ्कुर्वद्भिः चतुरश्रवैदुष्यमण्डितैः स्वनामधन्यैः प्रो. असंगतिलकरत्ने महोदयैः विविधप्राशासनिककार्यक्रमव्यस्तेनापि पूर्वमेवलोकार्पणकार्यक्रमहेतवे स्वकीया कृपानुमतिः प्रदत्तास्ति एतदर्थं तान्प्रति श्रद्धया स्तवीमि।

इदानीं जान्हव्यामाध्यमेन देशे विदेशे च महत्त्वाधायिनः संस्कृतग्रन्थाः अनूद्यन्ते अभिनीयन्ते प्रचार्यन्ते सम्मान्यन्ते च तत्वान्वेषण पराणामाचार्याणां शोधनिबन्धा प्रकाश्यन्ते च।

प्रकृताङ्के द्वाविंशतिसंख्यकाः शोध-आलेखाः सर्वेपि महत्वपूर्णास्तथापि *कालः कलयतामहम्, अर्वाचीनसंस्कृतसवर्धने रामजीठाकुरस्य योगदानम्, सम्प्रदानसंज्ञाविचारः, वैशेषिकदर्शने शब्दस्यगुणत्वसिद्धिः, अथर्ववेदे रसायनविज्ञानम्, काव्यशास्त्रे प्रयोजनस्वरूप विमर्शः, निरुक्ते व्याकरणांशाः, संस्कृतसाहित्येनारीणां स्थितिरि*त्यादयः सारस्वतसमुपासकानामाचार्याणां मनसि नियतं कवलीकरिष्यति।

जानन्त्येव शास्त्ररसिकाः संस्कृतपत्रिका संचालनकार्यमणिमण्डितव्यालस्य परिष्करणमिवकठिनं तथापि चतुरश्र वैदुष्यमण्डितानां केषाञ्चन राष्ट्रियान्ताराष्ट्रियविशिष्टविदुषां सहयोगमवाप्य सारस्वतरङ्गस्थले सन्ततं नृत्यति।

एतदर्थं तेभ्यः भूयोभूयः कार्तज्ञ्यं प्रकटयति सकलजाह्नवीपरिवारः। एतेषां शोध-आलेखानां सम्पादनं भूरि परिश्रमेण मयाकृतम्। किन्तु मुनीनामपि भ्रमो जायते का कथा माद्दशानामल्पज्ञानाम् एतदर्थ साञ्जलिं त्रुटिनिमित्तकं क्षमां याचे। आशासे पत्रिकेयं संस्कृतसाहित्यसैवकैः विद्वद्भिश्चनूनं समादृता भविष्यति। पार्वतीजानि कृपया जायतां पत्रिकेयं सुरभारती प्रचारप्रसाराय संस्कृतगम्भीरपरिरक्षणाय विदुषां मनोविनोदाय अनुसन्धत्सूनामुपकाराय भारतीयसंस्कृतरक्षणाय मंगलाय चेतिकामये।

श्रुतिध्वनिमनोहरा मधुरसा शुभापावनी
स्मृताप्यतनुतापहृत् समवगाहसौख्यप्रदा
निषेव्य पदपङ्कजा विबुधवृन्दमान्यामला
समस्तजगतीतले प्रवहतदियं जाह्नवी।।

विदुषामनुचरः
झोपाख्यः सदानन्दः
लगमास्थ जे.एन.बी आदर्शसंस्कृतमहाविद्यालयस्य

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021
Since 2010

प्रकाशकीयम्

2007 ई. में 'संस्कृतम्' वेबपटल की शुरुआत संस्कृत हेतु एक नये प्रकल्प के रूप में की गयी। इसने एक अभिनव स्वप्नदर्शन हेतु भूमिका का कार्य किया। 2009 ई. में जो स्वप्न देखा गया था वह स्वप्न कठिन संघर्ष के बाद सरस्वतीपूजा के दिन 2010 ई. में जाह्नवी संस्कृत ई शोधपत्रिका के रूप में साकार हुआ। तदनन्तर यात्रा के विभिन्न स्थानकों में अनेकानेक संस्कृतप्रेमियों का सहयोग मिलता गया और जाह्नवी गंगाप्रवाह के समान अविरल सदानीरा रही।

यह पत्रिका विश्वस्तर पर प्रतिष्ठित हो इसके लिये निर्लेप होकर समस्त मानदण्डों को आत्मसात करने का प्रयास किया गया है। यह एक मात्र पत्रिका रही है जो प्रारम्भ से अद्यतन सम्पादन तथा पुनर्वीक्षण के समस्त मानकों के अनुरूप अत्यन्त गम्भीरता से पालन करती रही है। यह विश्वस्तर पर स्कोपस, जर्नल फैक्टर, ISSN, राष्ट्रीय स्तर पर UGC के साथ-साथ संस्कृतजगत् के द्वारा सर्वथा सर्वदा समादृत रही है।

संस्कृत जगत् में हो रहे गुणवत्तापूर्ण शोधों के लिए समर्पित इस पत्रिका हेतु संस्कृतप्रेमियों के प्रति मैं श्रद्धावनत हूँ जिनके सहयोग से इसकी गुणवत्ता एवं प्रतिष्ठा निरन्तर अक्षुण्ण श्रीमती रही है।

यह संस्कृत पत्रिका उस समय भी अपनी सक्रियता का निर्वहण करती रही जब विश्व महामारी से जूझ कर अपने घरों में सिमट गया था तब **भारत में सर्वप्रथम संस्कृत वेबिनार की श्रृंखला** आयोजित करने का महनीय कार्य का आधार जाह्नवी का पटल ही बना। इसके माध्यम से कई विश्वविद्यालयों एवं संस्थाओं से जुड़कर के ज्ञान प्रवाह का सातत्य निरंतर बना रहा। अब जब वैश्विक परिदृश्य पुन: सामान्य हो चला है तब भी आश्वस्ति का भाव है कि पुनः कोई ना कोई नया सूत्र लेकर पत्रिका संस्कृत जगत् की मूल शास्त्रीय परंपरा को अक्षुण्ण रखते हुए वैज्ञानिक तथा तकनीक जैसे नवीन घटकों का समावेश कर उसे यथावत् अक्षुण्ण बनाए रखने का संकल्प करती है।

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

Ceremonial Inauguration of *Jahnavi*: First Sanskrit E-Journal

मान्याः असङ्गतिलकरत्ने

मुख्यातिथयः पत्रिकालोकार्पणकर्तारश्च, Ph. D Hawai University-USA. आद्यप्रमुखाः बौद्धविभागः, कोलम्बो विश्वविद्यलयः, विजिटिंगप्रो.-नालन्दाविश्वविद्यालय-बुद्धिस्ट-अकादमी-वर्मा-योंसीविश्वविद्यालय-कोरिया-ओतगोविश्वविद्यालय-न्यूजीलैण्डदेशेषु

I consider the kind invitation to inaugurate the 44th issue of *Jahnavi*, the first Sanskrit e-journal in India (or even perhaps in the whole world), a great honour conferred upon me. I thank Dr. Sadanand Jha (PhD, D. Litt.), the editor-in-chief of the journal, for inviting me for this important activity, and Dr. Bipin Kumar Jha of School of Buddhist Studies, Philosophy and Comparative Religions of Nalanda University, Rajgir and Dr. Minakshi Joshi of Department of Sanskrit, Jamia Milia Islamia Central University, New Delhi, two distinguished young Sanskrit scholars, for facilitating the invitation. The inauguration on the 30th January 2021 will be conducted in collaboration with Jagdish Narayan Brahmacarya Ashram Adish Sanskrit Postgraduate and Research College founded in 1964 by the great saint Jagadish Narayan Barhacariji, a residential gurukul funded directly by the Central Government of India.

Jahnavi, started eleven years ago in 2009, in addition to being a pioneering Sanskrit e-journal, is a peer-reviewed quarterly featuring studies in English, Sanskrit and Hindi. It has been approved by the University Grants Commission (UGC) of the country as an academic journal of high quality. Although the journal carries scholarly articles by leading Sanskrit scholars of the country the vision of the journal is futuristic in its emphasis on young Sanskrit scholars providing a forum for them to publish their studies and research. Sanskrit being an essential aspect of the Indian cultural heritage, one cannot overestimate the value of the ancient language, which is also the religious language of Hinduism.

In addition to its religious significance Sanskrit is one of the most methodically arranged languages in the world with the influence of such great grammarians and philosophers of language as Panini, Kathyayana, Patanjali, Bharthrhari etc. Thanks to young scholars associated with the journal, modern information technology has been made to serve this ancient linguistic and cultural heritage. I sincerely wish that journal will be instrumental in disseminating knowledge on Sanskrit all over the world.

I take this opportunity to thank again the editor-in-chief of the journal, its supporting staff and the organizers of this event for inviting me to inaugurate this journal. I wish longevity to the journal to continue to be beneficial for all Sanskrit lovers and scholars for many years to come!

Professor Asanga Tilakaratne, PhD.
Emeritus Professor of Buddhist Studies, University of Colombo, Colombo, Sri Lanka & Editor-in-chief of Encyclopedia of Buddhism, Govt. of Sri Lanka

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

कालः कलयतामहम्

प्रो. पीयूषकान्त दीक्षित
कुलपतिचर- उत्तराखण्डविश्वविद्यालय, हरिद्वार
प्रोफ़ेसर-न्यायवैशेषिकविभाग, श्रीलालबहादुरराष्ट्रिय संस्कृतविश्वविद्यालय, नई दिल्ली

SID- 395345656

Received on-1/7/2021 20:02:45 | **Accepted on-** 26th January, 2021

प्रमुख शब्द- काल , मास, वर्ष, स्वच्छता, आत्मनिर्भरता, स्वास्थ्य

ABSTRACT

The role of time is very important in normal life of every person. There are many words to express this time day to day in our life. Often, we use word Second, Minute, Hour, day, month, year, etc., to convey our view regarding this time which ia called in Indian tradition as Mahakal. There is nothing in this world that is not placed in any particular time. Every person has its own time. We say, everyone was happy in the kingdom of Maryada Purushottam Shriram. The Mahabharata war took place during the reign of Lord Krishna. India became independent in Gandhi's time. India's physical development took place during Nehru's time. Now adays we came to know the importance of self-independence due to this corona time. All these conversations based on time. In this article we discuss this time acccording to Nyaya Philosophy.

शोधसारः

इदानीं घटः, इस समय घट है, इस प्रतीति के आधार पर काल एक स्वतन्त्र द्रव्य सिद्ध होता है वैसे ही परत्व एवं अपरत्व अर्थात् ज्येष्ठत्व एवं कनिष्ठतव का जो लोक में व्यवहार होता है इसके आधार पर भी काल की सिद्धि होती है। कोई व्यक्ति आयु में बड़ा होता है तो कोई उसकी अपेक्षा आयु में छोटा होता है। जब हम विचार करते हैं कि किसी को हम बड़ा या छोटा क्यों कहते हैं? तब यह ज्ञात होता है कि दो व्यक्तियों में जिस व्यक्ति के जन्म लेने के बाद सूर्य की क्रिया अधिक हुई वह ज्येष्ठ या बड़ा है तथा दूसरे व्यक्ति में, जिसका जन्म बड़े व्यक्ति के जन्म लेने के बाद हुआ, सूर्य की क्रियाएँ कम हुईं अतः यह कनिष्ठ या छोटा होता है। यहाँ पर भी व्यक्ति विशेष के शरीर के साथ जो अधिक या कम रवि की क्रिया के सम्बन्ध का ज्ञान होता है वह 'स्वसमवायिसंयुक्तकालसंयोग' रूप परम्परा सम्बन्ध के कारण ही हो पाता है। सूर्य की क्रिया समवाय सम्बन्ध से सूर्य में होती है तथा सूर्य काल से संयुक्त होता है और इस काल का संयोग शरीर से होता है। इस प्रकार बहुत या कम सूर्य की क्रिया से विशिष्ट शरीर के ज्ञान का कारण, इस परम्परा सम्बन्ध, के घटक पदार्थ के रूप में भी काल की सिद्धि हो जाती है।

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

इस प्रकार परत्व अपरत्व बुद्धि का असाधारण-निमित्त काल सिद्ध होता है। परत्व एवं अपरत्व ये गुण हैं जो ज्येष्ठ या कनिष्ठ व्यक्ति के शरीर में समवाय सम्बन्ध से उत्पन्न होते हैं अतः इन दोनों गुणों का समवायिकारण शरीर होता है। इस समवायिकारण में सम्बद्ध होता हुआ कारण, उपर प्रदर्शित सूर्यक्रियासमवायिसूर्य से संयुक्त काल का संयोग होता है। इसी संयोग के आश्रय के रूप में काल की सिद्धि होती है।

वास्तव में क्रिया ही काल की उपाधि है यही कारण है कि कविकुलगुरु कालिदास अभिज्ञान शाकुन्तलम् के मंगलाचरण में अष्टमूर्ति भगवान् शिव की 'ये द्वे कालं विधत्तः' इस वाक्य से उल्लेख करते हैं। यहाँ सूर्य एवं चन्द्रमा को दो काल का कारण बताया गया है। इसी प्रसिद्ध नाटक में महर्षि कण्व के आश्रम में चन्द्रमा एवं सूर्य के अस्त एवं उदय काल का निरुपम निरूपण करते हुए कविवरेण्य कालिदास कहते हैं-

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनां आविष्कृतोरुणपुरस्सर एकतोऽर्कः।
तेजो द्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां कालो नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु।।

इस पद्य में भी महान् दार्शनिक कालिदास न्याय के उस प्रसिद्ध सिद्धान्त की ओर ही इंगित कर रहे हैं जहाँ सूर्य एवं चन्द्रमा के परिस्पन्द को ही, कालसम्बद्ध लोकव्यवहार में असाधारण निमित्त कारण कहा गया है। कोई भी क्रिया जब उत्पन्न होती है तो वह चार क्षणों तक रहती है। प्रस्तुत निबन्ध में इस क्रिया के हर क्षणों के उपाधि का विश्लेषण सूक्ष्मता से किया गया है।

काल का व्यवहार जन समान्य जीवन में करता है। इस काल का कभी हम क्षण के रूप में व्यवहार करते हैं तो कभी दिन, मास, वर्ष, आदि शब्दों से कह कर इस काल का निर्देश करते हैं। कोई भी पदार्थ संसार में ऐसा नहीं है जो काल में पैदा न होता हो। हर व्यक्ति का समय होता है। हम कहते हैं, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के राज्य में सभी सुखी थे। भगवान श्री कृष्ण के काल में महाभारत का युद्ध हुआ। गाँधी के समय में भारत स्वतन्त्र हुआ। नेहरू के समय में भारत का भौतिक विकास हुआ। श्रीलालबहादुर शास्त्री का संक्षिप्त कार्यकाल कई प्रकार से उल्लेखनीय है। श्रीमती इन्दिरा गाँधी के समय में बंगलादेश का निर्माण हुआ। श्री राजीव गाँधी के काल में कम्प्यूटर का भारत में प्रयोग प्रारम्भ हुआ। श्री अटल बिहारी बाजपेई जी के काल में पोखरण में परमाणु परीक्षण सम्पन्न हुआ। श्रीनरेन्द्र मोदी के कार्यकाल में देश में स्वच्छता, आत्मनिर्भरता, स्वास्थ्य के सन्दर्भ में विशेष जनजागरूकता के अभियान चलाए गये। राजमार्गों के निर्माण, धारा 370 का निवारण, नई शिक्षा नीति का निर्माण आदि अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य इन्हीं के कार्यकाल में सम्पन्न हुए।

इस समय कोरोना काल है। आज कल अपने जीवन की रक्षा के लिये नियमित प्राणायाम, योगाभ्यास, व्यायाम अत्यन्त आवश्यक है। इस विपत्ति काल में प्रधान मन्त्री ने ''फिटनेस की डोज आधा घंटा रोज'' ''दवाई भी कड़ाई भी'' आदि नये नारे लोगों को स्वस्थ रखने के लिये दिये। इस समय चीन के साथ लद्दाख में तनाव है। कोरोना के कारण आज कल भारत की ही नहीं अपितु समूचे विश्व की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गयी है। इस कोरोना काल में सम्पूर्ण विश्व में पर्यावरण की

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

दृष्टि से पर्याप्त सुधार देखा जा रहा है। वायु मण्डल प्रदूषण मुक्त हो गया है। नदियाँ स्वच्छ हो गई हैं। इस विपरीत काल में आत्मनिर्भरता का रहस्य लोगों को समझ में आ गया है। इस प्रकार समस्त व्यवहार काल पर ही आधारित होते हैं। इस काल का स्वरूप क्या है। यह प्रश्न सहज ही उत्पन्न होता है। इसका समाधान भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में ''कालः कलयतामहम्''[1] यह कहते हुए स्पष्ट रूप में स्वयं दिया है। इस प्रकार काल भगवान का स्वरूप है यह सिद्ध होता है। महाकाल के रूप में हम भारतीय, भगवान शिव की उपासना भी करते ही हैं।

भारतीय दर्शनों में भी काल की विशेष चर्चा प्राप्त होती है। पदार्थों के विवेचन के लिये भारत में प्रसिद्ध न्याय दर्शन में, इस काल को संसार के सभी पैदा होने वाले पदार्थों का कारण कहा गया है। इस काल को एक एवं विभु अर्थात् सभी जगह रहने वाला व्यापक द्रव्य माना गया है। समस्त उत्पन्न होने वाले जागतिक पदार्थों का आश्रय इस काल को माना गया है। आपस में जब हम किसी को आयु की दृष्टि से बड़ा या छोटा कहते हैं तो यह व्यवहार भी काल के कारण ही होता है। न्यायदर्शन के प्रसिद्ध विद्वान् श्री विश्वनाथ पंचानन भट्टाचार्य हुए हैं। इन्होनें भाषापरिच्छेद नामक ग्रन्थ की रचना की है। इस ग्रन्थ को कारिकावली नाम से भी जाना जाता है। इन्होनें इस स्वरचित ग्रन्थ की स्वयं ही व्याख्या भी की है । इस व्याख्या का नाम न्यायसिद्धान्त मुक्तावली है। इस में काल का निरूपण करते हुए इन्होनें लिखा है-

जन्यानां जनकः कालः जगतामाश्रयो मतः
परापरत्वधीहेतुः क्षणादिः स्यादुपाधितः।।[2]

सभी जन्य पदार्थों का जनक काल है। यह काल जगत का आश्रय माना जाता है। परत्व अर्थात् ज्येष्ठत्व एवं अपरत्व अर्थात् कनिष्ठत्व का जो व्यवहार लोक में होता है उसका कारण भी यही काल है। यह काल एक होने पर भी सूर्य की क्रिया आदि उपाधि के भेद से क्षण दिन आदि अनेक रूप में लोगों के व्यवहार में आता है।

इस कारिका में विश्वनाथ पंचानन भट्टाचार्य ने जन्यानां जनकः कालः इस भाग में काल का लक्षण बताया है। जगताम् आश्रयः मतः इस वाक्य में काल में क्या प्रमाण है इस प्रश्न का उत्तर दिया है। कारिका के तीसरे वाक्य परापरत्वधीहेतुः में भी काल में ही प्रकारान्तर से प्रमाण बताया गया है।

किसी भी पदार्थ का जब हम विवेचन करते हैं तो सबसे पहले उसका लक्षण बाताते हैं। यही कारण है कि काल का लक्षण सर्वप्रथम आचार्य विश्वनाथ पंचानन भट्टाचार्य भी कर रहे हैं। जो भी पदार्थ इस संसार में हैं उनका निमित्त, काल है, इस वस्तुस्थिति को ध्यान में रखते हुए इस काल का लक्षण 'कार्यत्वावच्छिन्नं प्रति निमित्तत्वम्' यह निष्पन्न होता है। न्याय दर्शन के अनुसार काल एक द्रव्य है। चूँकि काल एक विभु एवं नित्य द्रव्य है अतः इसके अवयव नहीं हो सकते। उत्पन्न होने वाले द्रव्यों का समवायिकारण उनके अवयव ही होते हैं। काल अवयव वाला द्रव्य नहीं है अतः इसका समवयिकारण काल नहीं हो सकता है। असमवायिकारण कभी भी द्रव्य नहीं होता है। द्रव्य समवायिकारण ही होते हैं। गुण का असमवायिकारण,

[1] गी. अ.10, श्लो. 30 पृ. 458

[2] कारिकावली पृ. 115

गुण या कर्म होता है। इसी प्रकार कर्म का असमवायिकारण, या तो कर्म होगा या गुण होगा, यह अनुभव के आधार पर सिद्ध होता है। फलतः काल कभी भी असमवायिकारण नहीं हो सकता है। इस प्रकार काल सभी उत्पन्न होने वाले पदार्थों का यदि कारण है तो वह निमित्त कारण ही सम्भव है, यह सिद्ध होता है।

काल स्वरूप, अधिकरण में कोई भी जन्य पदार्थ कालिक सम्बन्ध से उत्पन्न होता है। इस प्रकार न्याय दर्शन के अनुसार 'कालिकसम्बन्धावच्छिन्न कार्यत्वावच्छिन्न कार्यता से निरूपित अधिकरणविधया निमित्तत्व' यह काल का निर्दुष्ट लक्षण सम्पन्न होता है। इस परिष्कृत लक्षण का तात्पर्य यही है कि जो कार्य मात्र की उत्पत्ति में कालिकसम्बन्ध से अधिकरण के रूप में निमित्त होता है वही काल नामक द्रव्य है।

यदि हम यह कहें कि कार्य मात्र के लिये अधिकरण के रूप में जो निमित्तकारण है वह काल है। कालिकसम्बन्ध से यह अंश लक्षण-वाक्य से हटा दें, तो यह काल का लक्षण दिशा नामक द्रव्य में भी समन्वित हो जायेगा। क्यों कि सभी पदार्थ किसी न किसी दिशा में ही अधिकरण के रूप में उत्पन्न होते हैं, लेकिन दिशा में ये सभी पदार्थ दैशिक विशेषणता या स्वरूपसम्बन्ध से उत्पन्न होते हैं। यही काल एवं दिशा में विशेष अन्तर है। इस प्रकार दिशा में काल के लक्षण की अतिव्याप्ति न हो इसके लिये काल के लक्षण में कालिकसम्बन्ध का निवेश किया गया है। यदि काल के लक्षण से अधिकरण विधया यह अंश हटाएँगे तो काल के लक्षण की अतिव्याप्ति इश्वर एवं अदृष्ट में होने लगेगी क्यों कि अदृष्ट एवं इश्वर भी संसार के सभी कार्यों के प्रति कारण तो होते ही हैं, पर ये अधिकरण के रूप में कारण नहीं माने जाते हैं। प्रायः लोग यह व्यवहार करते हैं- भगवान् ही यह कार्य कर सकते हैं, हमारे भाग्य में होगा तो सब कुछ हो जायेगा। इन जनसामान्य के बीच होने वाले व्यवहारों से यह तथ्य अनायास ही सिद्ध होता है।

ऐसे लक्षण के लक्ष्य काल में प्रमाण क्या है? इस प्रश्न का प्रथम समाधान करते हुए आचार्य विश्वनाथ पंचानन भट्टाचार्य ने 'जगताम् आश्रयः' यह कहते हुए जगत के आश्रय के रूप में इस काल को सिद्ध किया। इस का तात्पर्य यह है कि 'सर्वाधारः कालः' अर्थात् संसार के सभी जन्यपदार्थों का आधार काल है इस प्रतीति के आधार पर काल सिद्ध होता है। यदि यह कहें कि इस प्रतीति के आधार पर काल ही क्यों दिशा क्यों नहीं सिद्ध होगी? इस प्रश्न का समाधान करते हुए आगे 'इदानीं घटः' इत्यादि लोक में हो रहे व्यवहार के आधार पर काल को ही सिद्ध करने की बात की गई। इन्होनें यहाँ यह कहा कि 'इस समय घट है' यह बोध या प्रतीति, सूर्य के परिस्पन्द अर्थात् क्रिया को विषय करती है। इस सूर्य के परिस्पन्द का सम्बन्ध, प्रतीति के विषय घट के साथ, काल के बिना सम्भव नहीं है। फलतः घट के साथ सूर्य की क्रिया या परिस्पन्द के परम्परा सम्बन्ध के घटक या कड़ी के रूप में काल की सिद्धि, अनुमान प्रमाण से हो जाती है।

जब भी हम किसी पदार्थ को समय से सम्बद्ध करते हुए इस समय, उस समय, प्रातः काल, सायं काल, आदि वाक् व्यवहार करते है तब इस लोक व्यवहार के मूल में सूर्य की क्रिया ही प्रमुख रूप से होती है। यद्यपि इस काल के लौकिक व्यवहार में घड़ी की सूई, यन्त्रविशेष में रखे बालू जल आदि की क्रिया, शुक्र आदि ग्रहों की क्रिया, भी आधार होती है पर इन सभी व्यवहारों के मूल में सूर्य की ही क्रिया होती है यह सूक्ष्म चिन्तन करने पर सिद्ध होता है। सूर्य से अतिरिक्त इन सभी क्रियाओं में अनेक प्रकार से विविधता है पर सूर्य की क्रिया तो सभी जीवों के लिये एक ही है। सम्भवतः यही कारण है कि अन्य सभी क्रियाओं के होते हुए भी काल गणना का मुख्य आधार सूर्य की क्रिया ही मानी गई है।

आकाश में हो रही वर्तमान सूर्य क्रिया से सम्बद्ध जो भी उत्पन्न या जन्य पदार्थ होता है उसे हम इदानीं या इस समय यह कह कर व्यवहृत करते हैं। यहाँ जब यह प्रश्न होता है कि सूर्य की क्रिया तो बहुत दूर आकाश में स्थित सूर्य में हो रही है वह भूमि पर रहने वाले घट आदि पदार्थ से कैसे सम्बद्ध होती है? तब इस प्रश्न का समाधान करते हुए न्याय शास्त्र के विद्वान् कहते हैं कि सूर्य की क्रिया समवाय सम्बन्ध से सूर्य में है तथा यह सूर्य विभु नित्य एवं एक काल से संयुक्त है और इस काल द्रव्य से, भूमि पर रहने वाल घट भी संयोग सम्बन्ध से सम्बद्ध है। इस प्रकार 'स्वसमवायिसंयुक्तकालसंयोग' रूप परम्परा सम्बन्ध से सूर्य की क्रिया घट आदि पदार्थों से सम्बद्ध हो ही जाती है। फलतः इदानीं घटः इत्यादि प्रतीति के आधार पर सिद्ध इसी काल को संसार के सभी जन्य पदार्थों के आधार के रूप में, सर्वाधारः कालः यह प्रतीति भी विषय करती है यह मानने में लाघव भी होता है।

जैसे इदानीं घटः, इस समय घट है, इस प्रतीति के आधार पर काल एक स्वतन्त्र द्रव्य सिद्ध होता है वैसे ही परत्व एवं अपरत्व अर्थात् ज्येष्ठत्व एवं कनिष्ठतव का जो लोक में व्यवहार होता है इसके आधार पर भी काल की सिद्धि होती है। कोई व्यक्ति आयु में बड़ा होता है तो कोई उसकी अपेक्षा आयु में छोटा होता है। जब हम विचार करते हैं कि किसी को हम बड़ा या छोटा क्यों कहते हैं? तब यह ज्ञात होता है कि दो व्यक्तियों में जिस व्यक्ति के जन्म लेने के बाद सूर्य की क्रिया अधिक हुई वह ज्येष्ठ या बड़ा है तथा दूसरे व्यक्ति में, जिसका जन्म बड़े व्यक्ति के जन्म लेने के बाद हुआ, सूर्य की क्रियाएँ कम हुईं अतः यह कनिष्ठ या छोटा होता है। यहाँ पर भी व्यक्ति विशेष के शरीर के साथ जो अधिक या कम रवि की क्रिया के सम्बन्ध का ज्ञान होता है वह 'स्वसमवायिसंयुक्तकालसंयोग' रूप परम्परा सम्बन्ध के कारण ही हो पाता है। सूर्य की क्रिया समवाय सम्बन्ध से सूर्य में होती है तथा सूर्य काल से संयुक्त होता है और इस काल का संयोग शरीर से होता है। इस प्रकार बहुत या कम सूर्य की क्रिया से विशिष्ट शरीर के ज्ञान का कारण, इस परम्परा सम्बन्ध, के घटक पदार्थ के रूप में भी काल की सिद्धि हो जाती है।

इस प्रकार परत्व अपरत्व बुद्धि का असाधारण-निमित्त काल सिद्ध होता है। परत्व एवं अपरत्व ये गुण हैं जो ज्येष्ठ या कनिष्ठ व्यक्ति के शरीर में समवाय सम्बन्ध से उत्पन्न होते हैं अतः इन दोनों गुणों का समवायिकारण शरीर होता है। इस समवायिकारण में सम्बद्ध होता हुआ कारण, उपर प्रदर्शित सूर्यक्रियासमवायिसूर्य से संयुक्त काल का संयोग होता है। इसी संयोग के आश्रय के रूप में काल की सिद्धि होती है। यहाँ यह प्रश्न होता है कि शरीर के साथ काल के संयोग को असमवायिकारण न मान कर दिशा आत्मा अथवा मन के संयोग को क्यों नहीं असमवायिकारण मानते हैं। इसका समाधान करते हुए यह बताया गया कि इनमें से किसी एक के संयोग को ही असमवायिकारण स्वीकार करने में विनिगमना अर्थात् एक को ही स्वीकार करने में युक्ति न होने से, एक अतिरिक्त काल के संयोग को ही असमवायिकारण स्वीकार करने में लाघव है। एक प्रश्न यह भी किया गया कि परत्व एवं अपरत्व के समवायिकारण शरीर में रहने वाले रूप को ही असमावायिकारण मान लें क्या आपत्ति है? इसका समाधान प्रस्तुत करते हुए कहा गया कि परत्व एवं अपरत्व की उत्पत्ति वायु में भी होती है पर वहाँ रूप को असमायिकारण मानने पर रूप के न होने से वायु में परत्व की उत्पत्ति असमावायिकारण के बिना होने लगेगी फलतः व्यतिरेक व्यभिचार की आपत्ति अपरिहार्य होगी। इस आपत्ति का निवारण करने के लिये परत्व का असमायिकारण काल का संयोग ही मानना समुचित होगा न कि परत्व के समवायिकारण में रहने वाले रूप को

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021
Since 2010

असमवायिकारण स्वीकार करना युक्तियुक्त होगा। यद्यपि इस आपत्ति का निरास रूप की जगह स्पर्श को परत्व अपरत्व का असमवायि कारण मान लेने से हो जायेगा पर पूर्व दर्शित रीति से विनिगमना विरह दोष तो अपरिहार्य होगा ही।

यहाँ परत्व एवं अपरत्व की उत्पत्ति किस वायु में होगी यह प्रश्न नहीं करना चाहिए क्यों कि जैसे पार्थिव शरीर ज्येष्ठ एवं कनिष्ठ होता है वैसे वायवीय शरीर भी प्रेत आदि का लोक प्रसिद्ध है। इन प्रेतात्माओं में भी ज्येष्ठत्व एवं कनिष्ठत्व का व्यवहार होता ही है। प्रायः लोग कहते हुए पाये जाते हैं कि उस बट के वृक्ष पर अत्यन्त पुराना प्रेत है। यह पीपल के वृक्ष वाला प्रेत तो अभी नया है।

यद्यपि परत्व एवं अपरत्व गुण के असमवायिकारण संयोग के आश्रय के रूप में काल की सिद्धि होती है पर भाषा परिच्छेद या कारिकावली में 'परापरत्वधी हेतुः' यह कथन, काल में अनुमान प्रमाण है यह सूचित करने के लिये है। यहाँ परत्व अपरत्व धी का हेतु अर्थात् परत्व एवं अपरत्व की जनक विशिष्ट-बुद्धि का हेतु काल है यह समझना चाहिए। अनुमान का आकार, परत्वजनकम्, बहुतररविक्रियाविशिष्टशरीरज्ञानमिदम्, परम्परासम्बन्धघटकसापेक्षम्, साक्षात् सम्बन्धाभावे सति विशिष्टज्ञानत्वात् तथा अपरत्वजनकम्,स्वल्पतररविक्रियाविशिष्टशरीरज्ञानमिदम्, परम्परासम्बन्धघटकसापेक्षम्, साक्षात् सम्बन्धाभावे सति विशिष्टज्ञानत्वात्, लोहितः स्फटिक इति विशिष्टबुद्धिवत्[3], इस प्रकार जानना चाहिए।

इस अनुमान में परत्व का जनक बहुतर रविक्रिया विशिष्ट शरीरज्ञान, पक्ष है। परम्परासम्बन्धघटकसापेक्षता, साध्य है। साक्षात् सम्बन्ध का अभाव होते हुए विशिष्टज्ञानत्व, हेतु है। लोहित स्फटिक, यह विशिष्ट ज्ञान उदाहरण है। लोहितः स्फटिकः, स्फटिक लाल है, यह ज्ञान, लाल रंग का स्फटिक है इस अर्थ का बोध कराने वाला विशिष्ट ज्ञान है। यहाँ लाल रंग का साक्षात् अर्थात् सीधा समवाय सम्बन्ध स्फटिक मणि के सामने रखे जपाकुसुम नामक रक्त पुष्प में है स्फटिक के साथ, यह लाल या रक्त रूप, स्वसमावायिसंयुक्तसंयोग सम्बन्ध से सम्बद्ध है। हम स्वपद से लाल रूप का ग्रहण करते हैं, इसका समवाय सम्बन्ध से आश्रय अर्थात् समवायी, जपाकुसुम आदि समीपस्थ पुष्प होता है। इसका संयोग भूमि से तथा भूमि से ही संयुक्त स्फटिक भी होता है। इस प्रकार परम्परा सम्बन्ध से लाल रंग से सम्बद्ध स्फटिक मणि हो जाता है। प्रस्तुत सन्दर्भ में इस सम्बन्ध के घटक के रूप में भूमि प्रत्यक्ष दीखती है। इसी प्रकार बहुतर रविक्रिया विशिष्ट शरीरज्ञान 'भगवान् राम का शरीर अपने भाई लक्ष्मण की अपेक्षा बहुत रविक्रिया से विशिष्ट है' इस तरह का लोक में प्रसिद्ध है। यहाँ पर भी रवि में सीधे समवाय सम्बन्ध से रहने वाली क्रिया भगवान् राम के शरीर में स्वसमावायिसंयुक्तसंयोग सम्बन्ध से सम्बद्ध है। पूर्व निर्दिष्ट उदाहरण की अपेक्षा अन्तर मात्र इतना है कि यहाँ रवि क्रिया के समवायी रवि से संयुक्त पृथ्वी न हो कर काल है जिससे भगवान् का शरीर संयुक्त है। इस प्रकार इस परम्परा सम्बन्ध के घटक के रूप में काल नामक द्रव्य की सिद्धि, अनुमान प्रमाण से हो जाती है।

अनुमान प्रमाण से काल के सिद्ध हो जाने के बाद यह सहज प्रश्न होता है कि जब यह काल एक, विभु एवं नित्य है तब इस का क्षण,होरा,दिन,मास आदि अनेक रूप में जन समान्य में व्यवहार कैसे होता है? इस प्रश्न का समाधान प्रस्तुत करते हुए कारिकावली एवं न्यायसिद्धान्तमुक्तावली में विश्वनाथ भट्टाचार्य से स्पष्ट किया है कि यह व्यवहार औपाधिक अर्थात्

[3] तर्कामृतम् पृ. 52

CONTACT US- JAHNAVISANSKRITJOURNAL@GMAIL.COM WEBSITE-JAHNAVISANSKRITEJOURNAL.IN

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 Since 2010

उपाधि के कारण होता है। यहाँ यह भी अवश्य समझ लेना चाहिए कि क्षण,होरा,दिन आदि व्यवहार का विषय भी ये उपाधियाँ ही होती हैं न कि महाकाल।

काल के एक होने पर भी किसी धर्म से विशिष्ट होने के कारण इसे क्षण कहते हैं तथा किन्हीं धर्म विशेषों से सम्बद्ध होने के कारण इस काल का ही, जन सामान्य दिन आदि के रूप में व्यवहार करते है। यह व्यवहार ठीक उसी प्रकार होता है जैसे मनुष्य को जीवन देने वाला प्राण वायु, वास्तव में एक ही होता है पर स्थान विशेष एवं विभिन्न क्रियाओं से विशिष्ट या सम्बद्ध इस एक ही वायु का व्यवहार हम प्राण,अपान, व्यान,उदान एवं समान आदि भिन्न रूप मे करते हैं। मानव शरीर के हृदय देश से सम्बद्ध होने के कारण तथा बाहर से वायु के भीतर की ओर आगमन की क्रिया विशेष के कारण इसे प्राण नाम देते हैं। गुदा स्थान में रहने के कारण तथा अधोगमन क्रिया से युक्त होने के कारण इस प्राण वायु को ही हम, भिन्न अपान नाम से जानते हैं। शरीर में सर्वत्र व्याप्त होने के साथ-साथ सभी नाडी तन्त्रों में रक्त आदि के संचरण में सहयोगी होने के कारण इसी प्राण को समाज में व्यान नाम से पुकारा जाता है। कण्ठ में रहते हुए वमन आदि के समय शरीर में स्थित अन्न जल आदि को बाहर निकालने में सहायक होने के कारण एक ही प्राण वायु को उदान नाम से जानते हैं तथा शरीर के मध्य नाभि देश में स्थित होते हुए जठराग्नि को उद्दीप्त करने में अप्रतिम योगदान करने के कारण एक ही इस प्राण वायु को हम समान संज्ञा से व्यवहृत करते हैं। सूक्ष्मता से विचार करने पर तो इन पाँचों वायुओं में से किसी भी वायु की निर्धारित क्रिया या स्थान में परिवर्तन होने से प्राण हानि होती ही है। फलतः सभी वायु प्राण ही है, यह सिद्ध होता है।

इस समाधान के बाद पुनः यह जिज्ञासा होती है कि इस उपाधि का क्या स्वरूप है? इसके समाधान में विस्तार से उपाधि का स्वरूप इस प्रकार समझाया गया है- पहली क्रिया के पहले क्षण व्यवहार में स्वजन्यविभागप्रागभावावच्छिन्न कर्म उपाधि होता है। इस क्रिया के दूसरे क्षण में जहाँ क्रिया के बाद विभाग उत्पन्न होता है वहाँ पूर्वसंयोगावच्छिन्न विभाग ही क्षण व्यवहार का कारण उपाधि होता है। इसी क्रिया के तीसरे क्षण में जहाँ क्रिया से विभाग होने के बाद पूर्वदेश के संयोग का नाश होता है, क्षणत्वव्यवहार का हेतु उपाधि, पूर्वसंयोगनाशावच्छिन्न उत्तरसंयोग का प्रागभाव माना जाता है। इसी प्रकार इस पहली क्रिया के अन्तिम चैथे क्षण में जहाँ उत्तरदेश के साथ वस्तु का संयोग होता है, क्षणत्व का व्यवहार जिस उपाधि के कारण होता है वह उत्तसंयोगावच्छिन्न कर्म ही है। इस प्रकार किसी भी वस्तु की प्रथम क्रिया, जो चार क्षणों में सम्पन्न होती है के प्रत्येक क्षण में क्षणत्व व्यवहार में हेतु उपाधि काल नहीं अपितु उपर्युक्त कर्म,विभाग, प्रागभाव एवं कर्म ही होते हैं यह सिद्ध होता है। इस प्रथम क्रिया के चार क्षणों में सम्पन्न होने के बाद पाँचवें क्षण में पुनः दूसरी क्रिया इसी क्रम से चार क्षणों में रहने वाली उत्पन्न होती है इस प्रकार यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक आगे की क्रिया रुक न जाये। आइये, अब इन सभी चारो क्षणों में काल के व्यवहार की कारण चारों उपाधियों के सम्बन्ध में विस्तार एवं सूक्ष्मता से विचार कर लेते हैं। पहली क्रिया के प्रथम क्षण में ही रहने वाली उपाधि ''स्व जन्य विभाग के प्रागभाव से अवच्छिन्न-विशिष्ट, कर्म है। यहाँ स्व पद से पहली क्रिया का ग्रहण करना अभीष्ट है। हम सभी जानते हैं कि जब किसी भी वस्तु में क्रिया उत्पन्न होती है तो सबसे पहले उस वस्तु का अपने देश-स्थान, से विभाग अगले ही क्षण में पैदा होता है। यह विभाग जिस क्षण में रहता है उस क्षण में पूर्व देश का संयोग पूर्व में उत्पन्न क्रिया भी होती है। पुनः अग्रिम क्षण-तीसरे, क्षण में पूर्वतः विद्यमान विभाग से पूर्व देश संयोग का नाश उत्पन्न होता है। इस तीसरे क्षण में भी पहले क्षण में उत्पन्न क्रिया, दूसरे क्षण में उत्पन्न विभाग दोनों रहते ही हैं, इस तीसरे क्षण में पूर्व देश का संयोग नहीं रहता है। अगले चतुर्थ क्षण में, क्रियाशील वस्तु का उत्तर-आगे, के स्थान-देश, से संयोग उत्पन्न होता है। इस चैथे क्षण में भी पूर्व क्षणों में विद्यमान क्रिया होती है,

CONTACT US- JAHNAVISANSKRITJOURNAL@GMAIL.COM WEBSITE-JAHNAVISANSKRITEJOURNAL.IN

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

पूर्व में उत्पन्न संयोग का नाश रहता है यह समझ लेना चाहिए। आगे पाँचवे क्षण में पुनः दूसरी क्रिया अगले चार क्षणों में रहने वाली इसी प्रकार उत्पन्न होती है तथा इस क्षण में पहली चार क्षणों में रहने वाली क्रिया का नाश भी हो जाता है, यह विशेष भी अवश्य ज्ञातव्य है।

पहली क्रिया के प्रथम क्षण में इस क्रिया से अगले क्षण में उत्पन्न विभाग का प्रागभाव होता है तथा स्वयं यह क्रिया भी होती है फलतः यह क्रिया या कर्म ''स्वजन्य विभागप्रागभावावच्छिन्न कर्म'' मात्र इस प्रथम क्रिया के क्षण में ही रहने वाली उपाधि सिद्ध होती है। विभाग का प्रागभाव पहली क्रिया के पहले क्षण के पूर्व के क्षणों में भी होता है परन्तु वहाँ इस कर्म के न होने से स्वजन्य क्रिया के प्रागभाव से विशिष्ट कर्म स्वरूप उपाधि नहीं होती है। केवल प्रथम कर्म को भी यहाँ उपाधि नहीं कह सकते हैं क्यों कि यह कर्म प्रथम क्षण में होने के साथ आगे के तीन क्षणों में भी रहता है परन्तु इन दूसरे तीसरे एवं चैथे क्षण में रहने वाले कर्म को क्षणत्व व्यवहार का कारण उपाधि नहीं माना जाता है। विभागप्रागभाव से विशिष्ट कर्म कहने से दूसरे तीसरे एवं चतुर्थ क्षण मे रहने वाले कर्म का संग्रह नहीं होता है क्यों कि विभाग के प्रागभाव से विशिष्ट कर्म पहली क्रिया के प्रथम क्षण में होने वाला ही यह कर्म होता है।

पहली क्रिया के प्रथम क्षण के व्यवहार में कारण केवल विभागप्रागभावावच्छिन्न कर्म ही क्यों न माने यह प्रश्न नहीं करना चाहिए क्यों कि स्व अर्थात् प्रथम क्रिया से जन्य विभाग होना चाहिए यह नहीं कहेगे तो पहली क्रिया के नाश होने के साथ पाँचवें क्षण में जो दूसरी क्रिया उत्पन्न होती है उस क्रिया से दूसरी क्रिया के दूसरे क्षण मे अर्थात् प्रथम क्रिया के छठे क्षण में उत्पन्न विभाग के प्रागभाव से अवच्छिन्न-विशिष्ट कर्म पहली क्रिया के चार क्षणों में रहने वाला कर्म भी हो जायेगा। इस प्रकार इन चार क्षणों में रहने वाला कर्म विभागप्रागभावावच्छिन्न कर्म हाने के कारण क्षणत्व व्यवहार का कारण भी होने लगेगा जो कथमपि अभीष्ट नहीं है। अतः विभाग में स्वजन्यत्व यह विशेषण देना अपेक्षित है। स्वजन्य अर्थात् प्रथम क्रिया से जन्य, विभाग कहने से दूसरी क्रिया से जन्य विभाग के प्रथम क्रिया से जन्य न होने के कारण संग्रह नहीं हो पाता है जिससे चार क्षणों में व्याप्त कर्म में क्षणत्वव्यवहार की आपत्ति निरस्त हो जाती है।
यहाँ यह भी ध्येय है कि स्वजन्यत्व, विभाग में विशेषण न देने पर द्वितीय क्रिया के प्रथम क्षण में भी इस विभाग के प्रागभाव से विशिष्ट कर्म होने से प्रथम क्रिया के प्रथम क्षणत्व के व्यवहार की हेतुता की आपत्ति भी दुष्परिहर होगी। स्वजन्यत्व विभाग में विशेषण देने पर स्वपद से दूसरी क्रिया का ग्रहण कर इससे होने वाली दूसरी क्रिया के दूसरे क्षण में होने वाले विभाग के प्रागभाव से अवच्छिन्न या विशिष्ट स्वपद बोध्य कर्म दूसरी क्रिया के पहले क्षण में होने वाला कर्म ही होगा तथा इसे दूसरी क्रिया के प्रथम क्षण में क्षणत्व के व्यवहार में हेतु मानने में कोई आपत्ति नहीं होती है।

पहली क्रिया के दूसरे क्षण में जहाँ क्रिया के बाद विभाग उत्पन्न होता है वहाँ पूर्वसंयोगावच्छिन्न विभाग ही क्षणत्व व्यवहार का कारण, उपाधि होता है। हमें ज्ञात है कि इस दूसरे क्षण में ही पूर्वसंयोग के साथ-साथ विभाग होता है। अतः इस दूसरे क्षण में ऐसे विभाग को उपाधि मानने में किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं होती है। पहले की भाँति यहाँ भी विभाग में स्वजन्यत्व यह विशेषण देना चाहिए। ऐसा न करने पर दूसरी क्रिया के दूसरे क्षण में भी पूर्वसंयोगावच्छिन्नविभाग के होने से पहली क्रिया के द्वितीय क्षणत्वव्यवहार की आपत्ति होगी। यहाँ यह भी प्रश्न नहीं करना चाहिए कि पूर्वसंयोगावच्छिन्न यह पद क्यों कहें क्यों कि यदि पहली क्रिया के दूसरे क्षण की उपाधि, मात्र स्वजन्य विभाग को मानेगे तो इस क्रिया से दूसरे क्षण में उत्पन्न विभाग, इस दूसरे क्षण के अलावा तीसरे, पूर्व संयोग के नाश क्षण में तथा चैथे, उत्तर देश संयोग के क्षण में

CONTACT US- JAHNAVISANSKRITJOURNAL@GMAIL.COM WEBSITE-JAHNAVISANSKRITEJOURNAL.IN

भी रहता है फलतः इन तीन क्षणों में व्याप्त स्वजन्य विभाग को क्षणत्वव्यवहार की असाधारण निमित्त उपाधि मानने की आपत्ति होने लगेगी। यहाँ पर यह ज्ञातव्य है कि जैसे विभाग से पूर्वसंयोग का नाश होता है और यह विभाग पूर्व संयोग के नाश के क्षण एवं उत्तर देश संयोग के क्षण में भी रहता है वैसे ही संयोग स, पूर्वविभाग का नाश होता है तथा यह पूर्वसंयोग, विभागनाश के क्षण में भी रहता ही है। यही कारण है कि यदि संयोगनाशको गुणो विभागः कहते हैं तो स्वतः विभागनाशको गुणः संयोगः यह भी अनायास ही समझ लिया जाता है।

पूर्वसंयोगावच्छिन्न विभाग, पहली क्रिया के दूसरे क्षण में काल की उपाधि है, इस कथन का तात्पर्य ''स्वजन्य विभाग से नाश्य, संयोग से अवच्छिन्न-विशिष्ट स्वजन्य विभाग'' इस क्षण में काल की उपाधि है, यह समझना चाहिए। ऐसा अर्थ करने से, क्रिया से उत्पन्न विभाग से नाश्य संयोग, इस वस्तु का पूर्वदेश से संयोग ही प्राप्त होगा, न कि इस वस्तु में रहने वाला कोई और संयोग, जो दो या तीन क्षण में रहने वाला हो। ऐसा संयोग, उस वस्तु के साथ देश के संयोग के अतिरिक्त, उस वस्तु में किसी अन्य वस्तु-द्रव्य का संयोग हो सकता है, जो एक क्षण मात्र न रहने वाला हो अपितु दो या तीन क्षण रहने वाला हो उसे भी काल की उपाधि मानने की आपत्ति होने लगेगी। स्वजन्य विभाग से नाश्य, संयोग कहने से ऐसे अन्य दो तीन क्षणों में रहने वाले संयोग नहीं मिल सकेंगे। फलतः इस आपत्ति का अवसर नहीं होगा। स्वजन्य विभाग से नाश्य, संयोग से अवच्छिन्न-विशिष्ट विभाग में यदि स्वजन्यत्व अर्थात् प्रथम क्रिया जन्यत्व, विशेषण नहीं देंगे तो पुनः अन्य दो तीन क्षणों में रहने वाले विभाग को ले कर क्षणत्व व्यवहार की आपत्ति होने लगेगी जिसका परिहार करने के लिये विभाग में भी स्वजन्यत्व यह विशेषण आवश्यक होता है।

पहली क्रिया के तीसरे क्षण में, जहाँ पूर्वसंयोग का नाश होता है, वहाँ क्षणत्वव्यवहार में उपाधि पूर्वसंयोग के नाश से अवच्छिन्न-विशिष्ट उत्तरदेशसंयोग के प्रागभाव को मानते हैं। यहाँ पर भी पूर्वसंयोग के नाश में स्वजन्यविभागजन्यत्व यह विशेषण देना अपेक्षित है। इसी प्रकार उत्तरदेशसंयोग में भी स्वजन्यत्व यह विशेषण देना अपेक्षित है। इस प्रकार उपाधि का स्वरूप ''स्वजन्य विभाग से जन्य जो पूर्वसंयोग का नाश ऐसे पूर्वसंयोग के नाश से अवच्छिन्न-विशिष्ट, स्वजन्य जो उत्तरदेशसंयोग उसका प्रागभाव'' यह निष्पन्न होता है। पूर्व की भाँति यहाँ भी स्वपद से प्रथम क्रिया ही ग्राह्य है। जिस प्रकार द्वितीय क्षण की उपाधि के स्वरूप में स्वजन्यत्व से घटित विशेषणों के न देने से दोष होता था वैसे ही यहाँ भी समझना चाहिए।

यह तीसरे क्षण की उपाधि का स्वरूप वस्तुस्थिति को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किया गया है। जब कभी भी किसी वस्तु में पहली क्रिया होती है तो प्रथम क्षण क्रिया का ही होता है। दूसरे क्षण में क्रिया से विभाग उत्पन्न होता है अतः यह दूसरा क्षण विभाग का होता है। तीसरे क्षण में क्रिया से उत्पन्न विभाग से पूर्व से विद्यमान पूर्वदेश के संयोग का नाश उत्पन्न होता है अतः यह तीसरा क्षण पूर्वसंयोगनाश का क्षण माना जाता है। इस प्रकार यह क्षण पहली क्रिया से जन्य विभाग से जन्य पूर्वसंयोगनाश का क्षण है यह अत्यन्त स्पष्ट है। इस तीसरे क्षण में, चैथे क्षण में उत्पन्न उत्तरदेशसंयोग का प्रागभाव है ही तथा यह उत्तरदेशसंयोग क्रियासे जन्य भी होता ही है। फलतः ''स्वजन्य विभाग से जन्य जो पूर्वसंयोग का नाश ऐसे पूर्वसंयोग के नाश से अवच्छिन्न-विशिष्ट, स्वजन्य जो उत्तरदेशसंयोग उसका प्रागभाव'' यह तृतीय क्षण की उपाधि का स्वरूप सुस्पष्ट हो जाता है।

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

कुछ ग्रन्थों में ‘‘पूर्वसंयोगनाशावच्छिन्न विभाग’’को इस तृतीय क्षण में क्षणत्व व्यवहार का कारण, उपाधि स्वीकार किया गया है। पर ऐसे पाठ को प्रामाणिक नहीं मानना चाहिए क्यों कि वस्तु की क्रिया के हर क्षण में विश्वनाथ पंचानन ने एक ही उपाधि का उल्लेख किया है। यदि क्रिया के तीसरे क्षण की उपाधि उत्तर-संयोगप्रागभाव एवं विभाग दोनों को कहेंगे तो सन्दर्भ या प्रतिपादन क्रम का विरोध होगा। इसके अतिरिक्त, पूर्वसंयोग के नाश की उत्पत्ति के क्षण में क्रिया से उत्पन्न विभाग, जैसे रहता है उसी प्रकार यह विभाग, उत्तरदेश से संयोग के क्षण में भी रहता है क्यों कि उत्तर देश से सेयोग होने के बाद ही विभाग का नाश, इस उत्तरदेश के संयोग से, माना जाता है। इस प्रकार, पूर्वसंयोगनाशावच्छिन्न विभाग, पूर्वसंयोग नाश वाले तीसरे क्षण में तथा उत्तरदेशसंयोग वाले चतुर्थ क्षण में भी रहेगा, परिणाम स्वरूप, दो क्षणों में रहने वाले, पूर्वसंयोगनाशावच्छिन्न विभाग, को उपाधि मानने की आपत्ति, अपरिहार्य हो जायेगी। फलस्वरूप पूर्वसंयोगनाशावच्छिन्न उत्तरसंयोगप्रागभाव को ही उपाधि स्वीकार करना युक्ति युक्त सिद्ध होता है।

यदि ‘‘पूर्वसंयोगनाशावच्छिन्न विभाग’’को भी, इस तृतीय क्षण में, क्षणत्व व्यवहार का कारण उपाधि, स्वीकार करने का विशेष आग्रह हो तो उत्तरदेश संयोग, को विभाग के नाश, का कारण न मान कर पूर्वसंयोग के नाश, को ही विभाग के नाश, का कारण मानना होगा। ऐसा मानते हुए पूर्वसंयोगनाश से विशिष्ट विभाग तीसरे क्षण में ही है यह सिद्ध हो सकेगा। इस तरह, दो क्षण में रहने वाले विभाग के तीसरे क्षण में क्षणत्व व्यवहार में उपाधि की आपत्ति का निरास सम्भव होने से तीसरे क्षण में भी, विभाग को उपाधि मानना युक्ति युक्त हो पायेगा। इस प्रकार हम अन्य ग्रन्थों की मान्यता को भी कथंचित् प्रामाणिक मान पायेंगे।

पहली क्रिया के चैथे क्षण में, जहाँ उत्तर देश संयोग होता है, वहाँ क्षणत्वव्यवहार में, उत्तर देश संयोग से अवच्छिन्न-विशिष्ट कर्म को उपाधि मानते हैं। यहाँ यह प्रश्न होता है कि उत्तर संयोग से अवच्छिन्न या विशिष्ट कर्म तो क्रिया के प्रथम क्षण से लेकर चैथे क्षण तक रहने वाले कर्म है। किसी भी वस्तु में जैसे ही क्रिया उत्पन्न होती है साथ में उत्तर देश संयोग भी होता ही है और ये कर्म एवं संयोग चैथे क्षण तक साथ ही रहते भी हैं। इस प्रकार चार क्षणों में रहने वाले उत्तर देश संयोग से अवच्छिन्न-विशिष्ट कर्म को उपाधि मानने की आपत्ति होने लगेगी। इस आपत्ति का निरास करने के लिये, उत्तरदेशसंयोग में, स्वनाशक यह विशेषण देंगे। ऐसा निवेश करने से स्व अर्थात् क्रिया का नाशक उत्तरदेशसंयोग चैथे क्षण में रहने वाला संयोग ही होगा तथा ऐसे संयोग से अवच्छिन्न या विशिष्ट कर्म केवल चैथे क्षण में ही रहता है फलतः चार क्षणों में रहने वाले कर्म में क्षणत्व की आपत्ति निरस्त हो जाती है। इस प्रकार काल एक ही है पर काल की उपाधियों के अलग अलग होने से इस काल में अनेकत्व का व्यवहार होता है यह तर्क बल से सिद्ध हो जाता है।

इस प्रकार का, उपाधि रूप क्षण महाप्रलय में सम्भव नहीं है जब कि महाप्रलय में भी इसके उत्पत्ति के क्षण का व्यवहार होता है। तात्पर्य यह है कि न्याय दर्शन के अनुसार जन्य भाव का अनधिकरण काल ही महाप्रलय होता है। जब इस संसार में उत्पन्न होने वाले भाव पदार्थ- परमाणु से भिन्न पृथ्वी-जल-तेज-वायु, अनित्य द्रव्यों में रहने वाले गुण, कर्म, नहीं रहते हैं तब महाप्रलय होता है। ऐसी स्थिति में महाप्रलय में कर्म के न होने से क्षणत्वव्यवहार असम्भव ही होगा यह प्रश्न उपस्थित होता है। इस प्रकार क्रियात्मक क्षण लक्षण की अव्याप्ति महाप्रलयक्षण में होगी। यदि यह कहें कि महाप्रलय में क्रिया के न होने से क्षणत्वव्यवहार का नहीं होना अभीष्ट है फलतः अव्याप्ति नहीं है, तो यह नहीं कहा जा सकता क्यों कि महाप्रलय की उत्पत्ति में उत्पत्ति का लक्षण - ‘‘तदधिकरणक्षणावृत्तित्वव्याप्यस्ववृत्तिध्वंसप्रतियोगिताक समयवृत्तित्व’’ का

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

समन्वय न होने से अव्याप्त होने लगेगा। इस उत्पत्ति के लक्षण में तत् पद से, उत्पन्न होने वाले पदार्थ का ग्रहण करना अभीष्ट है। उत्पन्न होने वाले पदार्थ का अधिकरण तथा स्व-उत्पन्न होने वाले पदार्थ, के क्षण में वृत्तित्व एवं समयवृत्तित्व, कालिकविशेषणता अर्थात् कालिकसम्बन्ध से ग्राह्य है। यदधिकरणक्षणावृत्तित्व में रहने वाली व्यापकता एवं यत् समयवृत्तिध्वंसप्रतियोगिता में रहने वाली यदधिकरणक्षणावृत्तित्व की व्याप्यता, दैशिकविशेषणता या स्वरूपसम्बन्ध से अभिप्रेत है।

इस प्रकार 'यदधिकरणक्षणावृत्तित्वव्याप्या यत् समयवृत्तिध्वंसप्रतियोगिता, तस्य तत् समयवृत्तित्वम् उत्पत्तिः' यह उत्पत्ति का अर्थ स्पष्ट होता है। किसी वस्तु की उत्पत्ति का तात्पर्य उस वस्तु के आद्य क्षण से सम्बन्ध से ही होता है। यही कारण है कि 'उत्पत्तिः, आद्यक्षणसम्बन्धः' यह प्रायः विद्वानों द्वारा कहा जाता है। जैसे ही कोई बालक इस संसार में पहले क्षण में माँ के गर्भ से बाहर आता है 'वह इस संसार में उत्पन्न हुआ' ऐसा व्यवहार होता है। कोई वस्तु देश में उत्पन्न होती है साथ ही काल में उत्पन्न होती है। पर उस वस्तु में उत्पत्ति का व्यवहार तो पहले क्षण के साथ सम्बन्ध होने पर ही होता है। यही कारण है कि वस्तु के दूसरे या तीसरे आदि क्षणों में उस वस्तु की उत्पत्ति का व्यवहार किसी को भी नहीं होता है।
इस वस्तुस्थिति को ध्यान में रखते हुए ही उपर्युक्त उत्पत्ति के लक्षण का परिष्कृत स्वरूप विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किया गया है, जहाँ यदधिकरण क्षण का क्षणत्व रूप से प्रवेश है न कि समय के रूप में।

जिस क्षण में कोई वस्तु जैसे घट उत्पन्न होता है उस क्षण में उस वस्तु अर्थात् घट का ध्वंस नहीं रहता है इस वस्तु घट को छोड़ कर अन्य पट आदि का ध्वंस यहाँ रह सकता है तथा इसकी प्रतियोगिता पट आदि में रहेगी। यह प्रतियोगिता जहाँ-जहाँ रहेगी वहाँ-वहाँ उत्पन्न होने वाले घट के अधिकरणक्षणावृत्तित्व भी होता ही है। फलतः तदधिकरणक्षणावृत्तित्वव्याप्य स्व-तदधिकरणक्षण,वृत्ति ध्वंस की प्रतियोगिता हो जाती है। ऐसे प्रतियोगिता वाले समय में वृत्ति घट है, इस प्रकार इस घट में उपर्युक्त समयवृत्तित्व रूप उत्पत्ति का लक्षण समन्वित हो जाता है।

यह उत्पत्ति का क्षणघटित लक्षण, लक्ष्य-महाप्रलय की उत्पत्ति में समन्वित नहीं होगा यदि महाप्रलय में क्षणत्वव्यवहार नहीं मानेगे। अतः इस अव्याप्ति का निवारण करने के लिये महाप्रलय में भी क्षणत्व का व्यवहार मानना होगा जो कि सम्भव नहीं है क्यों कि काल की उपाधि क्रिया, महाप्रलय में अमान्य है।

फलतः इस समस्या का समाधान, उत्पत्ति का लक्षण, क्षण से अघटित ''स्ववृत्तिध्वंसप्रतियोगिकालावृत्तित्वविशिष्टस्ववृत्तित्व'' रूप में स्वीकार कर किया जाता है। इतने के बाद भी यदि महाप्रलय में क्षणत्व व्यवहार मानना ही अभिप्रेत है तो वह ध्वंस से ही उपपन्न किया जा सकता है क्यों कि महाप्रलय में कर्म नहीं होता है। यह ध्वंस-''स्व वृत्तिध्वंसप्रतियोगिप्रतियोगिकयावद्धंस ही होगा। ऐसे ध्वंस से विशिष्ट समय ही महाप्रलय में क्षणव्यवहार का विषय होता है। महाप्रलय में ऐसा समय चरम ध्वंस ही होता है।

वास्तव में क्रिया ही काल की उपाधि है यही कारण है कि कविकुलगुरु कालिदास अभिज्ञान शाकुन्तलम् के मंगलाचरण में अष्टमूर्ति भगवान् शिव की 'ये द्वे कालं विधत्तः' इस वाक्य से उल्लेख करते हैं। यहाँ सूर्य एवं चन्द्रमा को दो काल का कारण

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

बताया गया है। इसी प्रसिद्ध नाटक में महर्षि कण्व के आश्रम में चन्द्रमा एवं सूर्य के अस्त एवं उदय काल का निरुपम निरूपण करते हुए कविवरेण्य कालिदास कहते हैं-

यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनां आविष्कृतोरुणपुरस्सर एकतोऽर्कः।
तेजो द्वयस्य युगपद्व्यसनोदयाभ्यां कालो नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु।।[4]

इस पद्य में भी महान् दार्शनिक कालिदास न्याय के उस प्रसिद्ध सिद्धान्त की ओर ही इंगित कर रहे हैं जहाँ सूर्य एवं चन्द्रमा के परिस्पन्द को ही, कालसम्बद्ध लोकव्यवहार में असाधारण निमित्त कारण कहा गया है।

सन्दर्भग्रन्थसूची

- श्रीमद्भगवद्गीता, प्रकाशकः Indological Book House सन् 1983.
- करिकावली दिनकरी रामरुद्री व्याख्यायुता चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी.
- तर्कामृतम् चषक एवं चषकतात्पर्यटीकासमेतम्, नागप्रकाशन, सन् 2003
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् The Popular Book Store, Tower Road Surat सन् 1916

[4] शा. अं. 4 श्लो. 2 पृ. 78

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

The Buddhist Logicians and Public Debates: 5th-7th Centuries AD

Dr. Radha Madhav Bharadwaj
Associate Professor in History, Deen Dayal Upadhyaya College,
(Univ. of Delhi), Dwaraka, Delhi-110078

SID- -367971235

Received on-10/18/2020 14:32:12 | **Accepted on-** 26th January, 2021

Key words- Philosophy, Tarka, Brahamana, Nagarajuna, Mahayana Buddhist text

Paper presented at the International Seminar at Gautam Buddha University, Gr. Noida, UP, 7TH-9TH Sept.2012

ABSTRACT

This paper is an attempt to review the raging ideological rivalry between the Hindu Brahmanical dialecticians (Nyaya system of Philosophy and the Naiyyayikas) and their Buddhist logician rivals in their writings and public debates about their respective epistemological and ontological teachings and goals. This was done through the method of their respective dialectics and logic called Pramana and Tarka. This will be interesting to see the development of this new trend which sharpened the system of reasoning and public debates in India but also led to much hatred and religious ill will and alleged physical attacks.

The Hindu Brahmana dialecticians developed logic *(Nyaya* Philosophy) for not only enlightening its followers to understand the value of right knowledge for getting material success in this life and hereafter *(Dharmarthakamamokshanam*) but also to launch ideological attack on the Buddhists for some of their principles which denigrated the very basis of Hindu religion and theology. This trend slowly and slowly turned into heated epistemological public debates and hatred against the rival religious sects. The cause of this debate was that one of the intentions inherent in the *Brahmanic* Hindu dialectics was recognized during the 3rd-4th centuries AD. As the Mahayana Buddhist text the *Lankavatarasutra* (about 300 A.D) speaking of the Brahamana dialecticians (*Naiyyayikas*) and Buddhist logicians (*Tarkikas*) says 'How is to be *tarka* (reasoning) corrected and to be? [5] or even earlier in 2nd-3rd century AD Nagarajuna's text on logic the '*Vaidalyaparakarana*' whose very introductory verse says that its purpose is to 'teach the method of debate (*vada*) with a dialectician (*tarkika*)[6] and it aims at a conceited opponent who is eager to

---

[5] Satis Chandra Vidyabhushan (1977, rpt.), History of the Medieval School of Indian Logic, Oriental Books Reprint Corporation, New Delhi, pp. 72-73.

[6] Ole Hotten Pind, Vienna, 'Why the Vaidalyaprakarana Cannot Be an Authentic Work of Nagarjuana', Vienna Journal of South Asian Studies, Vol.45(2001), pp.1-(149-172, Austrian Academy of Sciences Press, Vienna, Austria.)

debate because he fancies himself to be an expert in dialectics (*tarka*).'[7] The first author who wrote a definite work on logic is Vasubandhu, rightly called the father of Buddhist Logic. His work *Vadavidhi* (A Method for Argumentation) gives the definition of *Pratyakasha* (Sense perception) and talks of the defeat situations of the opponents in an argumentation. He is quoted and criticized by Hindu Brahmana dialectician Udyotkara Bhaardwaj in his *Nyayavarttikatika*.[8] But the way the Buddhist Acharya Dignaga (5thcent. A.D) and Acharya Dharmakirti (7th century AD) took this subject up is something to be discussed and appreciated. The way they provided logical criticisms of the views of Hindu Brahmana dialecticians in their texts took the subject, no doubt, to higher level of thought and refined the art and skills of debating in India as respected Acharya Radhavallabha Tripathi in his paper on' Shastrartha' (Debate) puts it that it gave birth to a great tradition of debating and provided a vibrant platform for vigorous exchange of ideas, search for truth and examination of new ideologies challenging the old order' [9] but it is equally true that it also created much hatred and ill will between the two rival group of ontologists and philosophers. We still have legends doing the rounds among some people that at times if the debates took place in private spaces away from the public and if the Brahamana dialectician began to cross the limit of his patience, he allegedly physically hit his rival. The veracity and truth of this blame is a matter of research but this is true that we have several references in both the scriptural as well as poetic texts of the Hindus and the Buddhists where they attack each other with unsophisticated words and look down upon them. We have a few Buddhist icons at the famous Nalanda Archeological Museum near the site of the ancient Nalanda Mahavihar in Bihar where they have been shown to have overpowered the Hindu deities and special mention may be made of the Buddhist deity of Knowledge called *Heruka* who has been shown trampling the head of the powerful and sacred Hindu god Shiva and his spouse Parvati the period of which may be later than the period of Dignaga and Dharmakirti but nonetheless does show the prevailing ideological divide and hatred between the two (this can be testified by visiting the said museum). There was a class who commissioned and financed such projects of icon making and also a class of ideologically dedicated Buddhist artists and iconographers who could create such art objects without fear from the Hindu deities and their adherents. These must have created an atmosphere of hatred and ill will where both indulged in attacking each other and some Hindu Brahmana ideologues might have verbally and physically attacked their Buddhist rivals. This paper is a humble attempt at exploring some aspects of this rivalry where the intellectualism gave way to hatred and competition for one-upmanship and finally verbal attacks on each other but also stray instances of alleged physical attacks on the Buddhist logicians.

---

[7] Y. Kajiyama (ed.), *The Vaidalyaprakaraan of Nagarjuna, Indogaku Shiron Shu, 6-7(1965), 129-155, at p.134. ''* In order to put an end to the conceit of some who is longing for debate *(tarka)*, I shall expound the *'Pounding to Powder' (vaidalya)''.* Also see, Fernando Tola and Carmen Dragonettiin *Nagarjuna's Refutation of Logic* (Nyaya)*—Vaidalyaprakarana, Delhi, 1995 in 'Pind', p.1.*

[8] Rahuala Sankrityayana (ed.) (1935) '*Vadanayaya*', The Journal of the Bihar and Orissa Research Society, Vol. xxi, part, II (Appendix), Patna, Introduction, p.vi.

[9] Radhavallabh Tripathi (Jan.2012), 'Shastrartha: A Living Sanskrit Tradition', in Kalyan Kumar Chakravarti (ed.) Visvavara- Sanskrit For Human Survival, Rashtriya Sanskrit Sansthan, New Delhi, p.77

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

A continuous debate has raged amongst the Nyaya-Vaisheshika and Mimamsa schools of Hinduism, Yogachara/Vijnanavada school of Mahayana Buddhism, and Jainism regarding the true nature of reality or phenomenology and the means of salvation. John Taber, an authority on Kumarila Bhatta's *shlokavarttika* (On Perception) says that the greatest discoveries of Indian Philosophy were achieved in the context of heated highly charged debates. During medieval India debates between the Buddhists and the Hindu Brahmanas were publicly staged, as a form of entertainment. The loosers were compelled to renounce their religion and accept the religion of the victors. Although mutual destruction is usually avoidable but not ruled out. Debate was a way for the adversaries to live in creative tension.[10]

The real cause of epistemological and public debates between the Hindu Brahmana dialecticians and the Buddhist logicians was their difference of opinion about certain ideas pertaining to God (*Ishwar*), soul (*aatmaa*), cause of creation (*Brahmaanda* or *Samsaarotpatti*'s *kaaran*), statements of the *Vedic* sages (*shabda* of the *Aapta Rishsis*) as *pramana* (proofs of cognition about the god, soul, creation, emancipation (*moksha*) and the right knowledge) that will yield success in this life and hereafter. The Hindu Brahmanas believed in, the existence of God and his being the cause of creation, his being eternal and everlasting (*anaadi* and *anant*), the existence of soul and its being eternal (*nitya*).They also believed that the words and statements of the sacred Vedas, which are authorless (*apaurusheya*), beginningless and ever-continuing (*sanatana*) and conceived by the worthy (*aapta*) sages and hence valid source of knowledge (*Pramana*)[11].The Buddhist logicians were opposed to these premises of the Hindu dialecticians and refuted these premises and their sacrifice-based rituals. They didn't believe in the existence of God, soul and God being the cause of creation of this world. Through their most basic and powerful theory of *Pratītyasamutpāda* (theory of dependent origination) (*paṭiccasamuppāda* in Pali) they held that there is cause –effect relationship in the world and whatever has been created or produced has had a cause and the creation gets destroyed and again created and that everything is non-eternal (*sabbam anityam*) and momentary (*kshanik*) because the world is in a constant flux (constantly changing).[12] Karl H. Potter in 'Historical Resume' in his magnum opus work *Encyclopedia* says that 'It appears that Buddhist Logic of a serious sort began with VasubandhU, who was more or less contemporaneous with Vatsyayana; it was developed by Dignaga and Dharmakirti, defended by Santarakshita and Kamlshila, and refined by Ratnakirti and Jnashrimitra, and that this period found constant challenge and response between these philosophers and the Hindu Nyaya-Vaisheshika thinkers.'[13]

We see a series of other significant texts being written in the tradition of Gautama's *Nyayasutra* Udyotkara (Bharadwaj), (550 A.D. from Kurukshetra) wrote his famous *Nyayavarttika* on Vatsyayana's *Nyayabhashya*, a philosophical work of great skill in dialectic, clearly knew of

---

[10] John Taber, (transl. and Commentator) (2005), 'A Hindu Critique of Buddhist Epistemology.The "Determination of Perception'' chapter of Kumarila Bhatta's *Shlokavarttika',* Routledge Curzon, London and New York, Preface, p.xvii.
[11] Rahula Sankrityayayana (1994, reprint), Darshan Digdarshan, Kitab Mahal, Allahabad, pp.744-798
[12] 'Darshan Digdarshan'; Vidyabhushan's 'History of the Medieval School of Indian Logic', pp.80-116; Karl h. Potter (ed.) 1977, Encyclopedia of Indian Philosophies, Vol. II, The Tradition of Nyaya-Vaisheshika up to Gangesh, Motilal Banarsidass, Delhi, historical Resume, pp.4-13; John Taber's 'A Hindu Critique", pp.1-37.
[13] Potter, '*Encyclopedia*', P.4

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

Buddhist logician Dignaga's views and attacked them.[14] In the ninth Cen. AD around 841 A.D.) Vachaspati Mishra of Mithila in today's Madhubani distt.) wrote the famous commentary on *Nyayavarttikatatparyatik*a on Udyotkara and defended the latter and attacked Dharmakirti. Other significant works of this tradition were Nyayamanjari of Jayant Bhatt of Kashmir 10th Cen) and *Nyayakusumanjali* and *Kiranawali* of Udayanacharya of Mithila in today's Samastipur distt. in Bihar) His *Atmatattvavivek* also known as Bauddhadhikkar is another philosophical text written only to downgrade the Buddhist logicians already on their last leg of their glory. This text clearly shows the prevailing ideological hatred between the two rival sects.

Now we try to see the atmosphere of ideological tension and its manifestation in the philosophical texts and also alleged 9physical) attacks on the Buddhist logicians Dignaga, a disciple of the great Buddhist philosopher Vasubandhu, spent his life in writing serious texts like the *Pramaansamuccaya* and winning over his rivals in debates. To quote Vidyabhushan 'at Nalanda, he defeated Sudurjaya and other Brahaman dialecticians and won them over to the doctrine of the Buddha. Dignaga travelled in Nalanda, Orissa, Mahaarshtra and Dakshina (South India) entering everywhere into disputes with controversialists. He attacked his opponents as frequently as he was attacked by them. His whole life was passed in giving blows and receiving counter blows on account of his love of discussion he was called the ''Bull in discussion' (*tarka-pungava*). Even his death didn't end the discussion in which he had been engaged; though he could no longer offer any violence, his opponents continued to fall upon him with force.'[15] Udyotkar calls him ''a quibbler'' (*kutarkika*). Vachaspati Mishra describes him as ''an erring one (*bhrant*) and speaks of his '' blunders'' (*Bhranti*). Kumarila Bhatta and Parathasarathi Mishra turn their arrows against him.[16] There rages a story in Mithial region, an early centre of Hindu logic in Bihar, that since Kumarila Bhatt had defeated and killed (as per the agreement of the debate that whosoever will be defeated will have to choose death as punishment) his Buddhist teacher from whom he had learnt the art of Buddhist logic, did penance by entering smoky fire which burnt him slowly and slowly and thus causing him immense pain. This event was narrated to me by my late Sanskritist father, Shastrachudamani Acharya Braj Mohan Jha Shastri of Government Sanskrit College, Bhagalpur. This still obtains in the said region. The famed Acharya Dharmapala, one time head (sthaviara-elder) of the famous Nalanda Buddhist University is said to have refuted the arguments of the heretics i.e the Hindu dialecticians at a ruined monastery at Kausambi visited by the Chinese intellect seeker Hieun Tsang.[17]

After Acharya Dignaga, the burden engaging in ideological debates and refuting their premises fell on the much talented Acharya Dharamakirti (about 600-660 A.D.), was a gem of Nalanada University. Vidyabhushan says that he challenged the followers of the Kanada system and the Tirtha system of the Vedic Hindus and entered into debates with them which lasted 3 months during which he withstood all his opponents and converted many of them to Buddhism. Upon this the famed Hindu mimamasa philosopher proposed to Dharmakirti that whoever was defeated will

14 Ibid, P.5
15 Vidyabhushan, '*History of the Medieval School of Indian Logic*', pp. 80-81
16 Ibid, p. 81.
17 Ibid, p. 102

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

be killed but the latter didn't want violence and induced the latter to the condition that whoever is defeated would accept the doctrine of the winner. Acharaya Kumarila Bhatt is said to have been defeated and he accepted Buddhism.[18] But Warder says that there are some Brahamana legends of Vedic philosophers like Kumarila defeating Buddhist philosophers in debate and so popularizing Vedism.[19] Warder also says that in fact history would seem to support the Buddhist claim since dharmakirti flourished a little later than Kumarila, refuted his views in his works and established a highly successful school to continue his line of enquiry[20].

Now we come to the claims of Dharmakirti and his brilliant successor Vinita Deva. I am quoting Satischandra Vidyabhushan's 'Indian Logic' as *pramana*. In the Tibetan version of his *Pramanavarttika-vritti* Dharmakirti is described as '' a great teacher and dialectician whose fame filled all quarters of the earth and who was like a lion pressing down the head of elephant-like debators.[21]'' The concluding part of the text *Nyayabindu* says that ''he vanquished the entire Tirthikas as Sakyamuni Buddha had subdued the large army of Mara and the Sun dispels the In the darkness.''[22] His magnum-opus the Pramana-varttika is most difficult in its construction of sentences. It seems that the author wants to put so many ideas of his deep thought in as compact a manner as possible. He was pessimistic about the reception of his own work which is reflected in the last verse of the text and is a kind of teasing challenge as well for the world of intellect from all quarters. He is quoted by none other than Rahula Sankrityayana as to have said that ''My view whose depth has not been reached by the power of mighty brains, whose real purpose has not been perceived even with great efforts and which has not found in this world an appreciator befitting it, will, like the water of the ocean, attain old age within its own confines.'' But his fears were not justified and his works were equally admired both by his followers and foes. *Alamkara-Pariksha-tika*, Acharya Vineet Deva is said to have been 'a lion of speakers confounding the brains of the *Tirthika*-elephants'. He lived in the 7th century A.D at Nalanada.[23] This tradition of ideological rivalry between the two continued till 10th-11th century AD after which the glorious days of the Buddhists were over and were overpowered by the sharp and brilliant Hindu dialecticians who produced better debaters and sharpened their skiils with more refined logic and the use of language through their newly developed methodogy of the '*Navya-Nyaya'* begun by the Hindu philosopher Gangesha Upadhyaya of Mithila in the 14th centuryS) in which they used the concept of '*Avacchedakta*' (limiterness) and the play of language was of major significance which finally outmatched the already demolished Buddhist logicians.

It was perhaps under these circumstances of ideological rivalry and hatred that we also find some Hindu kings oppressing the Buddhists and perhaps also killing many Buddhist monks. Vidyabhushan says that the Chinese knowledge-seeker traveller to India, contemporaneous to Dharmakirti, Yuan Chwang records the oppression of Shashank, the king of Gauda (east Bengal)

---

18 Ibid, p. 104; A.K. Warder (1970) (2004 rpt.), *Indian Buddhism*, p.485
19 Warder, 'Indian Buddhism).
20 Ibid.
21 Vidyabhushan, History of the Medieval… of Indian Logic', p.107.
22 Ibid, p. 116
23 Ibid,p. 121.

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

and a devotee of god shiva. He is said to have burnt the famous Bodhi tree at Bodh Gaya and killed the Buddhist monks in and around Kusinagara.[24] The 9th-10th Century Hindu religious text the *Brihannaradiya Purana* (R C Hazra's 'Studies in the Puranic Records on Hindu Rites and Customs') prohibits a Hindu Brahamana from enter ing the house of a Buddhist even in times of great peril.[25]

In Conclusion we may say that every religion has its Peters and Pauls. Buddhism also had such enlightened intellectual monks. If Anand, Upali, Ashoka, Kanishka, Buddhaghosha were responsible for spreading the message of the Buddha far and wide, Dignaga and Dharmakirti and many other *Vigyanvadin/Yogacarin* logicians (and also the *Madhyamaikas* like great Nagarajuana earlier than them) were responsible for defending the epistemological views of their master, the great T*athagata* Buddha, in times of crises afflicting it during the early medieval times by developing their own system of logic and challenging their equally sharp Hindu *Brahamanica*l dialectician rivals (when they had gone on the offensive) and helping in preserving and spreading their systemic knowledge of social and religio-spiritual life. Here the Buddhist logicians appear to me as the fighters of their faith for they devoted their entire life in writing texts on logic and taking on their Hindu rivals, who were more skillful and master of the art of speaking and debating, to the dangerous public debates. These public debates might perhaps have also got degenerated into physical attacks, no wonder.

Radhavallabh Tripathi 's 2014-written and Sahitya Akademi published monograph on dharmakirti lucidly talks of the art of debating by him in his chap.V (P.66) and his followers from 7th to 12th centuries AD in chap. VII 9P. 101). He finishes his Preface by saying that 'The writings of Dharmakirti confirms the saying of our Ancients-tarkeshu karkashadhiyo vayameva naanye kavyeshu komaladhiyo vayameva naanye- (We, and not others, are the hardest amidst the hard in arguing: we, and not others, are the softest amidst the soft in poetry[26].

*I dedicate this small piece of research to all the gunawana Pragyawana scholars who are unprejudiced, objective S and are true lovers of knowledge. (***Pragyah sa eva gunwana raagadvesha bahishkritah- Rajatarangini***).

---

[24] Ibid.
[25] Ibid.
[26] Radhavallabh Tripathi (2014), Sahitya Akademi, New Delhi, pp. 66-81 and 101-108, ISBN 978-81-260-4551-8

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

BIBLIOGRAPHY

1. Kajiyama, Y (ed.), (1965), *The Vaidalyaprakaraan of Nagarjuna, Indogaku Shiron Shu, 6-7. ''* In order to put an end to the conceit of some who is longing for debate *(tarka)*, I shall expound the *'Pounding to Powder' (vaidalya)''.*

2. Tola, Fernando and Dragonetti, Carmen (1995, Delhi) *Nagarjuna's Refutation of Logic (*Nyaya)*— Vaidalyaprakarana.*

3. Potter, Karl H (ed.) (1977 Delhi), Encyclopedia of Indian Philosophies, Vol. II, The Tradition of Nyaya-Vaisheshika up to Gangesh, Historical Resume, Motilal Banarsidass.

4. Sankrityayana, Rahula (ed.) (1935, Patna) '*Vadanayaya*', The Journal of the Bihar and Orissa Research Society, Vol. xxi, part, II (Appendix), Introduction.

5. Sankrityayayana, Rahula (1994, reprint, Allahabad), *Darshan Digdarshan*, Kitab Mahal.

6. Taber, John (tr. and Commentator) (2005, London and New York), *A Hindu Critique of Buddhist Epistemology-The "Determination of Perception,*' Chapter of Kumarila Bhatta's *Shlokavarttika',* Routledge Curzon.

7. Tola, Fernando and Dragonetti, Carmen (1995, Delhi) *Nagarjuna's Refutation of Logic (*Nyaya)*— Vaidalyaprakarana.*

8. Tripathi, Radhavallabh (Jan.2012, New Delhi), 'Shastrartha: A Living Sanskrit Tradition', in Kalyan Kumar Chakravarti (ed.) *Visvavara- Sanskrit For Human Survival*, Rashtriya Sanskrit Sansthan.

9. Vidyabhushan, Satis Chandra (1977, rpt. New Delhi), *History of the Medieval School of Indian Logic, Oriental* Books Reprint Corporation.

10. Warder, A.K (1970) (2004 rpt., Delhi), *Indian Buddhism*, Motilal Banarasidass.

11. Tripathi, Radhavallabh (2014), *Makers of Indian Literature--Dharmakirti*, Sahitya Akademi, New Delhi.

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्यसंवर्धने आचार्यरामजीठाकुरस्य योगदानम्

डा. रत्नमोहनझाः
सहायकाचार्यः, दूरस्थशिक्षा,
केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः, नवदेहली

SID- 375060365

Received on-1/10/2021 22:06:13 | **Accepted on-** 26th January, 2021

प्रमुखशब्दाः-मिथिला, ध्वन्यालोककारः, श्रोत्रीयब्राह्मणः, श्रीमान् रामजीठाकुरः, *वैदेहीपदाङ्कम्* खण्डकाव्यं

शोधसारः

मिथिलायां शास्त्रपरम्परया सह काव्यपरम्पराऽपि अत्यन्तं समुमन्नता वर्तते। याज्ञवल्क्यस्यास्यां भूम्यां यथा व्याकरण-दर्शन-धर्मशास्त्रादिविविधशास्त्राणि प्रवृद्धानि तथैव काव्यान्यपि पल्लवितानि सुपुष्पितानि फलितानि च। ध्वन्यालोककारः कथयति-

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥

कविः न केवलं प्रत्यक्षं विलोकयति अपितु अतीतमनुभूय भविष्यमपि पश्यति। तस्मादेवोच्यते "कवयः क्रान्तदर्शिनः" इति। वस्तुतथ्यस्य दर्शनेन ऋषित्वं प्राप्यते। परन्त्वनुभूतानां वस्तुतथ्यानां शब्दैः निरूपणेनैव कवित्वं प्राप्यते। संस्कृते प्राचीना अर्वाचीनेति परम्परायाद्वयं वर्तते। आद्यायां तत्र सन्ति भासकालिदासादयः, अपरायाञ्च क्षमारावरेवाप्रसादराजेन्द्रमिश्र-राधावल्लभादयश्च। अपरामेनाम् अर्वाचीनां परम्परां सनाथीकरोति आचार्यः रामजीठाकुरः। कवेः रचनायां तदीयं गाम्भीर्यं तदीया चिन्तनशैली च परिलक्ष्यते। तदनुगुणमेव सः कविसमवाये स्थानमवाप्नोति। श्रीमतः ठाकुरमहाशयस्य रचनासु अत्यन्तम् औनत्यं वर्तते। पुनरपि महदाश्चर्यकरं नाम नायं सर्वैः ज्ञायते। मन्ये परिचयाभावः तत्र कारणम्। अस्य कवेः काव्यसृष्टिः काव्यरसज्ञैः अवश्यमेव ज्ञातव्या। एतदर्थमेव अनुसन्धानपुरस्सरं लेखोऽयं समुपस्थाप्यते। अस्मिन् आचार्यस्य रामजीठाकुरस्य परिचितिः अधीतिः वृत्तिः कृतिश्च क्रमशः समुपस्थाप्यन्ते ।

ABSTRACT

The tradition of poetics as well scripture tradition in Mithila is quite advance. Not only this but Grammar, Philosophy and theology have been achieved excellence status. In this tradition, Acharya Ram Ji Thakur's contribution is incomparable. His works specially in the area of poetics is unique. The introductory research paper on his writings is presented here.

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

मिथिलायां शास्त्रपरम्परया सह काव्यपरम्पराऽपि अत्यन्तं समुमन्नता वर्तते। याज्ञवल्क्यस्यास्यां भूम्यां यथा व्याकरण-दर्शन-धर्मशास्त्रादिविविधशास्त्राणि प्रवृद्धानि तथैव काव्यान्यपि पल्लवितानि सुपुष्पितानि फलितानि च। ध्वन्यालोककारः कथयति-

अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥

कविः न केवलं प्रत्यक्षं विलोकयति अपितु अतीतमनुभूय भविष्यमपि पश्यति। तस्मादेवोच्यते "कवयः क्रान्तदर्शिनः" इति। वस्तुतथ्यस्य दर्शनेन ऋषित्वं प्राप्यते। परन्त्वनुभूतानां वस्तुतथ्यानां शब्दैः निरूपणेनैव कवित्वं प्राप्यते। संस्कृते प्राचीना अर्वाचीनेति परम्परायाद्वयं वर्तते। आद्यायां तत्र सन्ति भासकालिदासादयः, अपरायाञ्च क्षमारावरेवाप्रसादराजेन्द्रमिश्र-राधावल्लभादयश्च। अपरामेनाम् अर्वाचीनां परम्परां सनाथीकरोति आचार्यः रामजीठाकुरः। कवेः रचनायां तदीयं गाम्भीर्यं तदीया चिन्तनशैली च परिलक्ष्यते। तदनुगुणमेव सः कविसमवाये स्थानमवाप्नोति। श्रीमतः ठाकुरमहाशयस्य रचनासु अत्यन्तम् औनत्यं वर्तते। पुनरपि महदाश्चर्यकरं नाम नायं सर्वैः ज्ञायते। मन्ये परिचयाभावः तत्र कारणम्। अस्य कवेः काव्यसृष्टिः काव्यरसज्ञैः अवश्यमेव ज्ञातव्या। एतदर्थमेव अनुसन्धानपुरस्सरं लेखोऽयं समुपस्थाप्यते। अस्मिन् आचार्यस्य रामजीठाकुरस्य परिचितिः अधीतिः वृत्तिः कृतिश्च क्रमशः समुपस्थाप्यन्ते ।

परिचितिः

महाकवेः ठाकुरस्य कौलिकपरम्परापरिशीलनेन ज्ञायते यदयं वत्सगोत्रीयः श्रोत्रीयब्राह्मणः। अस्य पैतृकं स्थानं मिथिलायां दरभङ्गाजनपदस्थः धर्मपुरनामकः ग्रामः वर्तते। परन्तु केनचित्कारणेन अस्य पिता सपरिवारं नेपालदेशं गत्वा न्यवसत्। नेपालदेशे जनकपुरे फुलगामानामके ग्रामे पञ्चत्रिंशत्युत्तरैकोनविंशतितमे ख्रैष्ताब्दे मईमासस्य द्वादशे (१२ मई १९३५) दिनाङ्के एषः जनिमलभत। ठाकुरमहाशयस्य पितामहः पं.परमेश्वरठाकुरः पितामही च जयमङ्गलादेवी। अस्य पिता पं. सत्यनारायणठाकुरः माता च गायत्रीदेवी आस्ताम्। काव्यप्रकाशस्य प्रसिद्धटीकाकारस्य वैमात्रेयः अग्रजः कविः रुचिकरठाकुरः आसीत्। तस्यैवायं वंशजः वर्तते।

कुलज्येष्ठानां निर्णयानुसारेण १९५२ तमे वर्षे श्रीमान् रामजीठाकुरः परिणयसूत्रे निबद्धः। यदा असौ शास्त्रिकक्षायाम् अधीयानः आसीत् तदानीमेव अष्टादशे वयसि शारदापुरस्थस्य श्रीमतः सिंहेश्वरझावर्यस्य सुपुत्र्या सह अस्य परिणयः सञ्जातः। अस्य भार्या श्रीमती शान्तिदेवी वर्तते। भगवतः अनुकम्पया पारिवारिकजीवनमस्य अत्यन्तं समीचीनतया प्रचलति स्म। परन्तु विधेः लीला विचित्रा भवति। यस्मिन् समये कश्चन गृहस्थः स्वकीयपारिवारिकदायित्वस्य द्वितीयं घट्टं पूरयितुं समुत्सहते तस्मिन्नेव काले कालेन गृहदीपकः निर्वापितः। अनयोः एक एव पुत्र आसीत्। स च दौर्भाग्यात् ३२ वर्षात्मके वयस्येव इहलोकं परित्यज्य देवसायुज्यमवाप्नोत्। तदनु श्रीमान् ठाकुरवर्यः चतसृभिः पुत्रीभिस्सह अग्रिमां यात्रां प्रावर्तत। असौ सर्वाः पुत्रीः उच्चशिक्षया समलङ्करोत्। प्राप्ते वयसि सर्वाः योग्ये कुले विवाहिताः। ताश्च श्वसुरालये वसन्त्योऽपि पित्रोः दत्तावधानाः भवन्ति। सर्वे दौहित्राः दौहित्र्यश्च अनयोः प्रीतिमन्तस्सन्ति। ऋषिकल्पस्य श्रीमतः ठाकुरमहाशयस्य पारिवारिकं सामाजिकञ्च जीवनम् अत्यन्तं प्रेरणास्पदं वर्तते। गीतायां भगवता श्रीकृष्णेन उक्तं वाक्यमिदं 'दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः'[1] इति सर्वतोभावेन अस्मिन् कवौ अन्वेति।

अधीतिः

छात्रः रामजीठाकुरः बिहारप्रान्ते मधुबनीजनपदे नरुआरग्रामे स्वकीयमातामहस्य सकाशे स्थित्वा प्रारम्भिकशिक्षां प्राप्नोत्। तदनु दरभङ्गाजनपदे उजानग्रामे दुर्गास्थानसंस्कृतमहाविद्यालये शास्त्रिकक्षां यावदधीतवान्। पुनश्च खगडिया जनपदे रहीमपुरे अवधविहारीसंस्कृतमहाविद्यालये आचार्यकक्षायामध्ययनं विधाय दरभङ्गास्थे मिथिलाशोधसंस्थाने एम्.ए. परीक्षामुदतरत्। इत्थं पारम्परिकाधुनिकधारयोः उच्चोपाधिमवाप्य असौ बिहारविश्वविद्यालये 'बाणस्य रचनायाम् उत्प्रेक्षाविलासः' इति शीर्षकमधिकृत्य (Ph.D) विद्यावारिध्युपाधिमलभत। पण्डितलक्ष्मीनाथझा-पण्डितत्रिलोकनाथझा- डा.वी.आर.शर्मा- प्रो.अनन्तलालठक्कुर-पण्डितशोभाकान्तजयदेवझा- प्रभृतिनां सकाशे अयं विद्याभ्यासमकरोत्।

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

वृत्तिः

उपाधिमवाप्य प्रायशः सर्वैरपि वृत्तिमवाप्तुं प्रयत्नो विधीयते। युवकस्य रामजीठाकुरस्योपरि अपि परिवारपोषणदायित्वं समायातम्। सः उच्चशिक्षाक्षेत्रे अध्यापनलक्ष्यं निरधारयत्। प्रथमप्रयत्ने एव १९६४ तमे वर्षे जनवरीमासे दरभङ्गाजनपदे बहेराप्रखण्डे बैगनीस्थे पूर्णिमारामप्रतापसंस्कृतमहाविद्यायले व्याख्यातृपदं प्राप्नोत्। तदनु १९७२ तमे वर्षे अगस्तमासे अयं मधुबनीमण्डलान्तर्गते सरिसवपाहीतिग्रामे महाराजलक्ष्मेश्वरसिंहमहाविद्यालयस्य संस्कृतविभागे प्रवाचकपदे नियुक्तः। तस्मिन्महाविद्यालये १७ वर्षाणि यावदध्याप्य १९८९ तमे वर्षे अगस्तमासे ललितनारायणमिथिलाविश्वविद्यालयस्य स्नातकोत्तरसंस्कृतविभागे आचार्यत्वेन समायतः। तत्र अत्यन्तं यशस्वितया अध्यापनं विधाय अयमाचार्यः १९९५ तमे वर्षे विरतसेवः सञ्जातः। पुनश्च राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानस्य शास्त्रचूडामणियोजनायामसौ १९९६ तमाद्वर्षात् १९९९ तमं वर्षं यावदध्यापनं कृत्वा साम्प्रतं स्वीये ग्रामे धर्मपुरे वसति। तत्रैवस्वीयां सारस्वतसाधनामनुवर्तयति।

कृतिः

महाकवेः रामजीठाकुरस्य साहित्यसंसारः अत्यन्तं समृद्धः वैविध्यपूर्णश्च वर्तते। अनेन द्वे महाकाव्ये, नैकानि खण्डकाव्यानि पर्यायबन्धकाव्यानि च प्रणीतानि। एतानतिरिच्य अस्य महाकवेः अनेके लेखाः, निबन्धाः, कथाः, अनुवादाः, अनेकानि मुक्तकानि, सम्पादनानि च सन्ति। एतेषु सम्पादनानि अनुवादाञ्च विहाय अन्याः सर्वाः मौलिककृतयः सन्ति। श्रीमतः रामजीठाकुरस्य एकविंशतिः रचनाः प्रकाशितास्सन्ति। तासु काश्चन ममदृष्टिपथे समायाताः। आसु रचनासु महद्वैशिष्ट्यं वर्तते।

कविरयं प्राचीनाचार्याणां पारम्परिकमर्यादानां संरक्षणे संवर्धने च यथा श्रद्धावान् वर्तते तथैव युगानुकूलचिन्तने स्वकीयरचनामाध्यमेन नवीनविचारप्रतिपादने च अग्रेसरो विद्यते। नूतनच्छन्दसां प्रयोगे अभिनवबिम्बोपस्थापने च अयं सिद्धहस्तो वर्तते। विशेषतः महिलानां बालानां कृषकाणां श्रमिकानाञ्च अधिकारसंरक्षणार्थं तेषां पक्षोपस्थापनार्थञ्च ठाकुरवर्यः कटिबद्धो दृश्यते। अस्य चिन्तनगाम्भीर्यं रचनापाटवञ्च परिशीलयितुं केषाञ्चन ग्रन्थानामत्र परिचयः प्रस्तूयते।

वैदेहीपदाङ्कम् खण्डकाव्यं वर्तते। अस्य प्रकाशनं १९९८ तमे वर्षे अभवत्। काव्येऽस्मिन् वर्णिता कथा न तु शास्त्रेषु न वा पुराणेषु क्वचित्प्राप्यते।कविना कथेयं कदाचित् स्वकीयमातुलमुखाच्छ्रुतम्। तस्याः पल्लवनं विधाय रामस्य प्रायश्चित्तमाधारीकृत्य महाकविना खण्डकाव्यमिदं प्रणीतम्।

जगज्जननीं जानकीमादिशक्तिं मन्यमानो मुद्गलमुनिः तस्याः चरणाङ्कितायां भुवि प्राणान् परित्यक्तुं कृतसङ्कल्पः क्षेत्रसंन्यासात् अन्यत्रगन्तुमशक्तश्चिन्तया विकलमना बभूव। अथ कदाचित् ध्यानमग्नोमुनिः समाधौ स्वेष्टदेवीं भगवतीं सीतां ददर्श-

पश्चाद्युक्ते मनसि सहसा स्वेष्टदेवी प्रसन्ना
साक्षात् सीताऽभयवरकरा सस्मितं वीक्षमाणा।
चिन्ता हेया नहि मम जनो निष्फलाशः कदाचित्
इत्युक्त्वा सा सपदि हृदयाद्दूरमन्तर्हिताऽभूत्॥02

अत्याचारपरायणं रावणं निहत्य सबन्धुबान्धवो रामः स्वकीयनगरनिकटोद्याने पुष्पकविमानादवातरत्। सर्वे नगरवासिनो जनाः भरतादयो राजपुरुषाश्च तं प्रत्युद्गन्तुं समागच्छन्। तत्र कुलगुरुर्वशिष्ठः शास्त्रदृष्ट्या आदिशत् यत् वेदविदो ब्राह्मणस्य दशाननस्य वधात् कलुषलेशदूषितो रामः यावत् वेदविधिज्ञस्य मुद्गलमुनेरादेशानुसारेण प्रायश्चित्तविधिं नाचरति तावदयं नगरं प्रवेष्टुं नार्हति-

रामः संश्रुत्य वाचं गुरुमुखगदितां श्रेयसीमर्थगर्भां
धर्म्यां सीतासमेतो हनुमदनुगतो मुद्गलं गन्तुमैच्छत्।
ध्यायन् तस्य प्रभावं गुरुवरकथितं धीरशान्तस्वरूपो
नाम्ना पापौघहर्त्ता स्वयमपि जगतां चित्तशुद्धिं विधत्सुः॥03

अथ अनुमतिमादाय तदाश्रमं प्रविशन्तं दाशरथिं कोपारुणलोचनः स मुनिः परुषवचनैर्भृशमतर्जयत्। सकललोकसम्पूतितं स्वप्राणनाथं निर्भर्त्स्यमानमेवं विलोक्य जानकी कुपितेव न्यवारयत्। तदा मुनिः मुद्गलः रामनिन्दनस्य कारणं प्रकटयति-

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 Since 2010

निन्दा नूनं सर्वसम्पूजितानां विश्वोद्धारे तत्पराणाञ्च हिंसा।
प्राप्तस्तां वै मन्मुखाल्लोकनाथो मुक्तः सद्यो ब्रह्महत्याघलेशात्॥04

राधाविरहम् खण्डकाव्यमपि १९९८ तमे वर्षे एव प्रकाशितम्। अस्य मूलं बङ्गीयकवेर्मधुसूदनस्य बङ्गभाषानिबद्धं ब्रजाङ्गनाकाव्यं वर्तते। कविः कथयति-

मधुसूदनकविभणितेर्भावञ्चादाय निर्मिता कविता।
हृदयं हरतु समनसां नवेव मधुधारया समानेयम्॥05

कवेः ठाकुरमहाशयस्य राधाभक्तिरेव अस्मिन्काव्यकर्मणि नियोजिका विद्यते। श्रीराधानामोच्चारणलोभेन तद्भावसौरभलेशेन स्वमनोमालिन्यमपाकर्तुं काव्यस्यास्य भावानुवादः कृत इति प्रथमसर्गान्ते कविरयं स्वयमङ्गीकरोति-

प्रीतिसुधाम्बुधिराधाविरहसमाधेर्विनिर्गता वर्णाः।
यदि वः श्रुतौ प्रविष्टाः मानसममलं भवेन्न सन्देहः॥06

अस्मिन् काव्ये कृष्णस्य वियोगेन व्यथितायाः राधायाः दशा वर्णिता विद्यते। विरहप्रदग्धाराधा परब्रह्मणः श्रीकृष्णस्य प्रत्यागमनस्य प्रतीक्षायां वर्तते। परन्तु गोपिकावल्लभमप्राप्य सा अत्यन्तं भावविह्वला भवति। सा कदाचित् भावसमाधौ श्यामस्य श्रुतपूर्वं वंशीध्वनिं शृणोति, कदाच्चिच श्यामघनं विलोक्य घनश्यामं स्मरन्ती उन्मत्तेव प्रलपति-

कथमाहुतिः प्रदेया अनलेऽस्मिन् सखि तपन्ति मे प्राणाः।
श्यामे गते वंशीध्वनिरिह चित्ते ध्वनत्येषः॥07

माधवं चिन्तयन्ती राधा प्रकृतेः विविधानि तत्त्वानि सम्बोध्य निजविरहव्यथां प्रकटयति। सा उत्कण्ठया उषःसुन्दरीं कुसुमानि मलयमरुतं गोवर्धनं गोधूलिवेलां सारिकां कृष्णचूडां निकुञ्जवनं सखीं वसन्तं च सम्बोध्य स्वकीय प्राणप्रियस्य श्रीकृष्णस्य आगमनवार्तां पृच्छति। वसन्तमुद्दिश्य सा कथयति-

इन्दुकरः किं पतितः तरले यमुनाजले विभात्येषः।
विहसति किं हृदयेशः चल सखि शीघ्रं मनोऽनलं शाम्येत॥08

प्रेमरहस्यम् खण्डकाव्यस्य प्रकाशनं २००३ तमे वर्षे अभवत्। पर्यावरणसुरक्षायै वनसंरक्षणस्य चेतनां जागरयितुं कविना प्रयासोऽत्र विहितः। अस्मिन् तरु-मानवयोः प्रेमकथा वर्णितास्ति-

आयातिस्म तरोस्तले लघुवयाः कोप्यर्भकः खेलितुं
सौरभ्येन फलेन पक्षिनिनदैः श्रोत्रप्रियैर्मोहितः।
तस्मिन् प्रेमनिबद्धमानसतरुर्नित्यं प्रतीक्षारतः
वातान्दोलितशाखया खगरुतैराकारयत्याकुलः॥09

अत्र निरपेक्षस्य त्यागैकपरस्य प्रेम्णः स्वरूपं प्रकाशयता तद्रहस्यं तत्त्वतो वेदयितुं समुत्कण्ठा समुन्मेषितास्ति।कोऽपि प्रेमपरवशः प्रेमास्पदाय सर्वस्वमर्पयति, किन्तु स्वार्थान्धितधिया प्रेमास्पदेन तन्मूल्यं न किमपि गण्यते। प्रेमालम्बनं प्रेमवतो व्यथां नाकलयति।इदमेकनिष्ठं प्रेमरसभासतां गच्छति। पारस्परिकप्रीतिसमुल्लासे उभयप्रार्थनायाः कारणतां कालिदासोऽपिस्वीकुरुते- 'रतिमुभय प्रार्थनाकुरुते'[10] इति। प्रेमबीजमिदं सर्वत्राङ्कुरितं न दृश्यते। जन्मान्तरसौहृदमपि एकनिष्ठं कथमिवावतिष्ठते? केनाप्यत्रकारणेन भवितव्यम्-

सोऽपृच्छच्च विचित्रमानवमनोगूढं रहस्यं तरुः
यस्मै दत्तमना अशेषविभवं प्रादामहं निस्पृहम्।
मूलोच्छेदसमुद्यतः स च जनो यस्यै न चाल्पं मया
दत्तं तद्गतचेतसाऽथ जननीस्नेहेन साऽपालयत्॥11

तरोरिममेव प्रश्नमुत्तर्तुमक्षमः कविर्मनसि महान्तं भारमिवानुभवति-

हेतुः कोऽत्र विचार्यतां न च मया विज्ञायते यत्नतः

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

त्वं जात्या मनुजोऽसि निर्मलधिया सृष्टः स्वयं वेधसा।
श्रुत्वा प्रश्नमिमं न चोत्तरमदां किञ्चिद् दधन्मौनिताम्
आयातो भवनं निजं च हृदये भारं महान्तं वहन्॥[12]

बाणेश्वरीचरितम् खण्डकाव्यं २००५ तमे वर्षे प्रकाशितम्। अस्मिन् खण्डकाव्ये बाणनामकस्य कस्यचिन्मैथिलपण्डितस्य पुत्र्याः कथा वर्णिता अस्ति। दरभङ्गाजनपदे भण्डारिशं नामकः ग्रामो वर्तते। तत्रत्येयं कथा। कविना श्रीमता ठाकुरमहाशयेन नन्दनसंस्कृतमहाविद्यालयस्य ज्योतिषाध्यापकस्य झोपाख्यस्य श्रीभुवनेश्वरशर्मणः मुखात् कथेयं श्रुता। तत्रबाणाभिधः विद्वान् भक्तश्च कश्चिद्विप्रः आसीत्। तस्य च भार्यापि आदिशक्तेर्गौय्याश्चरणकमलानुरागिणी आसीत्। सा एकदा सन्ततिविहीनतया नितरां परितापमनुभवन्ती हृदा शोकविह्वला ग्रामस्थे शिवमन्दिरे देवीं पार्वतीं प्रार्थयामास। जनश्रुत्यनुसारेण तद्भक्तिप्रसन्ना भगवत्येव स्वांशतः तद्गेहे कन्यारूपेण जन्म जग्राह। दिव्यस्वरूपा मधुहासिनी अलौकिकमेधासम्पन्ना सा शैशवादेव पश्यतां चेतः सहसैव हरतिस्म। अल्पवयस्येव तया बहु विधं नैपुण्यमधिगतम्-

चान्द्रीकलेव वपुषाऽथ धिया प्रकामं वर्धिष्णुताञ्च दधती सुरवाचि पट्वी।
काव्ये कलासु विविधासु परं प्रवीणा शास्त्रार्थसारमपि सा पितुरध्यगच्छत्॥[13]
सर्वत्र कीर्तिलतिका प्रसृता च तस्या रूपेण निर्मलधिया गुणगौरवेण।
दुःशासनेन हि गुणाः कलयन्ति मानमावाहयन्ति विपदः किल ते दुरन्ताः ॥[14]

अथ रूपगुणसम्पन्नां स्वां दुहितरं सम्प्राप्तवयसमनुरूपाय वराय प्रदातुमुत्सुके पितरि नियतिरेकां विचित्रामेव लीलामदर्शयत्। मौगलवंशीयस्य औरङ्गजेबस्य कलङ्कायमानः कश्चिन्नबाबः तस्या विप्रकन्यायाः निरुपमरूपगुणान्निशम्य कामान्धस्तां पितुरिच्छया बलाद्वा स्वाङ्के कर्तुं दूतमेकं प्रहिणोत्। तस्याः पिता मर्मन्तुदं प्रस्तावमेनं निराकृत्य निःसहायो भूत्वा रात्रावेव शिवमन्दिरं गत्वा भगवत्याः चरणयोः सपरिवारमात्मानं समर्पयत्।

प्रातः ससैन्यं सः नरपिशाचः तद्ग्राममागत्य बाणमन्विष्य मन्दिरपरिसरमावेष्टयत्। स्वयञ्च मन्दिरं प्रविश्य देव्याः पुरतः मुक्तकेशीं ध्यानमग्नां तां बाणपुत्रीमपश्यत्। क्रोधाद्रक्तमुखः सः पापी तामपहर्तुं तस्याः केशान् ग्रहीतुमुद्यतः। परन्तु तस्य पापिनः स्पर्शात्प्रागेव सा तपस्विनी बाणसुता शिलाविग्रहत्वेन परिवर्तिता।

गोविन्दचरितामृतम् कवेरस्य महाकाव्यं वर्तते। २००५ तमे वर्षे प्रकाशितेऽस्मिन् महाकाव्ये दश सर्गाः वर्तन्ते। अस्य महाकाव्यस्य प्रस्तावनायां कविः रामजीठाकुरः स्वयं लिखति- केचन जगतीह समुत्पन्नाः स्वकर्मानुसारेण षष्टिं सप्ततिं शतं वा शरदो जीवित्वा नियतिलब्धभौतिकसुखानिभुञ्जानाः पुत्रान् पुत्रीश्च जनयित्वा करालकालकवलीभूताः स्निग्धा अपि कतिपयदिवसान् बन्धुभिः स्मृतिपथमानीताः पश्चाद् विस्मृतिगर्त्ते विनिपतिता सन्तिष्ठन्ते। परन्तु कोऽपि प्राग्जन्मलब्धसंस्कारसहकृतः सम्प्राप्तविद्यः प्रभुचरणकमलप्रेमानुगृहीतः स्वयं सदाचारं पालयन् प्रभोरसीमकरुणया विपन्नजनानुद्धारयन् जगति तस्य कृपाकिरणान् प्रसारयन् दिवङ्गतोऽपि यशःकायेन निरन्तरं सतां मानसे सन्तिष्ठमानो विराजतेतराम्।[15]

एतादृशमेवानवद्यं व्यक्तित्वगौरवमादाय क्रैस्ते षोडशे शताब्दे समुत्पन्नः गोविन्दः विदुषां समाजे अधुनाऽपि सद्भिः समादरेण सम्मानेन च संस्मर्यते।

तस्यामाप स भक्तभावितमना शिष्यप्रियो धर्मवित्
विद्वान् पुण्यसमुच्चयेन महता गोविन्दभक्तं सुतम्।
गोविन्दं विनयान्वितं गुणवतामग्रेसरं पावनं
येनाद्यापि सगौरवा च मिथिला धन्या वरीवृत्यते॥[16]

गोविन्दोऽयं मिथिलायां सिद्धवैष्णवतया विश्रुतोऽस्ति। अस्य वैदुषीव सिद्धिकथापि मिथिलायां संस्कृतज्ञेषु नितरां प्रसिद्धास्ति। गोविन्दस्य द्वावेव ग्रन्थौ प्रकाशितौ स्तः- काव्यप्रदीपः , पूजाप्रदीपश्चेति। तत्र काव्यप्रदीपस्य द्वे टीकासम्पदौ समुपलभ्येते। एका टीका पाण्डुरङ्गवैद्यनाथेन कृताऽपरा च नागेशकृतोद्योतनाम्नी। महाकाव्येऽस्मिन् महापुरुषस्य गोविन्दस्य सम्पूर्णं चरितम् उत्कीर्णं वर्तते। कविः स्वयं निगदति-

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

मिथिलाविभूतिभूतेष्वन्यतमस्य प्रसिद्धसत्कीर्तेः।
गोविन्दस्य चरित्रं स्मृतिमानेतुं लघुःप्रयासोऽयम्॥[17]

मातृस्तन्यम् खण्डकाव्यं विद्यते। २००७ तमे वर्षे अस्य प्रकाशनमभवत्। वाल्मीकिरामायणमस्योपजीव्यं वर्तते। अस्मिन्किष्किन्धाकाण्डस्य किञ्चनप्रसङ्गमाधारीकृत्य अञ्जनायाः स्तन्यमाहात्म्यं निरूपितं वर्तते।

गीतिमाधुरी काव्यसङ्ग्रहः २००७ तमे वर्षे प्रकाशितः। अस्मिन् लघुकलेवराणि त्रीणि नाट्यगीतिकाव्यानि सङ्कलितानि सन्ति। तत्र आदौ ***'सतीपरीक्षा'*** इति काव्यं वर्तते। अस्मिन् सीतायाः सतीत्वपरीक्षा वर्णिता विद्यते। लङ्कायाम् अग्निपरीक्षितापि सीता अयोध्यायां लोकापवादभीत्या रामेण निर्वास्यते। अनन्तरं च तस्याः विरहवेदनया व्याकुलः रामः वाल्मीकेः आश्रमं प्राप्य स्वप्रजायाः तपस्विनाञ्च समक्षं पुनः सतीत्वपरीक्षणार्थं प्रस्तावमुपस्थापयति-

उपस्थिता महर्षयस्तपोवने पुरप्रधानसम्मुखे त्वयाऽधुना।
पुनर्विभावसौ प्रविश्य दर्श्यतां विशुद्धता सतीत्वतेजसश्च ते॥[18]

आश्रमे तपोमयजीवनेन कथञ्चिच्छान्तशोकापि सीता अयोध्यानरेशस्य पुनःपरीक्षणप्रस्तावं निशम्य नितरां क्षुब्धमनाः समजायत। सा अवोचत्-

सती त्वतेजसः प्रमाणमीप्स्यते ततश्च मानसी व्यथा गरीयसी।
समर्पिता परीक्षिता परीक्ष्यते जानकी प्रतीतिभाजनं न ते॥[19]

अपि च-

सती स्वतेजसो न वै प्रदर्शनं करोति नाथ हन्त किं न ज्ञायते।
विभावसुः स्वतेजसो न घोषणां तनोति दारुधर्शनात् प्रदीप्यते॥[20]

पौनःपुन्येन नारीणामवमाननमसहमाना व्याकुला सा समेषां पश्यतां स्वसतीत्वतेजसा जनन्याः पृथिव्याः हृदयं विदार्य आत्मनः जागतिकलीलां समापयत्-

साक्षिणो भवन्तु देवमानवाः विशुद्धचेतसः सुनीतिशालिनः।
विलोकयन्तु ते सतीत्वतेजसा धरा विदीर्यतेधुना नमोनमः॥[21]

पार्वतीतपस्या इति नामकं द्वितीयं नाट्यगीतिकाव्यं महाकवेः कालिदासस्य कुमारसम्भवस्य पञ्चमसर्गस्य कथामाधारीकृत्य प्रणीतं वर्तते। अधुनापि जनमानसे पार्वतीतपस्यायाः भूयान् प्रभावो दृश्यते। विशेषतः मिथिलायां किशोर्यः देव्या पार्वत्या आचरितं तौषारव्रतं पञ्चाग्निव्रतं हरितालिकाव्रतादीनि अनुष्ठानानि प्रायशः इदानीमपि कुर्वन्ति। यदा पिनाकिना मनोभवः भस्मावशेषः कृतः तदा पार्वती शिवं प्राप्तुम् अन्यं मार्गम् अप्राप्य चिन्तामग्ना सञ्जाता। तां विलोक्य तस्याः सखी विजया कथयति-

मदनदहनखिन्ना हा विषण्णा सखी मे नगपतिशिखरेऽस्मिन् चिन्तयन्ती सुदीना।
निभृतमिह वसन्ती प्रेयसोपेक्षिता किं कथमपि च मयेयं धीरतां प्रापणीया॥[22]

अन्ते पार्वती तपोमार्गं निश्चिनोत्। तस्याः कमलकोमला तनुः सुतीव्रं तपः कथं सहेत इति विचिन्त्य सर्वेप्यात्मीयाः तां बोधयन्ति। परन्तु सा कस्यापि वचनं नैव श्रृणोति। अतः तस्याः माता मेनका सुचिन्तिता सती निगदति-

नन्वार्यपुत्र दुहिता न समागतास्ति दीनेव भाग्यरहितेव तमेकमेव।
भूतेशमिच्छति वरं ननु देवराजं हित्वा न चान्यवचनं श्रृणुते कदापि॥[23]

शक्तिसाधना नामके तृतीये नाट्यगीतिकाव्ये मार्कण्डेय पुराणस्य दुर्गासप्तशत्यां वर्णिता महिषासुरवधान्ता कथा निरूपिता वर्तते। पुराणकथेयं संवादशैल्या अतीवरोचकतया कविना अत्र चित्रिता-

सर्वलोकेश्वरोऽप्येष सर्वलोकभयङ्करः।
सर्वलोकान् परित्रातुं हतो देव्या स सैरिभः॥[24]

आर्याविलासः मुक्तककाव्यं विद्यते। इदं २००९ तमे वर्षे प्रकाशितम्। मुक्तकसङ्ग्रहेऽस्मिन् अनेके विषयाः वर्णिताः सन्ति। अस्मिन् ३४६ पद्यानि वर्तन्ते। इमानि सर्वाण्यपि आर्याच्छन्दसि सन्ति। अस्मिन् काव्ये कविः स्त्रीणां स्थितिं, राजनेतृणां चरित्रं,

भ्रष्टाचारम्, अन्यान् विविधान् विषयान् च आधारीकृत्य अत्यन्तं मार्मिकं वर्णनमकरोत्। भारतीया संस्कृतिः नार्याः पूज्यत्वं प्रतिपादयति, परन्तु अद्यापि नास्ति तेषामभावः ये तस्याः भोग्यत्वं समर्थयन्ति। इयमपरा स्थितिः महाकविमेनं तुदति। एनां स्थितिं विलोक्य व्यथितः कविः तद्विषयकं वस्तुतथ्यमत्र निरूपयति-

विक्रीता धनलोभात् स्वर्गप्रलोभात् क्वचित् प्रदत्ता वा।
अवमानितेह नारी सम्प्रति जागर्ति मानमधिगन्तुम्॥[25]

श्रीमान् ठाकुरः स्वकीयकवितामाध्यमेन नारीणां विकासपरम्परां निरन्तरमग्रे प्रवर्तयितुमिच्छति। तासां विकासेनैव समाजस्य सर्वाङ्गीणः विकासः भविष्यतीति निश्चप्रचम्। तस्मात् सामाजिकान् सम्बोध्य असौ कथयति यत् स्वाधिकारं प्राप्तुमुद्यतानां तासां वयं कार्यसाधकाः भवेम न तु बाधकाः-

अधुना प्रबोधमाप्ता पश्यत्यात्मानमाहतां नितराम्।
लब्धुं निजाधिकारं यतमानेयं न रुध्यतां पन्थाः॥[26]

महिलानामादरं सम्माननं स्वाभिमानं च समर्थयन् कविरयं मैत्रेयीयाज्ञवल्क्यपरम्परां समर्थयति। सः भोग्यवस्तुनः स्थाने अर्धाङ्गिनीत्वेन नारीं दिदृक्षति-

कल्पलतेव सदेयं स्नेहरसेनैव सिच्यतां साधु।
अर्धाङ्गिनी प्रसिद्धा सर्वस्वं या मुदा प्रयच्छन्ती॥[27]

इत्थं काव्येऽस्मिन् इतरविषयानामुपस्थापनं तेषां वर्णनकौशलञ्च अत्यन्तं हृद्यमस्ति। अत्र महाकवेः ठाकुरस्य सङ्केतमात्रेणैव आर्या लसतितराम्।

लघुपद्यप्रबन्धत्रयी अपि मुक्तककाव्यं वर्तते। राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानेन २००९ तमे वर्षे काव्यमिदं प्रकाशितम्। अस्मिन् भागत्रयं वर्तते। प्रथमे अनुशासनप्रबन्धे दाम्यत् दत्तदयध्वम् (देवता-मानव-दानवान्) इत्येतान् आधारीकृत्य, द्वितीये प्रबन्धे प्रेरणापुरुषत्वेन अब्राहमलिङ्कनवर्यमाधारीकृत्य, तृतीये च प्रबन्धे लीलाशुकस्य जीवनवृत्तमाधारीकृत्य रुचिकरं चित्रणं वर्तते। महाकवेः काव्यमिदं २०१२ तमे वर्षे साहित्य-अकादमीद्वारा पुरस्कृतम्।

काव्यकोषः २०११ तमे वर्षे प्रकाशितः। नैककाव्यविधानामत्र समावेशात्काव्यकोष इत्याख्याऽन्वर्थास्ति। काव्यकोषेऽस्मिन् सर्वासु रचनासु गीतिमाधुरी अनुभूयते। अत्र प्रबन्धमुक्तकयोः सम्मेलनं वर्तते। तेषु द्वे लघुप्रबन्धकाव्ये त्रीणि गीतानि षोडश पर्यायबन्धाश्च वर्तन्ते। कविरत्र उन्मुक्ततया हृदयस्थान् स्वान् भावान् प्राकाशयत्। उदाहरणत्वेन गीतमेकमवलोकनीयम्-

श्रूयते मधुरा सुधा गरलं परं कटु पीयते
भग्नतरिरेषा कथञ्चिज्जलधिपारं नीयते।
तिमिरतति विहतेह दृष्टिर्दिग्भ्रमेण विमोहितोऽहम्
वीचिभिश्च वहामि सततं लेशतोऽपि न शङ्कितोऽहम्।
कोऽपि मामवितुं सयत्नः सत्यमिति सन्धीयते॥श्रूयते.॥ [28]

पर्यायबन्धचरितम् नवसर्गात्मकं महाकाव्यं वर्तते। इदं २०१५ तमे वर्षे प्रकाशितम्। अस्मिन्काव्यस्य भेदविशेषमिदं पर्यायबन्धचरितं साङ्गोपाङ्गं वर्णितमस्ति। अत्र कवेः कल्पना अद्वितीया विद्यते। महाकवेरस्य स्वप्नावस्थायां पर्यायबन्धकाव्यं समागत्य आत्मानमुद्धर्तुं तं निवेदयति। तदनुरोधेन शास्त्रीयस्यास्य काव्यभेदस्य विस्तरेण सः निरूपणं विदधाति।

शक्तिविलासकाव्यम् २०१६ तमे वर्षे प्रकाशितम्। अस्मिन् काव्ये सीतायाः पूर्वजन्मनः वृत्तान्तः वर्णितोऽस्ति। काव्यस्यास्य कथानुसारेण सीता पूर्वस्मिन् जन्मनि देवगुरोः बृहस्पतेः पुत्रस्य कुशध्वजस्य पुत्री वेदवती आसीत्-

वेदवती प्रथिता सा सार्थकनाम्नी स्वतेजसा दीप्ता।
कुन्दकुसुमतनुकान्त्या भान्ती सुतरां सुकोमलावयवा॥ [29]

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 Since 2010

इयं पितुः प्रतिज्ञया स्वाभिलाषेण च प्रेरितमतिः हिमिगिरेः एकस्मिन् रम्यकानने भगवन्तं विष्णुं वरं चिकीर्षुः तपस्यारतासीत्। तदानीं रावणेन दृष्टा सा बलात् अवमानिता। ततः सद्यः करं करवालीकृत्य रावणस्पृष्टान्स्वकेशानाच्छिद्य दुष्टं रावणं च कोपारुणलोचनाभ्यां ज्वालयन्ती – 'अहमागमिष्यामि त्वां सान्वयं विनाशयितुं तव नगरीं लङ्काम्' इत्युक्त्वा स्वयं यज्ञाग्निं प्राविशत्-

इत्युक्त्वा सा यज्ञवह्नौ शरीरं भस्मीभूतं पश्यतस्तस्य साध्वी।
क्षोभात् क्रोधात् तत्क्षणे वै व्यधत्त पौष्पीवृष्टिस्तत्रजाता नभस्तः॥ 30

रावणवधोपयोगिसर्वघटनायोजने अस्या एव प्रमुखं योगदानमस्ति। वस्तुतो रामः स्वयं रावणं नैव जघान अपितु सीतैव तेन तस्य वधमकारयत्। रावणवधे रामः कारणं, कर्त्री च सीतैवास्तीति कविना अत्र प्रत्यपादि-

सेयं नीलसरस्वतीप्रकटिता रामस्यचित्ते तदा
पश्यन्तीव जगद्दृशा करुणया विद्या द्वितीया परा।
मुण्डानां प्रकरच्छलेन दधती वर्णावलीं सुप्रभां
विज्ञानं ददती प्रसन्नमनसा रामे विभाता च सा॥ 31

हते तस्मिन् दशकन्धरे देवाः महर्षादयश्च शान्तिमवाप्य रामस्य कीर्तिगाथां गीतवन्तः। तदा सीता सहस्रास्यरावणस्य कथामश्रावयत्। तस्य वधानन्तरमेव राघवस्य यशोगाथागानं युज्यत इत्यपि सा अकथयत्। तदनु समराङ्गणमागतैः रामसैनिकैः असुरसैनिकाः पराभूताः। पश्चाच्च असुरेश्वरस्य सहस्रास्यरावणस्य बाणप्रहारेण रामः मूर्च्छितः। तदवलोक्य सर्वाङ्गसुन्दरी सा सीता करालवदना काली संवृत्ता। स्वकीयखड्गेन सर्वान् दानवसैनिकान् च संहृत्य तस्य दानवराजस्यापि शिरश्चिच्छेद। अन्ते च लब्धचेतनो रामः जानक्याः स्तुतिं विधाय सदलबलम् अयोध्यां प्रातिष्ठत।

अमृतमन्थनम् महाकाव्यं वर्तते। राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानेन २०१६ तमे वर्षे अस्य प्रकाशनं कृतम्। पञ्चदशसर्गात्मकस्य महाकाव्यस्यास्य नायकः दैवरातिर्याज्ञवल्क्यः वर्तते। अयं महर्षिः मिथिलाधिपतेः जनकस्य गुरुः आसीत्। अस्मिन् महाकाव्ये याज्ञवल्क्यस्य आचाराः विचाराश्च वर्णितास्सन्ति। महाकाव्यस्यास्य नाम अमृतमन्थनमिति सर्वथा अन्वेति। पित्रा देवरातेन शिशुः याज्ञवल्क्यः अध्ययनार्थं व्यासशिष्यवैशम्पायनस्य सकाशं प्रेषितः। तत्र सम्पूर्णमनोयोगेन अध्ययनं विधाय याज्ञवल्क्यः परं वैदुष्यमवाप्तवान्।

तस्याशयं स च विवेद विनैव वाचं कृत्वा मनोऽभिलषितं मुदितं चकार।
प्रीतो गुरुः सकलशिष्यगुणाधिकाय तस्मै श्रुतीरुपदिदेश सुभाजनाय॥ 32

परन्तु दैवयोगात् गुरोः वैशम्पायनस्य सः कोपभाजनः सञ्जातः।अत एव तस्मादधीतां समस्तवेदविद्यां सः प्रत्यर्पयितुमाह-

इत्युक्तवन्तं तपसोऽभिमानाद् विमूढदृष्टिं निजशिष्यमेतम्।
विप्रावमन्तारमलं विगर्हयन् जगाद विद्यां त्यज मे त्वदर्पिताम्॥ 33

गुरोराज्ञया ततोऽधिगतां समस्तवेदविद्यां तत्पुरस्तादुद्गीर्य रिक्तविद्यो निस्तेजसा असौ चिरं संज्ञाशून्यं समजनि। तदनु धृतिं श्रद्धां भक्तिञ्च सुदृढमाकलय्य प्रज्ञागुरुं भगवन्तं भास्करं सुचिरं ध्यायन् सुप्रसन्नाननः याजुषमन्त्रान् प्रसादरूपेण प्राप्नोत्-

स्तुतो रविस्तेन सुभक्तिचेतसा परं प्रसन्नो मुनये यजुर्गणम्।
अयातयामं हयरूपधृग् ददौ स दैवराति कृतकृत्यतां ययौ॥ 34

अनेन महर्षिणा साक्षात्कृतो वेदराशिः 'शुक्लयजुर्वेदः' इति नाम्ना सुप्रसिद्धः। याज्ञवल्क्यस्य भार्याद्वयमासीत्- कात्यायनी मैत्रेयी चेति। कात्यायनी गृहाश्रमकार्यकुशला पतिसेवापरायणा आसीत्। मैत्रेयी नितरां मेधाविनी ब्रह्मवादिनी च बभूव। अस्य ऋषेः जीवनं सर्वेषां कृते अनुकरणीयं वर्तते। विनीतोऽयं ऋषिपुत्रः गृहाश्रमे गार्हस्थ्यकर्मधर्ममाचरन् वैदुष्ययशः परितः प्रसारयन् अन्ते च संन्यासमाश्रयन् शील-सौजन्यवैदुष्यविभूषितां जिज्ञासावतीं प्रियपत्नीं मैत्रेयीं प्रति ब्रह्मविद्योपदेशं चकार।

विरक्तिरतुला भवे समनुरक्तिरेषा तव
विभौ परमपावने प्रियतमे प्रभौ निश्छला।
तमेव प्रतिपादयन् किमपि वच्मि श्रव्यं शुभे!

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

निशम्य हृदि धार्यताममृततत्त्वमेतत्त्वया ॥ 35

उद्यानसौरभम् मुक्तककाव्यसङ्ग्रहो विद्यते। अस्य प्रकाशनं २०१८ तमे वर्षे अभवत्। १९९५ तमात् वर्षात् पूर्वं महाकविना ठाकुरमहाशयेन प्रणीताः रचनाः अस्मिन् प्रकाशिताः वर्तन्ते। सङ्ग्रहेऽस्मिन् नैकप्रकारकाः रचनाः सङ्कलिताः विद्यन्ते। विषयानुसारेण ताः चतुर्धा विभक्ताः सन्ति। प्रथमस्तत्र दिव्यकुसुमावली वर्तते।अस्मिन् भागे देवस्तुतिपरकाः रचनाः वर्तन्ते। मातरं करुणामयीमुद्दिश्य कविः कथयति-

अपि करुणामयि नादय मधुरं तन्त्रीस्वरमविरामम्।
जनमानसजडतामपनोदय सदयं पश्य समानम्॥ 36

द्वितीयस्तु निसर्गकुसुमावलीति। कविद्दशा दैवीभक्तिरिव प्रकृतिसौन्दर्यप्रेमापि मानवानां चेतसि बद्धमूलमिवास्ति। प्रकृतिः अस्माकं विविधभावानां विभावतां प्रपद्यते। आलम्बनोद्दीपनाभ्यां विभावो द्वैविध्यमापद्यते। प्रातरुदयन्नरुणवर्णो भास्करः, उद्याने सुमनः, पादपेषु सुमनोरसं पिपासवो मधुकराः, निर्मलनभसो वर्षन्त्यश्चन्द्रिकाः, सकलकलं वहन्त्यः सरितः पश्यतां मनो भृशं प्रसादयन्ति। कदाचिदियं प्रकृतिः अस्माकं मनसि सुखं दुःखञ्च समुद्दीपयति। सत्यमेवोच्यते यत् निसर्गसौन्दर्यं बलात् मानवमनः समाकर्षति। अस्मिन् भागे निसर्गकुसुमावल्यां प्रकृतेः परिवर्तितरूपाणां षण्णामृतूनां सौन्दर्यस्य काले काले समापतितायाः प्रकृतिभीषणतायाश्च वर्णनं विद्यते। वसन्तमुद्दिश्य कविः कथयति-

हेमन्तशिशिरजडतामपास्य प्रालेयतिमिरजालं निरस्य।
सत्वरमुपेहि बन्धो वसन्त! पिकमधुरगानगुञ्जितदिगन्त॥
मधुपालिमधुरगीतं प्रसरतु श्रुतिपुरे भवतु मधुमयं मनः।
विषमयविषादमूर्च्छितो हन्त! तव नास्तु शासने कोऽपि जनः॥ 37

तृतीयस्तावत् स्वदेशकुसुमावली। भागेऽस्मिन् काले काले रचितानि राष्ट्रसम्बद्धानि अनेकानि गीतानि सङ्कलितानि विद्यन्ते। भारतमातुः सुपुत्राणां वीरसैनिकानां शौर्यगाथां गायन् कविः वर्णयति-

विपत्तयः पदे पदे भवन्तु निर्भया इमे
स्वदेशमानरक्षणे सदैव तत्परा इमे।
असूनपि त्यजन्ति, न स्वदेशगौरवं महत्
सुकीर्तिचन्द्रिका दिगन्तविश्रुता भटा इमे॥ 38

अन्ते चतुर्थस्तु प्रकीर्णकुसुमावलीति वर्तते। अस्मिन् भागे प्रकीर्णान् विविधान् विषयानधिकृत्य कविः स्वीयं रचनापाटवं प्रादर्शयत्। कविना विरचितस्य चायाष्टकस्य एकः श्लोकः अत्र प्रस्तूयते-

प्रातर्भजामि मनसा वचसा धियापि प्रेम्णा प्रियाकरसमर्पितचायमिष्टम्।
हृद्यं प्रियाधरसुधासमस्वादुकोष्णं पेयोत्तमं मतिमतां प्रतिभाकरञ्च॥ 39

मेवाडस्वाभिमानम् ऐतिहासिकं लघुकाव्यं वर्तते। २०१८ तमे वर्षे अस्य प्रकाशनं सञ्जातम्। अस्मिन् मेवाडमहाराजस्य रत्नसिंहस्य महिष्याः पद्मिन्याः बुद्धिमत्ता शौर्यगाथा च वर्णितास्ति। कविः स्वयं कथयति-

शक्तिर्मूर्त्तिमती सतीकुलमणिःपद्मेव दिव्यानना
सम्मानाय जुहाव जीवनमिदं निर्भीकचित्तं पुरा।
राजस्थानसुगौरवं सुमुकुटं चित्तौडदुर्गस्य या
तस्या भव्यकथा सुधा सहृदयाः! श्रुत्या क्षणं पीयताम्॥ 40

नीतिपटीयसी सा विपत्तिकाले स्वकीयविवेकेन भारतीयसंस्कृतिरक्षणपुरस्सरं स्वीयं सतीत्वं कथं रक्षितवतीति अतीव सुष्ठुतया काव्येस्मिन् वर्णितमस्ति। पद्मिन्याः सतीत्वसंरक्षणपरा जौहरकथा अत्र निबद्धा वर्तते। तया सह दुर्गस्थाः सर्वाः अपि वीररमण्यः गोमुखे कृतस्नानाः स्वीयं स्वीयं पतिं स्मृतिपथमानीय समिद्धचैत्यानले स्वकोमलकलेवराणि निपात्य सतीत्वं स्वात्माभिमानञ्च ररक्षुः-

अल्लोद्दीनविशालजलधौ मेवाडवीरेष्वथो

हस्त्युष्ट्रादिविरावभीषणतरे मग्नेषु सा पद्मिनी।
बह्वीभिः खलु राजपुत्ररमणीभिर्गोमुखे पावने
स्नात्वा प्रीतिभरेण स्वप्रियपतिं स्मृत्वा प्रविष्टा चिताम्॥ 41

अपि च खिन्नं कविहृदयं भुविभारभूतानां नरराक्षसानां तेषां कुकृत्यं भर्त्सयन् अग्रे कथयति-

सौन्दर्यं लोपमापत् सकलमपि जगत्सारशून्यं च जातं
सृष्टेः सम्पद्विनष्टा निधिरिव मनसो लुण्ठितस्तस्करेण।
भूमेर्भव्या सरस्याः सुरभितमृदुला पद्मिनी कापि गीर्णा
शुण्डादण्डेन रोषात् कलुषितमतिना हस्तिना हन्त कस्मात्॥ 42

किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या इति खण्डकाव्यं वर्तते। अस्य प्रकाशनं २०१९ तमे वर्षे अभवत्। महाकविः रामजीठाकुरः अस्मिन् काव्यद्वयं सन्निवेशयत्। अनयोः प्रबन्धयोः द्वयोः भ्रात्रोः वैदुषी वर्णिता वर्तते। मिथिलापाण्डित्यपरम्परायां कीर्त्तनीयचरितेषु अन्यतमौ वर्तेते म.म. सचलप्रसिद्धभवानीनाथमिश्रः मोहनमिश्रश्च। प्रथमं ह्यत्र सचलमिश्रमधिकृत्य ‘को विदेशःसुविद्यानाम्’ इति काव्यं विद्यते।

पुरा मिथिलायामपि व्याकरणदर्शनादिशास्त्राध्ययनं विद्वत्समाजे प्रतिष्ठास्पदं मन्यतेस्म।लोकधारणानुसारेण साहित्यं ते सुकुमारमतयो राजपुत्रादयो पठन्ति येषां कठिनशास्त्राध्ययने प्रवृत्तिर्न भवति। अर्थात् मन्दमतीनां साहित्यमेव शरणमिति। विद्वत्सु इयमप्युक्तिः प्रसिध्यतितराम्- ‘शास्त्रेषु भ्रष्टाः कवयो भवन्तीति’। द्वितीयश्चाक्षेपः क्रियते- साहित्यशास्त्रे न कोऽपि स्वतन्त्रः सिद्धान्तो प्रतिपादितोऽस्ति, तत्र विविधशास्त्राणां सिद्धान्तसञ्चयः कृतोस्ति। परन्तु सचलमिश्रवर्याः पुणेनगर्य्यां पेशवाराजसभायां साहित्यपताकां समुन्नीय स्वीयं वैदुष्यं सर्वत्र ख्यापितवन्तः-

राजसभां सम्प्राप्तः किं तच्छास्त्रं विशिष्यतेऽधीतम्।
इति पृष्टः प्राहस्म सचलः साहित्यमस्ति मे पठितम्॥
शास्त्रान्तरमपि पठितं तदङ्गरूपेण गुरुमुखाम्भोजात्।
अनुशीलितं च यत्नात् सदैव सर्वत्र भारतीमुखरा॥ 43

सचलमहाशयस्य वाक्यमिदं श्रुत्वा आस्थानविद्वान् कश्चन आपत्तिं प्राकटयत्-

इत्युत्तरञ्च श्रृण्वन् विद्वानेको जगाद साक्षेपम्।
कथितं किमिति भवद्भिः कथमिव साहित्यमङ्गिताधत्ताम्॥ 44

तस्य विदुषः प्रश्नमिमं श्रुत्वा विविधैः प्रमाणैः मैथिलोऽयं साहित्यविद्यायाः शास्त्रत्वं प्रत्यपादयत्। तत्र सर्वे विद्वांसः समाहिताः सचलवर्येण-

साहित्यं हि प्रधानभावमखिलं न्यायादिषड्दर्शनं
गौणत्वञ्च नयन् सुधीः खलु सभां स्तब्धां व्याधाद् युक्तितः।
सम्मानेन समर्चितः स सचलो दोलां समारूढवान्
दत्तस्कन्धमहीभुजा बुधसभारत्नायमानः कृती॥45

द्वितीयं काव्यमत्र ‘मानो हि महतां धनम्’ इति वर्तते। इदं काव्यं सचलमिश्रस्यानुजं पण्डितमोहनमिश्रमधिकृत्य रचितं वर्तते। बालः मोहनः क्रीडासक्तोऽध्ययनपराङ्मुखो बभूव। किन्तु मतिमत्या तन्मात्रा भोजनकाले भेदोपायेन तमपि सत्पथमानीय तद्वैदुष्यलाभे प्रयोजककर्तृतां सफलं निरवहत्। मातृकृतपङ्क्तिभेदेन वाग्बाणेन च मर्माहतो मोहनः मङ्गलवनीति स्थानं गत्वा कोटीश्वरनाम्नः शिष्यवत्सलसद्गुरोः व्याकरणसाहित्यदर्शनादिविद्याम् अधिगत्य प्रसिद्धं वैदुष्यमासादयत्। तस्य पाण्डित्यप्रशंसा सर्वत्र प्रसृता। बहुशो धनसम्पन्नाः विद्यानुरागिणो गृहस्थाः महीपाश्च समादरेण तस्मै प्रभूतं धनं मानं ग्रामञ्च प्रायच्छन्। इत्थं स्वदेशे निजवैदुषीं विस्तार्य स्वाग्रज इवायमपि पेशवाराजसभामगमत्। यतः तत्र वैदुष्यसम्मानमवाप्य पण्डितः सर्वत्र पूज्यतेस्म।

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

कविना उच्यते यत् प्राधान्येनायं वैयाकरण आसीत्। तत्र विद्वत्सभायां पृष्टान् सर्वान् व्याकरणशास्त्रीयान् प्रश्नान् समाधायासौ राजसभायां सम्मानितः। अस्याग्रजः एकलक्षमुद्राभिः सम्मानितः। परन्त्वयं पुरस्कारराशित्वेन स्वाग्रजापेक्षया मुद्रामेकां न्यूनां प्राप्य स्ववैदुष्यतिरस्कारममन्यत। तद्राशिञ्च अगृहीत्वैव स्वोपास्यं मथुराधीशं तच्छक्तिभूतां राधाञ्च संस्मरन् मथुरापुरीं प्रास्थात्-

राधामाधवपादपङ्कजरजो ध्यात्वाऽचलन्मोहनः
पूणेतो मनसि व्यथामनुभवन् श्रीमोहनं संस्मरन्।
आयातो मथुरां तदीयनगरीं प्रीत्योल्लसन्मानसः
नत्वा तद्गुणगौरवस्तवमसौ चक्रे च रोमाञ्चितः॥ 46

सायं मथुरापुरीं सम्प्राप्य भक्तो मानी विद्वान् मोहनः श्रीगोविन्दं प्रणम्य स्तुत्वा च श्रान्तः तस्मिन्नेव मन्दिरप्राङ्गणे निद्रां प्रापत्। रात्रौ च भगवान् मथुराधीशः मन्दिरस्य अर्चकं स्वप्ने आदिशत्- 'ममायं नितरां प्रियो भक्तो मोहननामा त्वया लक्षं मुद्राः प्रदाय सम्माननीयः।मम प्रियोऽयमतिथिः साम्प्रतं ममालयमागतोऽस्ति, अयं सर्वथा सेव्यः। यावदयमत्र तिष्ठति तावत्त्वयाऽस्य सर्वविधा व्यवस्था विधेयेति।' प्रातस्तस्मै अर्चकः लक्षं मुद्राः प्रदाय मन्दिरनिकट एव तस्यावासव्यवस्थां व्यधात्। कविः कथयति-

भक्तेः शक्तिमवाप्य पण्डितमणिः प्रापत् प्रभूतं धनं
श्रीशात्तन्मथुराधिपात् स्वयमसावातिथ्यमप्याप्तवान्।
चञ्चच्चन्द्रकराभमुज्ज्वलतरं लब्ध्वा यशो व्यापकं
भूत्वाप्येष दिवङ्गतोऽपि मतिमान्वित्ते सदा तिष्ठति॥ 47

एतादृशस्य म.म.मोहनमिश्रस्य मानोन्नतं वैदुष्यपूर्णं जीवनवृत्तमादाय **"मानो हि महतां धनम्"** इति शीर्षकं लघुकाव्यम् आचार्यरामजीठाकुरेण प्रणीतं वर्तते।

महाकवेः रामजीठाकुरस्य मौलिकरचना यथा संस्कृतभाषायां वर्तते तथैव मैथिलीभाषायामपि विद्यते। **आत्मगगनपथ** इति नामकः मैथिलीकवितासङ्ग्रहः अस्य प्रकाशितो वर्तते। सङ्ग्रहेऽस्मिन् विविधप्रकारकाः कविताः सन्ति। मैथिलीभाषायामेतदतिरिच्य द्वौ अनुवादौ अपि वर्तेते। म.म.कृष्णसिंहठाकुरेण प्रणीतस्य **खण्डवलाकुलदीपिका**याः तथा च पं. यदुनाथमिश्रप्रणीतस्य **समासशक्तिदीपिका**याः अनुवादः आचार्येण रामजीठाकुरमहाशयेन कृतः। आचार्यः ठाकुरः काव्यशास्त्रेऽपि पूर्वाचार्यैः प्रतिपादितानां काव्यसिद्धान्तानां सयुक्तिकं विनूतनं व्याख्यानमकरोत्। स्वकीयकाव्यसाधनया असौ महाकवित्वमवाप्नोत्। यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोतीति सिद्धान्तानुसारेण षडाशीतिवर्षदेशीयः असौ महाकविः सम्प्रत्यपि अर्वाचीनसंस्कृतसाहित्यस्य श्रियः संवर्धनार्थं अहर्निशं दत्तावधानो विद्यते।

अन्तटिप्पणी

01. गीता-२/५६
02. वैदेहीपदाङ्कम् /प्र.स./21
03. तत्रैव, द्वि.स. /36
04. तत्रैव,च.स. /36
05. राधाविरहम् 7
06. तत्रैव 251
07. तत्रैव 133
08. तत्रैव 31
09. प्रेमरहस्यम् /03
10. अभि.शा. 2/1
11. प्रेमरहस्यम् 49

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

12. तत्रैव 50
13. बाणेश्वरीचरितम्-16
14. तत्रैव 17
15. गोविन्दचरितम्, प्रस्तावना
16. तत्रैव 1/27
17. तत्रैव 1/8
18. सतीपरीक्षा 38
19. तत्रैव 39
20. तत्रैव 40
21. तत्रैव 68
22. पार्वतीतपस्या 01
23. तत्रैव 20
24. शक्तिसाधना 90
25. आर्याविलासः 31
26. तत्रैव – 34
27. तत्रैव - 35
28. काव्यकोषः, पृ. 64
29. शक्तिविलासकाव्यम् 1/7
30. तत्रैव 3/46
31. तत्रैव 8/10
32. अमृतमन्थनम् 1/39
33. तत्रैव 2/15
34. तत्रैव 2/30
35. तत्रैव 14/16
36. उद्यानसौरभम्, पृ.- 5
37. तत्रैव 45
38. तत्रैव 74/2
39. तत्रैव 103/2
40. मेवाडस्वाभिमानम् 10
41. तत्रैव 56
42. तत्रैव 59
43. कोविदेशः सुविद्यानाम् 32-33
44. तत्रैव 35
45. तत्रैव 82
46. मानो हि महतां धनम् 64
47. तत्रैव 84

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, सम्पादकः- श्रीकृष्णस्वरूप काव्यतीर्थ, प्रकाशकः- चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी, तृतीयसंस्करणम्-1982
2. श्रीमद्भगवद्गीता, व्याख्याकारः- ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद, प्रकाशकः- भक्तिवेदान्त ट्रस्ट, मुम्बई, प्रकाशनवर्षम्-1990
3. ध्वन्यालोकः, व्याख्याकारः- आचार्य जगन्नाथ पाठक, प्रकाशकः- चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी, षष्ठ संस्करण-1997
4. प्रेमरहस्यम्, प्रणेता- डा. रामजी ठाकुर, प्रकाशकः- प्रतिभा कम्युनिकेशन,दरभङ्गा, प्रकाशनवर्षम्-2003
5. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, सम्पादकः-श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, प्रकाशकः- चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन,वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण-2009
6. लघुप्रबन्धत्रयी, रचनाकारः- डा. रामजी ठाकुर, प्रकाशकः- राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्,नवदेहली, प्रकाशनवर्षम्-2009
7. काव्यकोषः, सम्पादकः- डा. लक्ष्मीनाथ झा, प्रकाशकः- रीता प्रकाशन, प्रकाशनवर्षम्-2011
8. आत्म गगन पथ, लेखकः प्रकाशकश्च- डा.रामजी ठाकुर, मुद्रकः- एकेडेमी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद, प्रकाशनवर्षम्- 2015
9. अमृतमन्थनम्, लेखकः- डा. रामजी ठाकुर, प्रकाशकः- राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्,नवदेहली, प्रकाशनवर्षम्-2016
10. शक्तिविलासकाव्यम्, सम्पादकः-डा. इन्द्रनाथ झा, प्रकाशकः- मनीष प्रकाशन,वाराणसी, प्रकाशनवर्षम्-2016
11. उद्यानसौरभम्, सम्पादकः- लक्ष्मीकान्त विमल, प्रकाशकः- विद्यानिधि प्रकाशन,दिल्ली, प्रथम संस्करण-2018

वैशेषिकदर्शने शब्दस्य गुणत्वसिद्धिः

डॉ. विश्वेशः वाग्मी
सहाकाचार्यः, संस्कृतविभागः,
महात्मा-गाँधी-केन्द्रीय-विश्वविद्यालयः, बिहारः

SID- -323541868

Received on--8/11/2020 13:37:00 | **Accepted on-** 26th January, 2021

प्रमुखशब्दाः-वैशेषिकदर्शनम्, शब्दः, कणादः, गुणत्वसिद्धिः, उदयनाचार्यः, शङ्करमिश्रः, गुणः, अकारणगुणपूर्वकत्वम्, अयावद्द्रव्यभावित्वम्, आश्रयादन्यत्रोपलब्धिः।

शोधसारः

श्रुतिकालादारभ्यैव भारतीयदार्शनिकैः शब्दस्य स्वरूपमभिलक्ष्य अनेके महत्त्वपूर्णाः सिद्धान्ताः प्रस्तुताः। वैशेषिकदार्शनिकाः कणादप्रशस्तपादप्रभृतयोऽचार्या अपि तत्र नापवादाः। वैशेषिकदर्शनानुसारं शब्दस्तु न द्रव्यरूपः, न कर्मरूपः, न वा सामान्यविशेषसमवायरूप अपितु चतुर्विंशतिर्गुणेष्वन्यतमः नित्यस्याकाशस्य विशेषगुणः श्रोत्रमात्रग्राह्यश्च वर्तत इति किन्तु शब्दस्य स्वरूपविषये दर्शनान्तरेषु मतभेदो दरीदृश्यते। यत्र चार्वाक-जैन-सांख्य-योग-मीमांसा(प्राभाकराः)-वेदान्त-न्याय-वैशेषिकदर्शनानि शब्दस्य गुणत्वं स्वीकुर्वन्ति तत्रैव मीमांसा(भाट्टाः)-व्याकरण-माध्व-शैवदर्शनानि अस्य द्रव्यत्वं ख्यापयन्ति। एतेष्वपि भाट्टमीमांसकाः विशेषतः विविधोपायैः शब्दस्य द्रव्यत्वं साधयन्ति। प्रस्तुतेऽस्मिन् शोधपत्रे न केवलं शब्दद्रव्यत्ववादीनामेतेषां युक्तियुक्तखण्डनं क्रियते अपितु शब्दस्य द्रव्यत्व-कर्मत्व-सामान्यत्व-विशेषत्व-समवायत्व-अभावत्वासिद्धिप्रदर्शनपूर्वकं सिद्धान्तोऽयं स्थिरीक्रियते यच्छब्दो गुण एव न द्रव्यम् तत्रापि च अकारणगुणपूर्वकत्वात्, अयावद्द्रव्यभावित्वात्, आश्रयादन्यत्रोपलब्धत्वात्, आत्मनि असमवेतत्वात्, श्रोत्रग्राह्यत्वात्, वैशेषिकगुणभावाच्च शब्दः पृथिव्यादिषु द्रव्येषु केवलमाकाशस्यैव गुणः इति वैशेषिकसिद्धान्तानां सुसम्बद्धरूपेणोपस्थापनं समग्रतया विश्लेषणञ्च विधीयते।

ABSTRACT

Since the Vedic period, many important principles were presented by Indian philosophers by targeting the nature of the word. It was also presented by the Acharyas of the Kanada, Prashastpada, etc. According to the Vaishshik philosophy, the word is not a matter of substance, not Karma form, not Samanya-Vishesha but a special quality of a continual sky other than 24 Gunas which are assumed by the ears. But there are differences in the views about the nature of the word. While Charwalk, Jain, Sankhya, Yoga, Philosophy, Vedanta, Nyaya- Vaishshik accept the Guna of the word, but Bhatt Mimaamsa, Vyakarana, Madhva, Shaivas etc were include Sabda as matter. the philosophy of the same has been discussed in detail in this research paper.

भारतीयदर्शनपरम्परायां शब्दस्य तात्त्विकस्वरूपमभिलक्ष्यैका प्रमुखतमा समस्योपतिष्ठते **यच्छब्दः किंरूपः? द्रव्यरूपः? गुणरूपः? कर्मरूपः? उताहो कश्चन पदार्थरूपः? कस्तर्हि शब्दरूपः?** आदिकालादारभ्य विषयेऽस्मिन् अनेकविधं चिन्तनं प्रवर्तते। स्वयं महर्षिकणादोऽपि विषयममुं वर्णयति- शब्दस्यासाधारणधर्मत्वस्य श्रोत्रग्राह्यत्वस्य[27] समानासमानजातीयेषु पदार्थेषु कुत्राप्यनुलब्धत्वात् शब्दः किम्? द्रव्यं गुणो कर्म वेति संशयमुपपद्यते[28] - यदि शब्दो द्रव्यम् तर्हि समानजातीयेषु द्रव्येषु असमानजातीयेषु च गुणकर्मसु कुत्रापि श्रोत्रग्राह्यत्वं नोपलभ्यते न किमपि द्रव्यं श्रोत्रग्राह्यं नापि च गुणकर्मणि । यदि च शब्दो गुणः स्वीक्रियतां तथापि समानजातीयेषु गुणेषु असमानजातीयेषु वा द्रव्यकर्मष्वपि श्रोत्रग्राह्यत्वं नोपलभ्यते । अथ च शब्दस्य कर्मत्वमप्यभ्युपगम्यते चेत्तत्रापि समानजातीयेषु कर्मसु असमानजातीयेषु वा द्रव्यगुणेष्वपि श्रोत्रग्राह्यत्वस्यानुपलब्धत्वादियं शङ्का जायते[29]- कस्तर्हि शब्दः? द्रव्यं गुणो कर्म वेति[30]? एतदभिलक्ष्य शब्दस्य स्वरूपविषये दार्शनिकेषु परस्परं मतभेदो दरीदृश्यते -

1. **शब्दगुणत्ववादिनः-** साङ्ख्यदर्शनम्, योगदर्शनम्, मीमांसादर्शनम् (प्रभाकरमतम्), वेदान्तदर्शनम्, न्यायदर्शनम्, वैशेषिकदर्शनम्, चार्वाकदर्शनम्, जैनदर्शनम् ।
2. **शब्दद्रव्यत्ववादिनः -** मीमांसादर्शनम् (भाट्टमतम्), वैयाकरणदर्शनम् ।
3. **शब्दो न गुणः नापि द्रव्यम् –** बौद्धदर्शनम् ।

मीमांसकानां शब्दद्रव्यत्वसिद्धान्तः-

उपर्युक्तेष्वेतेषु दार्शनिकप्रस्थानेषु विशेषतः भाट्टमीमांसकाः विविधोपायैः शब्दस्य द्रव्यत्वं स्वीकुर्वन्ति[31] -

(क) शब्दस्य ग्रहणं (प्रत्यक्षं) स्वाश्रयिणः आकाशात्पृथगेव भवति, यदा च गुणाः द्रव्याश्रिताः एव गृह्यन्ते[32] ।
(ख) शब्दो साक्षादिन्द्रियसंयोगेन प्रत्यक्षीक्रियते, यथा घटो द्रव्यम्[33] ।

---

[27] श्रोत्रग्रहणो योऽर्थः स शब्दः । - वैशेषिकसूत्रम् 2.2.21

[28] (i) तुल्यजातीयेष्वर्थान्तरभुतेषु विशेषस्य उभयथा दृष्टत्वात् । - वै० सू० 2.2.22; तत्रैव च- वै० सू० रसायनव्याख्या 2.2.23; सुगमावैशेषिकसूत्रवृत्तिः 2.2.23
(ii) **टिप्पणी-** सुगमावृत्ति-रसायनभाष्ययोः तु “तस्मिन् द्रव्यं गुणं कर्मेति संशयः”। - वै० सू० 2.2.22 इति सूत्रमेवोपलभ्यते ।

[29] वैशेषिकसूत्रोपस्कारः 2.2.22, पृ० 181-182; सु० वै० सू० वृ० 2.2.23, पृ० 42-43; वै० द० रसा० 2.2.23, पृ० 94- 95

[30] केचन व्याख्याकाराः सूत्रस्यास्य प्रकारान्तरेण व्याख्यां कुर्वन्ति- शब्दे विशेषधर्मः संयोगजत्वं तुल्यजातीयेष्विन्द्रियैर्ग्राह्येषु रूपादिषु गुणेषु तद्भिन्नेषु द्रव्यकर्मषु च दृश्यते, तस्मात् संशयः शब्दो गुणो वा द्रव्यं वा कर्म वा । अथवा तत्रोभयप्रकारेण कोटिद्वयप्रकारेण न क्वपि दृश्यते विशेषधर्मो विभागजत्वम्, शब्दं विहाय न गुणेषु न द्रव्यकर्मसु दृश्यते तस्मात् संशयः । पुनश्चास्य विशेषधर्मः श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यत्वं तन्न द्रव्ये नान्यगुणे न कर्मणि तस्मात् संशयः । - वै० द० ब्रह्ममुनिभाष्यम्, पृ० 35; वै० सू० वैदिकवृत्तिः, पृ० 52-53

[31] (i) श्रोत्रमात्रेन्द्रियग्राह्यः शब्दः शब्दत्वजातिमान् ।
द्रव्यं सर्वगतो नित्यः कुमारिलमते मतः ॥ - मानमेयोदयः, पृ० 222
(ii) Mishra, Umesha, Nyāya-Vaiśeṣika, pp. 140-141.

[32] वियद्गुणत्वं शब्दस्य केचिदूचुर्मनीषिणः ।
प्रत्यक्षादिविरोधात् तद्भट्टपादैरुपेक्षितम् ।। तत्र गुणस्य सर्वस्य साश्रयतया प्रतीमानत्वादिह च निराश्रयतैव प्रतीतिदर्शनात् प्रत्यक्षविरोधः। -मा० मेयो०, पृ० 222-223

[33] शब्दो द्रव्यं साक्षादिन्द्रियसम्बन्धवेद्यत्वात्, घटवत् । - न्यायलीलावती, पृ० 665

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

(ग) संख्यावेगादयो गुणाः शब्दमाश्रित्यैव वर्तन्ते[34] गुणानाञ्च द्रव्याश्रितत्वं सर्वैः स्वीक्रियते[35]।
(घ) त्रैकालिकसंसर्गावच्छिन्नोऽयं शब्दः सर्वदा सर्वत्र सममेव गृह्यते। शब्दस्यैतत् सार्वकालिकग्रहणं तस्य विभुत्वं[36] नित्यत्वं[37] च द्योतयति । विभुत्वञ्च[38] द्रव्यस्यैव सम्भवति ।

एताभिः सर्वाभिः विशेषताभिः ज्ञायते यच्छब्दो द्रव्यं[39] न तु गुणः । वैयाकरणैरपि मीमांसकाभिमतं शब्दस्य द्रव्यत्वमेव स्वीक्रियते[40] ।

शब्दस्य द्रव्यत्वनिरासः-

वैशेषिकैः शब्दद्रव्यत्ववादीनामेतेषां युक्तियुक्तखण्डनैः सिद्धान्तोऽयं क्रमशः स्थिरीक्रियते **यच्छब्दो गुण एव न खलु द्रव्यमिति-**

(क) 'शब्दस्य प्रत्यक्षं स्वाश्रयिण आकाशात्पृथगेव भवतीति शब्दो न गुणः' इति भाट्टानामेष ऊहः व्यर्थ एव, इन्द्रियाणि प्रायशः द्रव्यस्थान् गुणानेव गृह्णन्ति, गुणानाम् आश्रयद्रव्याणां ग्रहणमिन्द्रियैः न क्रियते । इत्यतः गुणप्रत्यक्षे आश्रयद्रव्यस्य प्रत्यक्षं स्यादेव नास्त्येतदावश्यकम्। तद्यथा- चक्षुरिन्द्रियेण घ्राणेन्द्रियेण वा क्रमशः रूपगन्धयोः ग्रहणे सति एतदनिवार्यं नास्ति यत्तयोः आश्रयद्रव्ययोः अपि ग्रहणं भवत्येव। एतस्मादाश्रितत्वमेव गुणत्वस्याधारत्वमिति नियतं नास्ति। अतः यद्यपि गुणानां द्रव्याश्रितत्वं भवतु नाम किन्तु द्रव्याश्रितत्वमेव तेषां लक्षणमिति नाङ्गीक्रियते[41] ।
(ख) मीमांसकानां शब्दस्य साक्षादिन्द्रियसंयोगत्वशङ्कायां हेतोरसिद्धापत्तिः[42] ।
(ग) सङ्ख्यावेगादयो गुणाः वायोः सन्ति न तु शब्दस्य । वायोः शब्दस्य वाहकत्वात्[43] तद्गुणाः शब्दस्येत्युपचर्यन्ते भ्रान्तिवशात् यथा अज्ञानवशात् **'गौरोऽहम्' 'अन्धोऽहमिति'** शारीरकधर्मा आत्मनि आरोप्यन्ते[44] ।

---

[34] संख्याशब्दवेगादयोऽपि हि शब्दधर्मा अनुभूयन्ते । तदेव, पृ० 666
[35] स्वयं वैशेषिकाः - (i) द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम् । - वै० सू०, 1.1.16
(ii) रूपादीनां गुणानां सर्वेषां गुणत्वाभिसम्बन्धो द्रव्याश्रितत्वं निर्गुणत्वं निष्क्रियत्वम् । - प्रशस्तपादभाष्यम्, पृ० 60
(iii) अथ द्रव्याश्रिता ज्ञेया निर्गुणा, निष्क्रियाः गुणाः । - भाषापरिच्छेदः, कारिका 86
[36] विभुत्वाच्च द्रव्यम् । - पदार्थदीपिका, पृ० 39
[37] मीमांसादर्शनम्, तर्कपादः, 6-23
[38] सर्वमूर्तद्रव्यसंयोगित्वं विभुत्वम् । - तर्कसंग्रहदीपिका, पृ० 151
[39] पृथिवी सलिलं तेजः पवमानः (वायु) तमस्तथा ।
व्योम-काल-दिगात्मानो मनः शब्द इति क्रमात् ॥
एकादशविधं चैतत् कुमारिलमते मतम् ।- मा० मे०, पृ० 151
[40] लघुमञ्जूषा, पृ० 199-200
[41] (i) आश्रितत्वञ्चान्यत्र नित्यद्रव्येभ्यः । - प्र० पा० भा०, पृ० 7
(ii) आश्रितत्वं गुणत्वे हि न प्रयोजकमिष्यते ।
षण्णामपि पदार्थानामाश्रितत्वस्य संभवात्
दिक्कालपरमाण्वादि नित्यद्रव्यातिरेकिनः ।
आश्रिताः षडपीष्यन्ते पदार्था कणभोजिना ॥ - न्यायमञ्जरी, पृ० 210
[42] साक्षादिन्द्रियसम्बन्धवेद्यत्वं हि यावत्प्रसक्तपारिशेष्याद्वा निश्चीयते एकदेशपारिशेष्याद्वा ? नाद्यः, तत एवाद्रव्यत्वनिरूपणे लिङ्गग्राहकमानबाधात् । नेतरः, कर्मत्वादेरप्रतिषेधे संयुक्तसमवायादिवेद्यत्वशंकायां हेतोरसिद्धापत्तिः । - न्यायलीलावती, पृ० 667-68
[43] अनुकूलवातनिमित्तकारणकाः । - तर्कभाषा, पृ० 267; न्यायकन्दली, पृ० 695
[44] Mishra, Umesh : Physical Theory of Sound, AUS, Vol.2, p. 286.

(घ) विभुत्वाच्च शब्दो द्रव्यमिति युक्तिरपि सदोषा एव – शब्दो विभुपदार्थः चेत्तर्हि श्रोत्रेन्द्रियेण तस्य ग्रहणं न सम्भाव्यते; यतोहि श्रोत्रेन्द्रियमपि आकाशस्वरूपत्वात् विभुरेव। द्वयोश्च विभुपदार्थयोः परस्परसंयोगः केनापि प्रकारेण न सम्भवति संयोगाभावे च श्रोत्रेण शब्दस्य ग्रहणं कथमपि स्वीकर्तुं न शक्यते इत्यतः शब्दो न द्रव्यमिति वैशेषिकसिद्धान्तः[45] । महर्षिकणादोऽपि स्वयं शब्दस्य द्रव्यत्वं निराकुर्वन्नाह- किमपि कार्यद्रव्यम् एकद्रव्यसमवायिकारणकं न भवति अपितु तदनेकद्रव्यसमवायिकारणकमेव । तद्यथा- घटः द्वयोः कपालयोः पटश्चानेकतन्तुष्वेव समवेतो लक्ष्यते। अतः घटपटयोः समवायिकारणम्, अनेकद्रव्यसमवायिकारणकमेव विद्यते न तु एकद्रव्यसमवायिकारणकम्। किन्तु शब्दस्य समवायिकारणकमाकाशमेकमेव एतस्मादेकद्रव्यसमवायिकारणत्वाद् शब्दो न द्रव्यम्[46] अपितु गुण एव ।

शब्दस्य कर्मत्वनिरासः-एकद्रव्यसमवायिकारणत्वं शब्दस्य गुणत्वे हेतुश्चेत् कर्मणः अप्येकद्रव्यसमवायिकारणत्वाच्छब्दस्य कर्मत्वं स्यादित्येतां शङ्कां समादधता महर्षिकणादेनोक्तम्- 'शब्दः कर्म न भवितुं शक्नोति यतोहि शब्दस्य श्रावणप्रत्यक्षं भवति कर्मणस्तु चाक्षुषमेव। अतः चक्षुभिन्नश्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्षत्वात्कर्मत्वमसिद्धम्। लोके उत्क्षेपणादिकर्माणि चक्षुरिन्द्रियेणैव गृह्यन्ते किन्तु शब्दग्रहणे चक्षुरसिद्धा तस्य ग्रहणं तु खलु श्रोत्रेणैव भवति नान्येन। एतस्मादचाक्षुषत्वात्कर्मवैधर्म्याच्चायं शब्दो न कर्म इति'[47] । अपि च केनापि उत्क्षेपणादिकर्मवदाशुतरविनाशित्वं (क्षणिकत्वम्) शब्दस्यापि दृष्टे सति तस्य कर्मत्वं परिशङ्क्यते चेत्तत्राप्यदोष एव- आशुतरविनाशित्वं तु शब्दस्य गुणत्वेऽपि सम्भवति कर्मसाधर्म्यान्न तु कर्मत्वादिति भावः[48] । यथा द्वित्वादयः संख्याः, आत्मज्ञानम्, सुखदुःखेत्यादयो गुणाः क्षणिकाः तथैव शब्दस्यापि क्षणिकत्वे गुणत्वमुचितम्। वस्तुतस्तु आशुतरविनाशित्वं (क्षणिकत्वम्) कर्मणां व्याप्यधर्मः नास्ति- यत्र-यत्र कर्मत्वं तत्र-तत्राशुतरविनाशित्वमिति नियमाभावात् । अतः कर्मसाधर्म्येऽपि शब्दस्य कर्मत्वपरिहारः[49] ।

शब्दस्य सामान्यविशेष-समवायत्वनिरासः- वैशेषिकसूत्रविवृत्तिव्याख्यायां जयनारायणतर्कपञ्चाननेन- 'शब्दो शब्दत्वजातिमान् किन्तु सामान्यविशेषसमवायानां जातिर्न विद्यते'[50] इति शब्दस्य सामान्य-विशेष-समवायत्वपरिहारोऽपि क्रियते[51] ।

शब्दस्याभावत्वनिरासः-शब्दत्वजातित्वादेव यद्यपि शब्दस्य अभावत्वं परिह्रियते तथापि पद्मनाभमिश्रेण विध्यात्मकत्वादप्रतियोगित्वाच्चास्य अभावत्वं निराक्रियते[52] ।

---

45 वैशेषिक दर्शन में पदार्थ-निरूपण, पृ० 128

46 एकद्रव्यत्वान्न द्रव्यम । - वै० सू० 2.2.23 तत्रैव च- (i) द्रव्यञ्च किमप्येकद्रव्यसमवायिकारणकं न भवतीति द्रव्यवैधर्म्यान्नायं शब्दो द्रव्यमित्यर्थः । - वै० सू० उप० 2.2.23, पृ० 183
(ii) द्रव्यं कार्यद्रव्यं नैके द्रव्ये समवैति किन्त्वनेकेषु, यथा वस्त्रं नैकं तन्तुं समवैति न ह्येकस्मात् तन्तोर्वस्त्रं सम्पद्यते बहुभ्य एव सम्पद्यते । - वै० द० ब्र० भा०, पृ० 36

47 नापि कर्माचाक्षुषत्वात् । - वै० सू० 2.2.24 तत्रैव च- शब्दत्वं न कर्मवृत्ति चाक्षुषप्रत्यक्षावृत्तिजातित्वात् रसत्वादिवदिति भावः । - वै० सू० उप० 2.2.24, पृ० 183

48 गुणस्य सतोऽपवर्गः कर्मभिः साधर्म्यम् । - वै० सू० 2.2.25

49 वै० सू० उप० 2.2.25

50 सामान्यादिचतुष्टये जातिर्नास्ति । - तर्कसंग्रहदीपिका, पृ० 25

51 विवृत्तिः 2.2.25

52 नाप्यभावो निःप्रतियोगित्वात् । - सेतुः (प्र० पा० भा०), पृ० 317

शब्दस्य गुणत्वसिद्धिः- उपर्युक्तपर्यालोचनेन षण्णामपि द्रव्य-कर्म-सामान्य-विशेषसमवायाभावानामसिद्धे सति परिशेषानुमानेन शब्दस्य गुणत्वमङ्गीक्रियते[53] । अपि च शब्दस्य गुणत्वसिद्धावपि गुणानां द्रव्याश्रितत्वाद् एतत्तु अनिश्चितमेव यत्पृथिव्यादिषु नवद्रव्येषु किं तस्य कारणम् ? यतोहि पृथिव्यादिकार्यद्रव्येषु ये रूपादयो विशेषगुणास्ते कारणगुणपूर्वकाः दृष्टाः[54]। तद्यथा शुक्लतन्तुष्वेव शुक्लस्य पटस्योत्पत्तिः भवति नान्यत्र । शब्दोऽपि विशेषगुणः[55]। अतः किं तत्कार्यद्रव्यम् ? यत्र कारणगुणपूर्वकः शब्दः स्यात् किं वा शब्दस्य समवायिकारणमिति जिज्ञासायां महर्षिकणादेन द्रव्याणामेकैकशः परीक्षा क्रियते-

शब्दः स्पर्शवतामगुणः-स्पर्शवतामगुणत्वे वैशेषिकैः शब्दस्य त्रीणि कारणानि ज्ञाप्यन्ते- अकारणगुणपूर्वकत्वम्, अयावद्द्रव्यभावित्वम्, आश्रयादन्यत्रोपलब्धत्वञ्च[56] इति ।

शब्दस्याकारणगुणपूर्वकत्वम्-पृथिव्यादीनां चतुर्णां कार्यद्रव्याणां ये रूपरसादयो विशेषगुणाः, ते कारणगुणपूर्वका एव गृह्यन्ते यथा- तन्तुकपालादिषु कारणेषु ये रूपरसाद्यनुभूयन्ते, त एव रूपरसादयः पटघटादिषु कार्येष्वपि उपलभ्यन्ते[57] । परं शब्दस्तु न तथा यदि कारणगुणपूर्वकः शब्दस्स्यात्तर्हि वीणावेणुमृदङ्गशङ्खपटहाद्यवयवेषु यः शब्द उपलब्धः स एव वीणाद्यवयविषु उपलभ्येत। न चैवम् प्रत्युत निःशब्दैरेव वीणाद्यवयवैः वीणाद्यवयवीनामुत्पत्तिः दृश्यते किन्तु निरूपैः तन्तुकपालादिभिः पटघटादीनामुत्पत्तिर्न ज्ञायते । अतः अकारणगुणपूर्वकत्वात् शब्दः स्पर्शवतां (पृथिव्यप्तेजोवायूनाम्) गुणभावो न भजत इति[58] ।

शब्दस्यायावद्द्रव्यभावित्वम्- पृथिव्यादीनां स्पर्शवतां ये रूपरसादयो गुणाः ते यावद्द्रव्यभाविनः वैचित्र्येण नानुभूयन्ते किन्तु शब्दस्तु अयावद्द्रव्यभावी तार-तारतर-मन्द-मन्दतररूपेण वैचित्र्येणोपलभ्यते । यद्यपि वीणायाः यो रूपगुणः सः यावद्द्रव्यभावी सर्वेषु च वीणावयवेषु समानभावेन प्राप्यते । अनेन स्पष्टं यद्वीणायाः गुणः रूप एव न तु शब्द इति ।

शब्दस्याश्रयादन्यत्रोपलब्धत्वम्-यदि शब्दः स्पर्शवतां विशेषगुणः स्यात् तर्हि यैः शङ्खवीणादिभिः शब्द उत्पद्यते, त एव शङ्खादयो शब्दस्याश्रयिणः स्वीकर्तव्याः परन्तु शब्दस्तु तेभ्यः अन्यत्र कर्णशष्कुलीप्रदेशे समुपलभ्यते । न चान्यगुणस्यान्यत्र ग्रहणमस्तीति नियमान्न स्पर्शवद्विशेषगुणः शब्द इति[59] ।

शब्दो नात्मगुणः- शब्द आत्मनि असमवेतत्वे सति अन्यत्र समवेतत्वात् नात्मगुणः[60] । शब्दो यद्यात्मगुणो स्यात्तर्हि- अहं सुखी, अहं दुःखी, अहं यते, अहं जानामि इत्याद्यात्मानुभववत्- अहं वाद्ये, अहं शब्दवानिति अनुभवः स्यात् किन्तु अनुभवस्तु

---

53 परिशेषस्तु प्रसक्तप्रतिषेधेऽन्यत्र प्रतिषेधात् । - व्योमवती, पृ० 329
तथा- प्रसक्तप्रतिषेधेऽन्यत्राप्रसङ्गाच्छिष्यमाणे सम्प्रत्ययः परिशेषः इत्यर्थः । तदेव, पादटिप्पणी

54 कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः । - वै० सू० 2.1.24

55 (i) रूपरसगन्धस्पर्शस्नेहसांसिद्धिकद्रवत्वबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मभावनाशब्दा वैशेषिकगुणाः।
सङ्ख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वगुरुत्वनैमित्तिकद्रवत्ववेगाः सामान्यगुणाः । - प्र० पा० भा०, पृ० 60
(ii) बुद्ध्यादिषट्कं स्पर्शान्ताः स्नेह सांसिद्धिको द्रवः ।
अदृष्टभावनाशब्दा अमी वैशेषिका गुणाः ॥
संख्यादिरपरत्वान्तो द्रवोऽसांसिसिद्धिकस्तथा ।
गुरुत्ववेगौ सामान्यगुणा एते प्रकीर्तिताः ।। - भा० परि०, कारिका 90-92

56 शब्दः प्रत्यक्षत्वे सत्यकारणगुणपूर्वकत्वादयावद्द्रव्यभावित्वादाश्रयादन्यत्रोपलब्धेश्च न स्पर्शवद्विशेषगुणः । - प्र० पा० भा०, पृ० 37

57 कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः । - वै० सू० 2.1.24

58 कार्यान्तरप्रादुर्भावाच्च शब्दः स्पर्शवतामगुणः । - वै० सू० 2.1.25

59 न्या० क०, पृ० 144-146; व्योम०, पृ० 322-328; सूक्तिः, पृ० 310-311; सेतु, पृ० 317- 319

60 परत्र समवायात् प्रत्यक्षत्वाच्च नात्मगुणो न मनोगुण । - वै० सू०, 2.1.26

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

शङ्खः पूर्य्यते, वीणा वाद्यते इति भवति । अतः शब्दो नात्मगुणः[61] । तथा च सुख-दुःख-ज्ञानेत्यादयो आत्मगुणाः बाह्येन्द्रियैः न गृह्यन्ते परन्तु शब्दस्य बहिरिन्द्रिय-श्रोत्रग्राह्यत्वं स्पष्टमेव, इत्यतोऽपि शब्दो नात्मगुणः[62] ।

न मनोगुणः शब्दः, नापि च दिक्कालयोः-अमनोगुणत्वेऽपि हेतुमाह महर्षिकणादः- **प्रत्यक्षत्वादिति**[63] । शब्दस्य श्रोत्रेन्द्रियप्रत्यक्षं भवति यदा च अणुपरिमाणवतो मनसः[64] विशेषगुणप्रत्यक्षशक्तिरसम्भवा यतोहि विशेषगुणप्रत्यक्षत्वे द्रव्यस्य महत्परिमाणवत्त्वमावश्यकम् मनस्तु अणुपरिमाणवदिति शब्दो न मनोगुण इति। शङ्करमिश्रः प्रत्यक्षत्वादिति अनेनैव हेतुना दिक्कालयोरपि गुणत्वं शब्दस्य प्रतिषिद्धमिति सूचयति[65] । आचार्यप्रशस्तपादोऽपि श्रोत्रग्राह्यत्वात् विशेषगुणत्वाच्च शब्दो न दिक्कालमनसां गुण इति कणादाभिमतमेव स्पष्टयति[66] । व्योमवतीकारस्तु- यो यो विशेषगुणः सः सः दिक्कालमनसां गुणो न भवितुं शक्नोति । शब्दोऽपि विशेषगुणः एतस्माद्विशेषगुणत्वाच्छब्दो न दिक्कालमनसां गुण इति अनुमानयुक्त्यैव शब्दस्य दिक्कालमनोगुणत्वमपनयति[67] ।

परिशेषतः शब्दोऽम्बरगुणः-उपर्युक्तविधिना पृथिव्यप्तेजोवायुकालदिगात्ममनसामष्टानां द्रव्याणां शब्दगुणाश्रयत्वे असिद्धे सति परिशेषादाकाश एव शब्दस्याश्रय इति निश्चीयते[68] यतोहि शब्दो गुणः, गुणश्च द्रव्यमन्तरेण न सम्भवति[69], द्रव्याणि च नवैव[70], तत्रापि पृथिव्यादिष्वष्टसु शब्दाश्रयत्वं न विद्यते। अतः परिशेषाद् शब्दस्याश्रयरूपेण आकाशसिद्धिर्भवतीति[71]। उदयनाचार्योऽपि शब्दस्य गुणवत्तया एव आकाशसिद्धिं प्रतिष्ठापयति[72]। व्योमवतीकारेणापि आकाशसिद्धौ एतदेवानुमानमुपन्यस्तम्[73]। इत्थं पर्यालोचनेन शब्द आकाशस्य विशेषगुण इति वैशेषिकसिद्धान्तः स्थापितो भवति[74] ।

---

61 वै० सू० उप०, पृ० 150; वै० द० ब्र० भा०, पृ० 27; सु० वै० सू० वृ०, पृ० 34

62 बाह्येन्द्रियप्रत्यक्षत्वादात्मान्तरग्राह्यत्वादात्मन्यसमवायादहङ्कारेण विभक्तग्रहणाच्च नात्मगुणः । - प्र० पा० भा०, पृ० 37

63 वै० सू० 2.1.26

64 तदभावादणु मनः । - वै० सू० 7.1.23; न्या० क०, पृ० 223

65 वै० सू० उप० 2.1.26, पृ० 150

66 श्रोत्रग्राह्यत्वाद् वैशेषिकगुणभावाच्च न दिक्कालमनसाम् । - प्र० पा० भा०, पृ० 37

67 तथा च शब्दः, दिक्कालमनसां गुणो न भवति, विशेषगुणत्वात् । यो यो विशेषगुणः स स दिक्कालमनसां गुणो न भवति, यथा रूपादिः, तथा चायं विशेषगुणः, तस्मान्न दिक्कालमनसां गुणः शब्दः इति । - व्योम०, प्रथमो भागः, पृ० 116

68 (i) परिशेषाल्लिङ्गमाकाशस्य । - वै० सू० 2.1.27

(ii) परिशेषाद् गुणो भूत्वा आकाशस्याधिगमे लिङ्गम् । - प्र० पा० भा०, पृ० 39

69 (i) द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इति गुणलक्षणम् । - वै० सू० 1.1.16,

(ii) अथ द्रव्याश्रिताः ज्ञेयाः निर्गुणाः निष्क्रिया गुणाः । - भा० परि०, कारिका 86

70 (i) पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि । - वै० सू० 1.1.5

(ii) तत्र द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि सामान्यविशेषसंज्ञयोक्तानि नवैवेति । तद्व्यतिरेकेणान्यस्य संज्ञानभिधानात् । - प्र० पा० भा०, पृ० 3

71 गुणः शब्दः, गुणश्च गुणिना विना न भवति, न चैष पृथिव्यादीनां गुणः, द्रव्यान्तरञ्च नास्ति, तस्माद्यस्यायं गुणस्तदाकाशमिति परिशेषादाकाशस्याधिगमे प्रतिपत्तौ लिङ्गमित्यर्थनिर्देशः । - न्या० क०, पृ० 150

72 लक्षणावली, पृ० 12; किरणावली, पृ० 110

73 व्योम०, प्रथमो भागः, पृ० 117

74 (i) आकाशस्य तु विज्ञेयो शब्दो वैशेषिको गुणः । - भा० परि०, कारिका 44

(ii) सर्वः शब्दो नभोवृत्तिः श्रोत्रोत्पन्नस्तु गृह्यते । - भा० परि०, कारिका 165

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. वैशेषिकसूत्रम्, कणादः, सं० नारायण मिश्रः, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी, 1966.
2. वैशेषिकसूत्रोपस्कारः, शंकर मिश्रः, सं० ढुण्ढिराज शास्त्री, काशी संस्कृत ग्रन्थमाला, वाराणसी, 1969.
3. वैशेषिकदर्शनं 'रसायनाख्यव्याख्योपेतम्', श्रीवीरराघवाचार्यः, मद्रासः, 1958.
4. वैशेषिकसूत्रवैदिकवृत्तिः, पण्डितस्वामिहरिप्रसादपरमहंसः, निर्णयसागर, मुम्बई, 1961.
5. वैशेषिकदर्शनं ब्रह्ममुनिभाष्योपेतम्, स्वामी ब्रह्ममुनिः परिव्राजको विद्यामार्तण्डः, आर्यकुमार महासभा आत्माराम रोड, बडौदा, 1995.
6. सुगमा वैशेषिकसूत्रवृत्तिः, देशिकतिरुमलताताचार्यः, सं० वि० श्री० रङ्गनाथाचार्यः, गंगानाथझाकेन्द्रियसंस्कृतविद्यापीठम्, प्रयागः, 1979.
7. प्रशस्तपादभाष्यम्, (सूक्ति-सेतु-व्योमवतीटीकाभिः सहितम्), सं० गोपिनाथकविराजः ढुण्ढिराजशास्त्री च, चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1983.
8. प्रशस्तपादभाष्यम् (न्यायकन्दली टीका), प्रशस्तपादः, व्या० पण्डित श्री दुर्गाधर झा शर्मा, सम्पूर्णानन्दसंस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1997.
9. व्योमवती, व्योमशिवाचार्यः, सं० गोपीनाथ कविराजः, ढुण्ढिराज शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ग्रन्थसंख्या 61, वाराणसी, 1930.
10. किरणावली, उदयनाचार्यः, सं० विन्ध्येश्वरी प्रसाद द्विवेदी, बनारस संस्कृत सीरीज, सं. 9, वाराणसी, 1897.
11. लक्षणावली, उदयनाचार्यः, सं० शशिनाथ झा, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1963.
12. न्यायकन्दली, श्रीधराचार्यः, सं० दुर्गाधर झा, गंगानाथ झा ग्रन्थमाला सं. 1, वाराणसी, 1963.
13. न्यायलीलावती, श्रीवल्लभाचार्यः, सं० हरिहर शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, सं. 355, बनारस, 1927.
14. भाषापरिच्छेद (न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीसहित), विश्वनाथः, सं० हरिराम शुक्ल शास्त्री, काशी संस्कृत सीरीज, 6, वाराणसी, 1972.
15. तर्कभाषा, केशवमिश्रः, व्या० डॉ० श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ, 1999.
16. तर्कसङ्ग्रहः 'दीपिका सहितः', अन्नम्भट्टः व्याख्या.- कांशीराम एवं सन्ध्या राठौर, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2007.
17. पदार्थदीपिका (हस्तलिपि), कौण्डभट्टः, सरस्वतीभवनपुस्तकालयः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी.
18. न्यायमञ्जरी (भागद्वयम्), जयन्तभट्टः, सं० सूर्यनारायणशुक्लः, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, 1971.
19. वैशेषिक दर्शन में पदार्थनिरूपण, प्रो० शशिप्रभा कुमार, प्रकाशन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, 1992.
20. Mishra, Umesh, NyĀya-Vaiśeṣika Conception of Matter in Indian Philosophy, Bharatiya Kala Prakashan, Delhi-35, 2006 (Reprint).

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

अमूर्त "व्रज" से मूर्त ब्रज की यात्रा

(वेद से अर्वाचीन लोक तक)

डा. मीनाक्षी
खरगोन, मध्यप्रदेश

SID- 234518486

Received on--1/4/2021 22:48:21 | **Accepted on-** 26th January, 2021

प्रमुख शब्द- व्रज, ब्रज, ऋग्वेद, अमूर्त, काल

शोध-सार

हर शब्द की एक अपनी यात्रा होती है जिसके द्वारा वह कभी स्वयं को व्यापक करता है अथवा स्वयं को सीमित। कभी-कभी शब्द भिन्न अर्थ में भी प्रयोग होने लगते हैं इसी श्रंखला में व्रज शब्द जो प्राचीन काल में अमूर्त रूप को धारण करता था मध्यकाल तक आते-आते मूर्त स्थान का वाचक हो जाता है। समस्त भक्ति आंदोलन इस शब्द के मूर्तिमान होने पर सुदृढ़ आधार पा जाता है। इसी ब्रज शब्द की यात्रा को ऋग्वेद से लेकर स्तोत्र साहित्य तक भिन्न-भिन्न अर्थों को धारण करते हुए स्थान वाचक के रूप में रूढ़ होते हुए इस शोध पत्र में प्रस्तुत किया गया है।

ABSTRACT

Each word has its own journey by which it ever broadens or limits itself. Sometimes words begin to be used in different ways in this series, the word ' Vraj ', which holds an abstract form in ancient times, becomes a signifier of the tangible place by the middle of the period. The entire bhakti movement gets a strong base when this word is idolised. This research paper, while holding different meanings from Rigveda to ode literature, to the journey of the same Braj.

अमूर्त "व्रज" से मूर्त ब्रज की यात्रा एक शब्द यात्रा है जो अमूर्त तत्वों से होते हुए भावों की बहुलता से तथा विभिन्न आध्यात्मिक अनुभूतियों द्वारा अभिषिक्त होकर स्वयं की मूर्त रूप में उपस्थापना करता है। ब्रजभूमि का प्राण है श्रीराधाकृष्ण तत्व, इसी लिए यह भूमि सदैव से ही भारतीय साधकों के लिए आकर्षण का केन्द्र रही है ! ब्रज भारतीय लोकमानस का ललित भाव है ! संस्कृत का शब्द ' व्रज ' ऋग्वेदकालीन है जिस का अर्थ है ' गायों का खिरक ' या पशुओं का समूह, जो गतिमान और घुमन्तु हो ! कहीं – कहीं पशुओं के चरागाह के लिए भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ है और चौथी सदी ईसा पूर्व

के लगभग रचे कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र के युग में भी ' ब्रज ' शब्द इन्हीं अर्थों में प्रयोग हो रहा था, पर आज हम उत्तर भारत में जिस क्षेत्र को ' ब्रज मण्डल ' के नाम से पहचानते हैं , वह भू-भाग प्राचीन भारत में ' शूरसेन जनपद ' कहलाता था । ब्रज शब्द की विकास यात्रा को हम निम्न बिंदुओं में देख सकते हैं

1. **वैदिक वाङ्मय में '"व्रज"' शब्द का अर्थ**
2. **महाभारत तथा स्मृति ग्रंथों में '"व्रज"' शब्द का अर्थ**
3. **पौराणिक साहित्य में '"व्रज"' शब्द का अर्थ**
4. **संस्कृत साहित्य में '"व्रज"' शब्द का अर्थ**
5. **अन्य स्तोत्र साहित्य में '"व्रज"' शब्द का अर्थ**

'"व्रज"' शब्द का अर्थ कोशों के अनुसार "व्रज" शब्द संस्कृत की ""व्रज" गतौ" धातु से निष्पन्न होता है- **"गोचर संचरेति**[75]**"** इस प्रकार यह गति सूचक है। **'"व्रज"'** धातु से **घञ् प्रत्यय** बनाकर पुल्लिंग शब्द "व्रज" गमनार्थक है। अमरकोश के अनुसार समूह का वाचक है-

समूहे निवहव्यूहसन्दोहविसरव्रजाः ।
स्तोमौघनिकरव्रातवारसङ्घातसञ्चया ।।[76]

वही अमरकोश में "व्रज" को गवां स्थानम् / गोस्थानक के रूप में भी कहा गया साथ ही मार्ग के पर्याय के रूप में भी स्वीकार किया गया है। **वैजयंती कोश** के अनुसार - **व्रजः स्याद्गोकुलं गोष्ठम् । मेदिनी कोश** के अनुसार- **निरुद्ध वीवधासारप्रसारा गा इव व्रजम् ।** इस प्रकार हम '"व्रज"' को विभिन्न कोषों में और विभिन्न व्युत्पत्तियों के अनुसार समूह, मार्ग, गति, गोसमूह, वनसमूह, इत्यादि के रूप में देखते हैं।

❖ **वैदिक साहित्य में "व्रज" शब्द**

ऋग्वेद में पशुओं की चरागाह, बाड़ा, या समूह के रूप में ब्रज शब्द का प्रयोग मिलता है यथा-

गवामयं व्रजं वृथि कृणुष्व राधौ अद्रिवः ।[77]
अभि प्सुरः प्रुषायति व्रजं न आ प्रुषायति[78]

पूषन् सूक्त में कहा गया है कि वह रूपवान् पूषा कृपा कर जल वृष्टि करता है और हमारे गोष्ठ में भी जलवृष्टि करता है।

अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव व्रजमक्रमुः ।[79]

जैसे चोर गोष्ठ पर आक्रमण करता है वैसे ही औषधियां रोग पर आक्रमण करती है यहां पशुधन के रूप में "व्रज" को लिया गया है।

यं त्वा जनासो अभि सञ्चरति गांव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ ।[80]

---

[75] पाणिनिसूत्र 3/3 /119
[76] अमरकोश 2/5/39/1/6
[77] ऋ. 1/10/7
[78] ऋ 10/26/3
[79] ऋ.10/97/10
[80] ऋ.10/111/2

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 Since 2010

अग्नि से प्रार्थना की जाती है कि जिस प्रकार गाय शीत पीड़ित होकर उष्ण गोष्ठ की ओर गमन करती है उसी प्रकार हम भी तुम्हारी ओर गमन करते हैं। कहीं-कहीं यह शब्द जलाशय के अर्थ में भी आया है[81]

छन्दांसि वै गोस्थान:[82]

यहां पर भी "व्रज" गोस्थान के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अथर्ववेद में भी पशु समूह या पशुओं के बाड़े के रूप में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है।

अयं अस्मदीयो व्रज:[83]

इसके अतिरिक्त वैदिक सूक्त ओं में कई स्थलों पर "व्रज" शब्द आया है क्योंकि पशुपालन तथा यज्ञ कर्म प्रमुख कर्म थे उसमें भी गायों की प्रमुखता थी सलमान पणि संवाद ऋग्वेद काइसका उपयुक्त उदाहरण है यहां तक व्रत शब्द को समूह चरागाह के रूप में आया है जो चलित रूप है गतिमान है परंतु **तैत्तिरीय ब्राह्मण**[84] **में** निर्देशित करता है कि "व्रज" को अश्वस्थ लकड़ी से बनाया गया है बड़े से द्वार के साथ जिससे गायों की चोरी ना हो सके यहां स्थाई गोष्ठ के रूप में "व्रज" शब्द आता है मैत्रायणी संहिता में इसका **२,२८३ वर्ग** आकार दिया गया है।[85]

इसके साथ ही "व्रज" स्थान रूप को प्राप्त कर लेता है और अपने गति के अर्थ को आंशिक रूप में छोड़ देता है उपनिषदों में भी यह लाक्षणिक प्रयोग देखने को मिलता है।

- **महाभारत तथा स्मृति ग्रंथ**

महाभारत में तथा स्मृति ग्रंथों में यही "व्रज" शब्द उन्हीं अर्थों को द्योतित करता है जिन अर्थों में हम इसे वैदिक काल में जानते हैं जैसे गायों का झुंड मार्ग वन जलाशय गो स्थान इत्यादि गतिशीलता थोड़ी कम जरूर हुई थी

आसीनं गो व्रजे तस्मिन्वहन्तं शवपन्नगम्[86]

न मूत्रं पथि कुर्वीत न भस्मानि गो व्रजे।[87]

गो महिषजाविकंखरोष्ट्रमश्वाश्वतराश्च व्रजः।[88]

- **पुराण**

यहां तक अर्थात् वेद उपनिषद तथा स्मृति ग्रंथों तक जो जानवरों का समूह जलाशय को समूह मार्ग को स्थान इत्यादि विविध रूपों में जो "व्रज" शब्द ध्वनित होता था वह आगे जाकर वही शब्द पुराणों में सभी अर्थों को समाविष्ट कर लेता है। पुराणों में इसी "व्रज" की गोचारण भूमि के नायक श्रीकृष्ण अधिष्ठाता बनते हैं और कृष्णावतार की कथा के साथ-साथ "व्रज" का अमूर्त आख्यान हमें पुराणों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। जिसकी विहंगम झलकी हमें शील भट्टनारायण

---

81 वाजसनेय संहिता 10. 4 तै. ब्राह्मण 1.8. 11. 1

82 तै. ब्रा.3/2/9/3

83 अथर्ववेद 4/38/7

84 3/8 /12 /12

85 मै. सं. २/६/७

86 महा.1/41/15

87 मनु.4/45

88 कौ. अ.2/6/24/7

CONTACT US- JAHNAVISANSKRITJOURNAL@GMAIL.COM WEBSITE-JAHNAVISANSKRITEJOURNAL.IN

 Since 2010

गोस्वामी विरचित **ब्रजभक्तिविलास** में 1588 ईसवी के आसपास प्राप्त होती है। ग्रंथ आरंभ में ही बताया गया है कि इसमें पुराणों मत्स्य-पुराण, पद्म-पुराण, विष्णु-पुराण, कूर्म-पुराण, वराह-पुराण, ब्रह्मांड-पुराण, नारद-पुराण इत्यादि में वर्णित 12 वन जो कि चौरासी कोस परिमित ऊंचा स्थान है उसे ही ब्रजमंडल कहा गया है।

व्रजमण्डलभूगोलं शेषनागफणं वरं
कुमुदाख्यं महाश्रेष्ठं सर्वेषां मध्यसंस्थितम्।
....चतुरष्टकक्रोशेन परिपूर्णविराजितम्।[89]

पद्मपुराण के अनुसार वन उपवन प्रतिवन और अधिक वन 48 संख्या में है तथा चौरासी कोस परिसीमा में है ।
अब यहां "व्रज" शब्द वन के रूप में रोड होता गया जो गौ समूह मार्ग जलाशय चरागाह गोष्ठी सभी का सम्मिलित रूप था। श्रीमद्भागवत पुराण तो "व्रज" वंदना का गायन ही करता है। जिसका अनुगायन हमें संस्कृत हिन्दी ब्रजभाषा अवधी इत्यादि में सहज प्राप्त होता है ।इस समय अर्थात पौराणिक काल में ब्रज क्षेत्र वासी होता गया जो कृष्ण के गोपालन तथा गोचरण से संबंध तथा भागवत के दशम स्कंध के प्रथम अध्याय में परीक्षित का प्रश्न स्पष्ट रूप से किसी निश्चित प्रदेश का ही द्योतन करता है।

कस्मान्मुकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद् व्रजं गतः।[90]
व्रजे वसन्किम् करो मधुपुर्या केशवः।[91]

❖ **संस्कृत साहित्य**

संस्कृत साहित्य में इस पौराणिक ब्रजमंडल की गूंज हमें विविधताओं के साथ सुनाई देती है।संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम भास के नाटकों में हमें कृष्ण चरित प्राप्त होता है उसमें भी **"बाल चरित्"** श्रीमद्भागवत का साररूप ही है जिसमें **कृष्णबाललीला** तथा **कालियादेह** इत्यादि "व्रज" लीलाओं का वर्णन हमें प्राप्त होता है यहां "व्रज" शुद्ध स्थान वाचक शब्द माना गया है। **राघव यादव** एवं काव्य में एक ओर से रामचरित तो दूसरी ओर पड़ने पर कृष्णचरित पाठ होता है जिसमें "व्रज" वर्णन भी शामिल है।

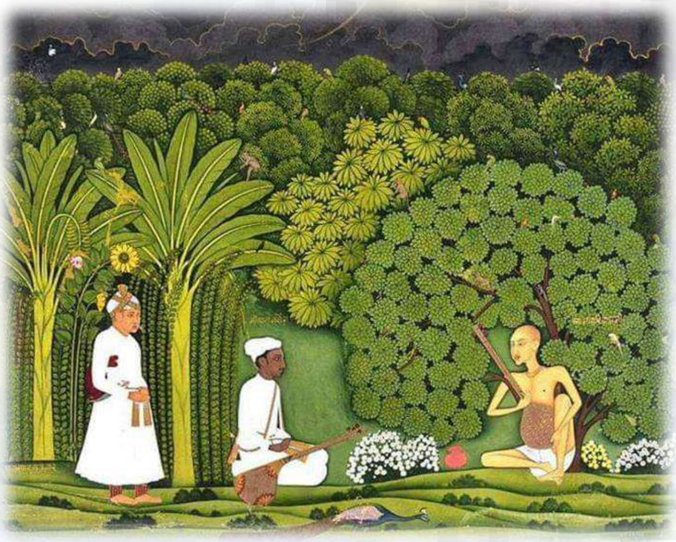

1280 में जयदेवकृत **"गीतगोविंदम्"** रास पंचाध्यायी भागवत का सार ही है जो समस्त निकुंज लीला का वर्णन करता है। 1588 **में "भक्तिविलास"** जो श्रील नारायण भट्ट गोस्वामी द्वारा विरचित है जिसमें ब्रज के समस्त स्थलों का सूक्ष्मता से वर्णन किया गया है।

---

89 मत्स्यपुराण
90 भागवत्-10/1/8
91 भागवत्-10/1/9

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 Since 2010

1500 ई में रूप गोस्वामी कृत **विदग्ध-माधव** दूत काव्य परंपरा में भी रूप गोस्वामी कृत **उद्धव दूत** तथा **हंस दूत ,उद्धव संदेश** इत्यादि काव्य में ब्रज का वर्णन है इन सभी में ब्रज स्थान वाचक ही है और स्थल भी अमूर्त से मूर्त की ओर प्रवृत्त हुए हैं और यहीं से पुराणों में वर्णित अमूर्त से मूर्त ब्रज की यात्रा प्रारंभ हो जाती है कई उपासक अनुभूति के दरवाजे खटखटा ते हुए उन उन स्थानों को ग्रहण करते और भक्ति रस का आनंद लेते। (आचार्य हरिदास जी)

❖ **संस्कृत स्तोत्र साहित्य**

संस्कृत की स्तोत्र साहित्य बृज की साकार मूर्तिमान स्वरूप का ही गुणगान करते हैं । शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, रामानंदाचार्य ,वल्लभाचार्य, माधवाचार्य, निंबार्काचार्य, चैतन्यदेव इत्यादि अनेकानेक संतो द्वारा की जाने वाली वंदना संस्कृत साहित्य को निरंतर समृद्ध करती है। भक्ति आंदोलन के परिणाम स्वरूप संतो द्वारा प्रवाहित भक्ति ज्ञान धारा का प्रत्यक्ष लोक में करवा कर इस पृष्ठभूमि को आनंद की स्थली बना दिया । उन्होंने पुराणोक्त कृष्ण स्थलों का प्राकट्य कर सभी भक्तों को अमूर्त ब्रज से मूर्ति ब्रज का साक्षात्कार करवाया। इनकी भक्ति इतनी सांद्रित थी कि बाल गोपाल नेत्रों के समक्ष ब्रज लीला निकुंज लीला हंसते गाते लोगों के जीवन का अंग बनते चले गए और यहां के देवालय संस्कृति एक नए रूप में हवेली के स्वरूप में स्थापित हुई जहां पर श्री कृष्ण नर्तन करते हुए से दिखाई देने लगे।

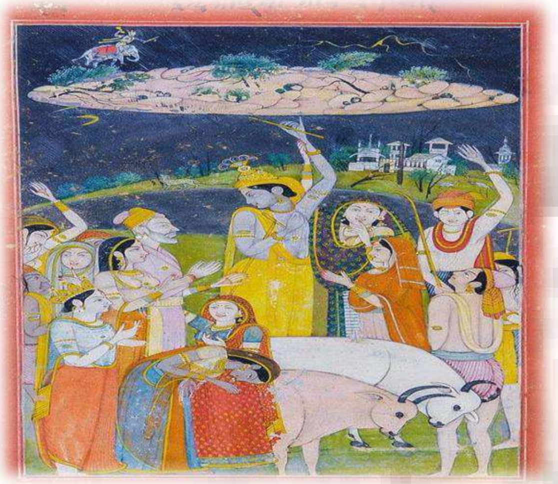

सन्दर्भग्रन्थसूची

- काव्यप्रकाशः, संस्कृत पुस्तक भाण्डार, कलिकाता, 2008
- कौटलीयार्थशास्त्रम्,आर.पी.कांगलो, मुम्बाई, 1966
- छान्दाग्योपनिषद्, पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति सस्थान, बरेली।
- तर्कसंग्रहः, हरिकृष्णनिबन्धभवनम्, 1960
- तैत्तिरीयारण्यकम्, आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावली, 1967
- तैत्तिरीयोपनिषद्, पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति सस्थान, बरेली।
- तैत्तिरीयोपनिषद्, स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती, चैखम्भा संस्कृत सस्थान, वाराणसी।
- पूर्वमीमांसासूत्रम्-चौखम्बा संस्कृत सिरीज आफिस्, वाराणसी, 1916
- ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, निर्णयसागरप्रेस्, मुम्बई, 1904
- मनुस्मृतिः, मोतिलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1990
- याज्ञवल्क्यस्मृतिः(मिताक्षरासहिता) चौखम्बासंस्कृतप्रतिष्ठान, दिल्ली, 2005
- रघुवंशम्, चौखम्बासंस्कृतसंघटन, वाराणसी, 1985
- वेदान्तसारः, राष्ट्रियसंस्कृतसाहित्यकेन्द्र, जयपुर, 2005
- सङ्गीतपारिजातः, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1987

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

निरुक्ते व्याकरणांशाः

डा. दिद्दिगि वंशीकृष्णः
सहायकसंशोधकः, प्राच्यविद्यासंशोधनालयः,
मैसूरु विश्वविद्यानिलयः, मैसूरु – ५७०००५.

SID- 350376161

Received on-8/31/2020 15:51:19 | **Accepted on-** 26th January, 2021

प्रमुखशब्दाः-निरुक्तम्, शास्त्रम्, अङ्गम्, व्याकरणम्, वैयाकरणः, गार्ग्यः, औदुम्बरायणः, शाकटायनः, नाम, आख्यातः, उपसर्गः, निपातः ॥

शोधसारः

वस्तुतः निरुक्तं वैदिकानां क्लिष्टशब्दानां सङ्ग्रहग्रन्थस्य पञ्चाध्यायात्मकस्य निघण्टोः व्याख्यैव यास्ककृता। अयं निरुक्तग्रन्थः व्याकरणविशेषश्चापि वैदिकक्लिष्टशब्दनिर्वचनसमुच्चयः। एवमेव अस्मिन् निरुक्ते यास्कादपि प्राचां निरुक्तकाराणां वैयाकरणानाञ्च नामनिर्देशनं द्रष्टुं शक्यते। एनमेव उल्लेखमनुसृत्य अयं निरुक्तग्रन्थः व्याकरणविशेषशब्दनिरुक्तसमुच्चय इति वक्तुं शक्यते। परन्तु एतयोः शास्त्रयोरङ्गयोर्वा मध्ये को वा विषयः साम्यः को वैषम्य इति प्रश्नः सर्वथा सम्भूयत एव। तत्परिहारार्थमेव इदं लेखनं लिखितुं प्रवृत्तोऽहम्।

ABSTRACT

The Nighantu granth with chapter 5, which is written by the Maharishi Yask, is known as the Nirukt Shastra, in which the Acharyas of ancient grammar and the disabled have also been mentioned in this disincered Then there is a question about the similarity and inequality between the non-scriptures and the grammar, which is to address the research paper which explains the relationship between the two scriptures.

व्याकरणं प्रकृतिप्रत्ययाद्युपदेशेन पदस्य स्वरूपं तदर्थञ्च बोधयति। व्याकरणशास्त्रव्यासङ्गो भारतभूमौ यास्काचार्यात् प्रागेव आरब्धो भवितुमर्हति। यतो हि यास्काचार्यः प्राचामुदीचां च वैयाकरणानां मतभेदान् निर्दिशति। शाकटायनगार्ग्याचार्यादीन् प्रमुखान् पूर्वान् वैयाकरणांश्च स्मरति। निरुक्ते नाम्नां धातुजत्वविषये सरसः कश्चन वादः श्रूयते। शाकटायनः सर्वाणि नामानि धातुजानीति तस्य मतं स्थापयति। गार्ग्यादयः केचन वैयाकरणाः तन्मतं खण्डयन्तो तेषामेव मतमितरं निरूपयन्ति। ते तु केषाञ्चिदेव नाम्नां धातुजत्वम् अभ्युपयन्ति। यास्काचार्येण तेषामेषः प्रतिपक्षः साधिक्षेपं प्रतिक्षिप्यते। नाम्नां

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 Since 2010

धातुजत्वनियममुक्त्वैव समग्रं पाणिनीयं तन्त्रं प्रतिष्ठितम्। पाणिनीये व्याकरणे प्राधान्येन लौकिका एव शब्दाः व्याचिकीर्षिताः। तत्र पाणिनीये व्याकरणे वैदिकास्तु शब्दाः अपवादविधया व्याक्रियन्ते। परन्तु पाणिनिः स्वव्याकरणे पूर्वान् वैयाकरणान् तत्र तत्र उल्लङ्घ्यैव नवीनं पन्थानमाश्रितः इति तदध्ययनेनावगम्यते। पाणिनेः प्राक्तनः शब्दशास्त्रविषयकः ग्रन्थः सम्प्रति यास्कनिरुक्तमेकमेवोपलभ्यते। वेदस्य शब्दात्मकत्वात् शब्दशास्त्रम् इति विख्यातस्य व्याकरणस्य अवगतिरत्राङ्गत्वेन प्रतिपाद्यत एव।

निरुक्तस्थाः व्याकरणविशेषाः :-

निरुक्तस्य पीठिकायां यास्काचार्यः कांश्चित् व्याकरणांशानपि प्रतिपादितवान्। अस्मादेव अध्ययनात् यास्कस्य काले व्याकरणस्य प्राबल्यमपि ज्ञायते। अस्मिन् निरुक्ते प्रतिपादितास्तु विषयाः प्रातिशाख्यानां पाणिनीयव्याकरणस्य चापि मध्यकालीनाः भवन्ति। समस्तं शब्दप्रपञ्चं यास्कः नामाख्यातोपसर्गनिपाता इति चतुर्धा विभक्तवान्। स च विभागः निरुक्ते[92] एवं दृश्यते- "तद्यान्येतानि चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्च तानीमानि भवन्ति" इति। तत्रापि विभक्तानां एकैकस्यापि लक्षणं प्रतिपादयति। यथा- "भावप्रधानमाख्यातम्" "सत्वप्रधानानि नामानि"[93] इति। एवमुक्त्वा उपसर्गलक्षणप्रतिपादनसमये आचार्यो यास्कः शाकटायनस्य मतरीत्या उपसर्गाणां साक्षादर्थाभिधानशक्तिभावेऽपि नामाख्यातयोः संयोगेन विशेषार्थं दीयन्ते इति तस्य सुमतं बोधितवान्। एवमुक्त्वा सति नामाख्याताभ्यां वियुक्ता अपि उपसर्गाः तेषामर्थं दीयन्ते इति गार्ग्याचार्यस्य मतमपि निरूपयन्ति। अत्र तु निरुक्ते[94] यास्कः उपसर्गलक्षणप्रतिपादने गार्ग्यस्यैव मतमनुसृतवानिति स्पष्टं दृश्यते। एवं उपसर्गनिपातयोः लक्षणप्रतिपादनसमये यास्कः अनेकान् मन्त्रान् उदाहृत्य तान् शब्दनिर्वचनान् पुष्टीकृतवान्।

यास्को आचार्यः शब्दनित्यत्ववादी भवति। शब्दः नित्यो वा अनित्यो वा इति विचारे शब्दलक्षणे विप्रतिपत्तिं सूचयित्वा यास्कः शब्दानित्यत्ववादनिरासः कृतवान्। तत्रैव शब्दनित्यत्वस्थापनसमये औदुम्बरायणोऽपि नामाख्यातोपसर्गनिपातानां नित्यत्वम् इति प्रतिपादयतीति यास्कः स्वयमेव निरूपितवान्। अपरैः निरुक्तकारैः शब्दनित्यत्वविषये एवमाक्षेपः जातुं शक्यते। स च- उक्तोऽयं चतुर्विधः शब्दः तस्य जननानन्तरं तत्तत् इन्द्रियेषु स्थित्वा विनश्यति। तद्विनाशकारणात् तस्य शब्दस्य अनित्यत्वं सिद्ध्यति। एवमेव नामाख्यातोपसर्गनिपाताः एककाले न उच्चरणीया भवन्ति। एवं स्थिते कथं वा एकेन शब्देन उपसर्गा वा प्रत्ययाः स्वयं संयोजयन्ति? इति आक्षेपकृतां प्रश्नः। यथा- "अयुगपदुत्पन्नानां वा शब्दनां इतरेतरोपदेशः"[95]; "शास्त्रकृतो योगश्च"[96] इति तत्र निरुक्ते एव वाक्यद्वयं प्रदर्शितम्। अर्थात् शास्त्रे एकेन शब्देन अन्यशब्दात् संयोगो यदि विधीयते तर्हि तत् न समञ्जसमिति आक्षेपकृताम् अन्येषां निरुक्तकाराणां वाक्। अतः शब्दः अनित्य एव न तु नित्यः इति ते तेषामभिप्रायं मण्डयन्ति।

---

92 निरुक्तम् १।१।८

93 नामपदस्य इतरेऽपि तेषां शैल्यां लक्षणं प्रतिपादयन्ति- "शब्देनोच्चारितेनेह येन द्रव्यं प्रतीयते। तदक्षरविधौ युक्तं नामेत्याहुर्मनीषिणः ॥ इति। एवं त एव इतरे आख्यातस्य वा क्रियापदस्य लक्षणं तेषां मतमनुसृत्यैवमुक्तवन्तः- क्रियावाचकमाख्यातं लिङ्गतो न विशिष्यन्ते। त्रीनत्र पुरुषान् विद्यात् कालतस्तु विशिष्यन्ते इति।

94 "उच्चावचाः पदार्था भवन्तीति गार्ग्यः" (निरुक्तम् १।३।५)। "तद्य एषु पदार्थाः प्राहुः इमे तं नामाख्यातयोः अर्थविवरणम्" (निरुक्तम् १।३।६)। इमे वाक्ये पाणिनेः अष्टाध्याय्यां "उपसर्गाः क्रियायोगे" (अष्टाध्यायी १।४।५९) इत्यनेन सूत्रेण अन्वितुं शक्येते।

95 निरुक्तम् १।१।२

96 निरुक्तम् १।२।३

यास्कः तमाक्षेपं तस्य वाक्यैरेव निर्मूलयति। तथा हि- "व्याप्तिमत्वात्तु शब्दस्य"[97] इत्यनेन वाक्येन शब्दस्य व्याप्तित्वमुक्त्वा तस्य नित्यत्वं प्रतिपादयति। अर्थात्- पुरुषस्य हृदयान्तर्गतायाः आकाशप्रतिष्ठितायाः बुद्धेः अभिधानाभिधेयभेदेन द्वैविध्यमुक्त्वा यास्कः शब्दस्य नित्यत्वमुच्यते। अनया आकाशप्रतिष्ठितया बुद्ध्या पुरुषः शास्त्राभिमतं प्रयोजनं ज्ञातुं ज्ञापयितुं च स्वप्रयत्नेन उरःकण्ठादिवर्णस्थानेषु शब्दमुत्पादयति। एवं प्रकारेण निष्पादितः शब्दः बहिरागत्य श्रोत्रेन्द्रियात् श्रोतृणां बुद्धिं व्याप्य अविनाश्यं व्यक्तीभावरूपं व्याप्तित्वं सिद्ध्यति। अत एवमुक्त पदचतुष्टयमर्थं न स्फुरति। एवं रूपमर्थस्फुरणम् अनित्यरूपः नश्वररूपश्च शब्दः न कर्तुं शक्यते। पुरुषोद्भूतः कश्चन शब्दः तत्क्षणे एव नष्टश्चेत् कथं वा इतरेषां बुद्धिं व्याप्य तदर्थं स्फुरयति? तेनैव कारणेन शब्दः नित्यः इति यास्कः तस्य सुमतं प्रतिपादितवान्।

तस्मिन्नेव निरुक्ते यास्कः सर्वाणि नामपदानि आख्यातजानि वा? इति विषयमुद्दिश्य विस्तारेण चर्चितवान्। अत्र तद्विषयकचर्चायाम् अभिप्रायद्वयमुक्त्वा सर्वाणि नामानि आख्यातजान्येव इति यास्कः सिद्धान्तितवान्। यथा- "आख्यातजानीति शाकटायनः नैरुक्तसमयश्च"[98] इति। अर्थात् शाकटायनं गार्ग्यं विना इतरे निरुक्तकाराः सर्वाणि नामानि आख्यातजानीति ते अभिप्रयन्ति। एवं तत्रैव निरुक्ते "न सर्वाणीति गार्ग्यो वैय्याकरणानाञ्चैके"[99] इति उक्तम्। अर्थात् गार्ग्यः केचन वैय्याकरणाश्च सर्वे नामशब्दाः न आख्यातजा इति अभिप्रयन्ति। एतदादीनां वादमेवम् अधस्तनरीत्या चिन्तनीयम्-

1. नामपदानि क्रियामनुसृत्य त्रिधा विभक्तुं शक्यन्ते-
   - प्रत्यक्षक्रिया
     उदा :- हर्ता- हारकः ; पक्ता- पाचकः
   - प्रकल्प्यक्रिया
     उदा :- गौः, अश्वः, पुरुषः, हस्ती
   - अविद्यमानक्रिया
     उदा :- डित्थः, डवित्थः, अरविन्दः इति।

   उक्तेषु शब्देषु येषु उदात्तादयः स्वराः, प्रकृतिप्रत्ययादिसंस्काराः समर्थिता भूत्वा, नामपदानां रचनाय उपपत्तिः सङ्गत्य लक्षणशास्त्रविहितत्वं च दृश्यते एवं यस्याः क्रियायाः मूलेन यन्नामपदं जायते, यस्याः क्रियायाः गुणः यन्नामपदे दृश्यते तानि नामानि क्रियाजन्यानि इति वक्तव्यम्। परन्तु यत्र प्रकल्प्यक्रिया अविद्यमानक्रिया च प्रकाशिते तत्र न निरुक्तिः कर्तव्या। अत एव सर्वाणि नामानि न आख्यातजानीति यावत्।

2. निर्दिष्टैकक्रियाकर्तॄणां भिन्नानां व्यक्तीनाम् एक एव नामकरणस्य प्रसङ्गः सङ्गच्छते। किन्तु "यः कश्च अध्वानम् अश्नुवीत अश्वः सः वचनीयः स्यात्"[100] इति। सर्वेषां नामपदानाम् आख्यातजत्वनिषेधे इदमप्येकं कारणं भवतीति आक्षेपकाराः वदन्ति।

3. नामधेयप्रतिलम्भाय क्रियैव कारणमित्युक्ते अन्यः दोषः सम्भवति। स च एकस्मिन् द्रव्ये अनेकानां भावानां संयोगेन क्रियावैविध्यमनुसृत्य एकैकस्य द्रव्यस्य नामवैविध्यं सम्भवति। एवं कृते "स्थूणः" इति शब्दं "दरशया" "सञ्जनी" इति निर्वक्तव्यम्। एवं प्रकारेण व्यवहारे अनेकैः क्रियायोगैः अनेकानां नाम्नाम् अप्रसिद्धिः रूढिः दृश्यते।

---

[97] निरुक्तम् १।२।४

[98] निरुक्तम् १।१२।२

[99] निरुक्तम् १।१२।३

[100] निरुक्तम् १।१२।५

4. यदि नामानि केवलक्रियापदानाम् अर्थं बोधयन्ति तर्ह्येव तानि आख्यातजानीति वक्तुं शक्यते। "पुरि शयः पुरुषः" इत्येव निरुक्तिः अस्य उदाहरणम्। परन्तु एवं रूपनिरुक्तिः सर्वेषां शब्दानां अष्टा[101] इतिवत् जायते। एवमेव तृणमिति पदं तर्दनम्[102] इति च निर्वचनीयम्। परन्तु एवं व्यवहारः रूढौ नास्ति।

5. व्यवहारनिष्पन्नानन्तरं तदभिधानस्य केन धातुना मूलं वक्तव्यमिति चिन्तनं न युक्ततरम्। "पृथिवी" इत्यस्य "प्रथनात् पृथिवी" इति निरुक्तिरुच्यते खलु। कथं वा इदं युक्तम्? स्वभावतः अपृथिवीमिमां केन वा प्रथनमिति निर्वचनं कृतम्? अस्य का उपाधिः वर्तते? तत्र आधारहीनत्वकल्पने पृथिव्यां प्रथनक्रिया न सिद्ध्यति। अस्मादपि कारणात् नामपदानि न आख्यातजानीति सिद्ध्यति।

इत्येतेषामाक्षेपाणामनन्तरं यास्कः तस्य निरुक्ते एतानि दुर्भाष्याणि मतानि निरस्य तस्यैव सिद्धान्तं बोधयति। यास्कस्य इमं वादम् अधस्तनेन प्रकारेण सङ्गृहीतुं शक्यते।

1. सर्वे शब्दाः क्रियाजन्या एव। तेषां प्रादेशिकविकारज्ञानार्जने प्रयत्नराहित्यं पुरुषापराध एव। न तु शब्दविषयकः दोषः। भिन्नभिन्नदेशेषु भिन्नभिन्नव्याकरणस्य रूढिः वर्तते। निर्वचनसमये तत्तद्भाषासम्बद्धरूढिविषयान् ज्ञात्वा निर्वक्तव्यम्। पुरुषस्य प्रादेशिक-भाषायाः शिक्षणं निर्वचनसामर्थ्यो अयमुपकरोति। अपि तु तस्यैव पुरुषस्य शिक्षणाराहित्येन प्रादेशिकशब्दानां स्वरसंस्कारज्ञानेन वा प्रादेशिकभाषागुणज्ञानमात्रेण शब्दं निर्वक्तुं न शक्यते।

2. एकेन शब्देन अनेकानां धातूनां अर्थसम्भवेऽपि प्रसिद्ध एव अर्थः लोके गृह्यते। तत्र एकं नामपदं कयापि अतिशयया क्रियया एव सम्भवति। इयं तु पद्धतिः व्यवहारानुसृता एव। अनेनपि कारणेन सर्वाणि नामानि आख्यातजानीति न कोऽपि बाधः।

3. शब्दः द्विविधः दृश्यते। स तु प्रतीतार्थः अप्रतीतार्थश्च। शास्त्रम् अप्रतीतार्थं प्रतीतार्थ इव प्रत्यापद्यते। एतदेव शास्त्रस्य वैशिष्ट्यम्। यथास्थितानामेव शब्दानां शास्त्रं तेषां मूलत्वं दीयते। तेन अप्रसिद्धप्रदेशे नामपदानि न आख्यातजानीति वक्तुं न शक्यते। तत्रापि केचन कृत्प्रत्ययान्तशब्दा अपि अल्पप्रयोगेनैव सम्भवन्ति। परन्तु ते सर्वे आख्यातजा एव।

4. पूर्वोक्तस्य पृथिवीशब्दस्य विषये दोषपरिहारार्थं तस्य "पृथुदर्शनात् पृथिवी" इति निर्वचनं कर्तव्यम्।

5. तत्र पदेतरैः अर्थस्फुरणं न कदापि शास्त्रापराधः। तच्च सर्वथा पुरुषापराध एव। एतत्सम्बद्धं निरुक्ते एव एकं वाक्यं दृश्यते- "सैषा पुरुषगर्हा न शास्त्रगर्हा" इति।

एवं प्रकारेण यास्कः पूर्वोक्तान् आक्षेपान् खण्डयित्वा सर्वे शब्दा आख्यातजा एवेति सिद्धान्तितवान्[103]। एतद्रूपे भिन्नाभिप्राये कारणं तु एकैके वेदाङ्गे अनेकप्रभेदबोध एव। निरुक्तकाराणां वैयाकरणानाञ्च मतयोः केषुचन शब्देषु ऐकमत्यं केषुचन शब्देषु वैमत्यमपि वर्तते। शाकटायनादयः सर्वाणि नामपदानि आख्यातजान्येवेति वदन्ति। एते च निर्वचनासम्भवेषु स्थलेषु काशकुशावलम्बनेन आख्यातपदेभ्यः पदेतरेभ्यश्च निर्वचनं बोधयन्ति। एतद्विरुद्धाः निरुक्तकाराः यत्र नामपदानां धातुभिः स्वरसेन निर्वचनं कर्तुं न शक्यते तत्र तद्रूपाः शब्दाः न धातुजा इति कल्पयन्ति। इमं विवादं यास्काचार्यः पूर्वोक्तरूपेण विस्तारेण वर्णितवान्।

एवं निरुक्तव्याकरणयोः सम्बन्धः निकट एव वर्तते। निरुक्तस्य अर्थपरिज्ञानं प्रयोजनम्। व्याकरणस्य स्वरसंस्कारविचारविवेचनं प्रयोजनम्। एतयोर्मध्ये अन्योन्याश्रयसम्बन्धः सम्भवति। अर्थात् निरुक्तस्य अध्ययनं विना

---

101 अश्नोति हि असौ इति अष्टा

102 तर्द्यते अनेन इति तर्दनम्

103 इमम् अंशमुद्दिश्य महाभाष्ये पतञ्जलिरेवमाह- "नाम च धातुजम् आह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम्" इति।

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

व्याकरणशास्त्राभ्यासः अपूर्ण एव। अनैरुक्तः अर्थावधारणकरणे असमर्थः। एवमेव अर्थावधारणं विना स्वरसंस्कारज्ञानसाधनेऽपि असमर्थ एव।

एवमुक्ते निरुक्तोऽपि उणादिवत् किमर्थं न व्याकरणस्याङ्गम्? अस्य निरुक्तस्य किमर्थं विद्यास्थानत्वम्? इति प्रश्नद्वयस्य निरुक्ते एव समाधानं वर्तते। निरुक्तं शास्त्रं तस्य स्वतन्त्रतया अनुषङ्गतं व्याकरणं पूरयति। अस्य तु शास्त्रस्य विद्यास्थानेषु अर्थनिर्वचनस्थानं लभते। व्याकरणं तु लक्षणप्रधानं शास्त्रम्। व्याकरणप्रकृतिप्रत्ययादिभिः प्रक्रियारूपेण शब्दोत्पत्तिविधानं दृश्यते। परन्त्वस्मिन् निरुक्ते शास्त्रे शब्दस्य अर्थनिर्वचनप्रक्रिया विशेषेण वर्णिता। तत्तु समाधानं निरुक्ते एवं द्रष्टुं शक्यते। यथा- "तदिदं विद्यास्थानं व्याकरणस्य कार्त्स्न्यं स्वार्थसाधकञ्च" इति यास्कः अस्य निरुक्तस्य प्रयोजनमुक्त्वा अस्य शास्त्रस्य व्याकरणपृथक्त्ववैशिष्ट्यम् दर्शितवान्।

सन्दर्भग्रन्थसूची

१. अष्टाध्यायी सूत्रपाठः (पाणिनीयः), सं॥ प्र॥ शङ्कररामशास्त्री, मैलापुर, १९३७.
२. ऐतरेयालोचनम्, सत्यव्रत सामश्रमी, हितव्रत चट्टोपाध्याय, कोलकत्ता, १९०६.
३. निरुक्तम् (यास्कमुनिप्रणीतम्), सं॥ मुकुन्द झा शर्मा, प्र॥ चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, देहली, २००८.
४. निरुक्तसम्मर्शः, स्वामी ब्रह्ममुनिपरिव्राजको विद्यामार्तण्डः, आर्य साहित्यमण्डल, अजमेर, १९६६.
५. पतञ्जलिमुनिविरचितम् महाभाष्यम्, सं॥ युधिष्ठिर मीमांसकः, प्र॥ प्यारेलाल द्राक्षादेवी न्यास ट्रस्ट्, देहली, १९७३.
६. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, सं॥ गिरिधर शर्मा & परमेश्वरानन्द शर्मा, प्र॥ मोतीलाल बनारसीदास, देहली, २०१०.

Cultural and Scientific Evaluation of *Nārikela* (Coconut) in Indian Perspective

Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi
Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi-834008

SID- 176677214

Received on- 12/8/2020 8:50:38 | **Accepted on-** 26th January, 2021

Keywords- Water of *Nārikela*, Propagation, *Sanātana*, Medicinal Preparations of *Nārikela*

ABSTRACT

Nārikela is considered to be highly significant plant from cultural and medicinal point of view. Fruits and water of this plant are used for various rituals and religious purposes in India. This apart, various parts of *Nārikela* are used by the traditional healers for treating numerous diseases. Sanskrit texts are replete with these facts. These texts have also described the way in which this plant can be propagated. *Nighaṇṭu* texts have come up with various synonyms and these indicate taxonomy, morphology, habitat, action and properties of *Nārikela*. Visit any temple, and one would find the use of *Nārikela* on every special occasion. Use of the *Nārikela* in a prescribed way is helpful in doing away with various sins. Various parts of this plant are considered to be highly nourishing and are used for treating diseases related to *Vāta, Pitta, Kapha* etc.

Introduction-

The plant *Cocos nucifera* Linn., commonly known as *Nārikela* in India is recognized for its cultural and medicinal values from ancient times. Though references of this plant are hardly traced in *Vedic* Literature, it has been time and again mentioned in post-*Vedic* Literature including *Rāmāyaṇa*[104], *Mahābhārata*[105], *Purāṇas*[106], and other classical Sanskrit texts. As far as *Āyurvedic* texts are concerned, they have discussed medicinal properties of this plant at length.

Botanical Description of *Nārikela*-

It goes without saying that *Nārikela* trees are planted for their fruits. The trees of *Nārikela* can grow on sand and are incredibly tolerant of windy, salty conditions. Each and every part of this plant is used: the leaves for thatch, the growing tip for palm cabbage, the trunk for construction, the flower for toddy, the fruit for food, drink and oil, and the fruit husk for matting and fuel. The tree is 13 to 25 metres in height with a trunk having diameter of 30 to 60 centimetres. The trunk

104 *Rāmāyaṇa-2/22/57*
105 *Mahābhārata*-3/155/40
106 *Viṣṇu Purāṇa-1/2/60, Agni Purāṇa-247/30, Nārada Purāṇa-1/90/76, Brahmavaivarta Purāṇa-3/4/63, Skanda Mahāpurāṇa-7/1/25/28, 2/4/6/54, Padma Purāṇa-2/43/13, 6/83/29 etc.*

is thick, blackish, showing circles on external surface. Leaves are 6-13 ft. long, leaflets are equidistant. Fruits are oval, large 15-25 centimetres long, hard capsule and full of water. Flowering in the plant and its fruiting occurs throughout the year. Fruiting is in following stages-a) Young (only water inside the fruit), b) Medium (water along with soft marrow), c) Mature (hard marrow with little water) and d) Final (only hard marrow remains without water). In terms of chemical composition, elements useful to life are found at different stages of maturity of the plant. Matured fruits contain 60-70% oils with Vitamin A and B. The coconut tree is commonly found and cultivated in the coastal areas of India. It controls soil erosion and acts as an effective barrier against wind and saline breeze. With increase in the cultivation of coconut, the soil fertility increases with adding fertilizers.[107] According to *Vṛkṣāyurveda, Nārikela* grows on a marshy land.[108] *Kashyapiyakrishisukti* says that those who are conversant with agricultural operations should grow *Nārikela* trees.[109] The sap of *Nārikela* is said to be suitable for extracting juice and other processes in their final stage.[110]

Propagation of *Nārikela*-

Various Sanskrit texts have discussed the propagation of this tree. According to *Vṛkṣāyurveda*, the coconut trees become loaded with weight of huge fruits and also become free from disturbances if smeared at night with extracts of fermented liquor, sesame, black gram, and wine, mixed with honey, salt and *Viḍaṅga*. Coconut trees always produce fruits as big as pots if they are treated with soup of black gram, salt water, powder of barley or husk water in abundant quantity.[111] A seed cultured hundred times with the oil of *Śleṣmāta* sown and watered with coconut water sprouts immediately.[112] *Vishvavallabha* says that trees of *Nārikela* are grown from seeds.[113] After planting *Nārikela* even along with the bark, in a pit or in proper container filled with sand, it should be fed once with salt water and then sprinkled with plain water everyday. They grow within a month.[114] Fruits of *Nārikela* should be wetted with *Aṅkola* oil, dung, and milk and sown in pits filled with good sand. It should then be sprinkled with plenty of water.[115] *Nārikela* grows well when fed on powdered *Sarshapa* and *Tila*.[116] According to *Agni Purāṇa* ordinary salt is the best manure for *Nārikela* trees.[117] However, the coconut tree is destroyed if fed by water used for cleaning rice.[118]

Economic uses of *Nārikela*-

---

[107] Sacred Plants of India, p 112
[108] *Vṛkṣāyurveda*-41
[109] *Kashyapiyakrishisukti*-2/35
[110] *Ibid*, 2/61
[111] *Vṛkṣāyurveda*-125-126
[112] *Ibid*, 279
[113] *Vishvavallabha*-III/14
[114] *Ibid*, IV/12
[115] *Ibid, IV/13*
[116] *Ibid*, V/5
[117] *Agni Purāṇa*-247/31
[118] *Vṛkṣāyurveda*-274

The *Nārikela* tree is of great commercial value. Kernel of these seeds are eaten raw or used in sweetmeats, kitchen preparation, pastries and confectionery; also much used as dry corpa for extraction of coconut oil, employed in food products, and in soaps, cosmetics, shampoos, shaving creams and toilet preparations. Coconut fibre from the husk used for mats, ropes, baskets, brushes etc. Coconut milk is a refreshing drink.[119]

Synonyms of *Nārikela* and its significance-

According to *Bhāvaprakāśa Nighaṇṭu*, *Nārikela, Dṛḍhaphala, Lāṅgalī, Kūrcaśīrṣaka, Tuṅga*, *Skandhaphala*, *Tṛṇarāja, Sadāphala* are its names.[120]According to *Soḍhala Nighaṇṭu*, *Nālikera, Rasaphala, Sutuṅga, Kurcakeesara, Latāvṛkṣa*, *Dṛḍhaphala*, *Laṅgalī, Dākṣiṇātyaka* are synonyms for *Nārikela.*[121]According to *Madanapāla Nighaṇṭu* synonyms for *Nārikela* are *Dṛḍhaphala*, *Mahāvṛkṣa, Mahāphala, Tṛṇarāja, Tṛṇphala, Tṛṇāhva* and *Dṛḍhabījaka.*[122] According to *Rāja Nighaṇṭu* synonyms for *Nārikela* are *Rasaphala*, *Sutuṅga, Kūrcaśekhara, Dṛḍhanīlī, Nīlataru, Maṅgalya, Uccataru*, *Tṛṇarāja, Skandhataru, Dākṣiṇatya, Durāruha, Lāṅgalī, Tryamakaphala* and *Dṛḍhaphala.*[123] According to *Kaiyadeva Nighaṇṭu* synonyms for *Nārikela* are- *Latāvṛkṣa*, *Dṛḍhabīja, Mahāphala, Tuṅga*, *Skandhaphala, Coca*, *Tṛṇarāja, Sutuṅga*, *Dṛḍhavṛkṣa*, *Dṛḍhaphala*, *Tryakṣaphala, Lāṅgalī, Kūcakeśara, Dṛḍhanīra, Dākṣiṇātya and Sadāphala*. Fruits of *Nārikela* are called *Coca*, *Tryakṣa*, *Toyagarbha* and *Puṭodaka*. Water of *Nārikela* is called *Kerajala*, *Koṣmakara*, *Keraphala* and *Sthiti*.[124]

Each and every synonym has its special significance. This has been described through Table-1.

Table-1

Synonyms of *Nārikela*	Reason for being called so
Dākṣiṇātya	This tree grows in south in abundance.
Dṛḍhaphala	The fruit of this plant is very hard.
Dṛḍhabīja, Dṛḍhabījaka	The seeds of this plant are very hard.
Dṛḍhanīra	The pulp of the fruit of *Nārikela* is hard in dry state.
Dṛḍhavṛkṣa	It has very strong and very hard stem.
Kauśikaphala, Viśvāmitrapriya	The tree is creation of creation of powerful sage *Kauśika* (*Viśvāmitra*).
Kūrcaśīrṣaka, Lāṅgalī	The plant of *Nārikela* has brush like structure at the top.
Latavṛkṣa	This plant provides support to climbers.
Mahāphala	The tree has large fruits or the tree bears huge number of fruits.
Mahāpuṣpa	The flowers of this plant are very large.
Maṅgalya	Fruits of *Nārikela* are used for various religious ceremonies keeping in mind that it will do well to all and lead to peace and prosperity.
Mṛduphala	It is soft meated fruit.
Nārikeli	Fermented liquor is made from the milk of this tree.
Puṭodaka	The plant of *Nārikela* has water in its hollow or interior.
Rasaphala	The fruit of *Nārikela* is full of water.

---

119 Venerated Plants, p 373
120 *Bhāvaprakāśa Nighaṇṭu-Āmrādi Phala Varga*/38
121 *Soḍhala Nighaṇṭu-Nāmāvalī*/5/585-586
122 *Madanapāla Nighaṇṭu-Phalādivarga*/14
123 *Rāja Nighaṇṭu-Āmrādivarga*/47-48
124 *Kaiyadeva Nighaṇṭu-Oṣadhivarga*/265-267

Rasāyanataru	It is a tree which yields elixir like fruits.
Sadāphala	Fruits are seen all the year round on the plant of *Nārikela* as they mature in years' time.
Sadāpuṣpa	The plant of *Nārikela* always bears flowers
Skandhaphala	Fruits of the plant of *Nārikela* appear on trunk.
Toyagarbha	The plant of *Nārikela* contains water in womb.
Tuṅgadruma, Sutuṅga, Uccataru	The plant of *Nārikela* is quite tall and it grows straight.
Tṛṇarāja	The plant of *Nārikela* is regarded as king of the *tṛṇa* group of plants.
Tṛṣya, Tryamakaphala	The fruit of the *Nārikela* plants has resemblance of three eyes on the top.
Varaphala	It is highly sacred tree.

Cultural importance of *Nārikela*-

Nārikela is an indispensable part of various religious ceremonies carried out in India. It is actually common offering in *Sanātana Dharma*. The cultural importance of *Nārikela* has been recognised from ancient times. Usually a pitcher of water is placed on white paddy, a branch of *Āmra* is placed in the pitcher and *Nārikela* adorned with sandal paste, vermilion and flowers is placed on that branch. This is called the full pitcher *Pūrṇakumbha* which is symbolically invoked as deities for successful end to any mission undertaken. In Indian tradition it is believed that the fruits of *Nārikela* are helpful in fulfilling one's desires. This is why it is considered to be highly sanctified. It is offered to the deities on occasion of various religious ceremonies.

The fruit is believed to be representation of *Bhagvān Tryambaka* (*Śiva*) as it has three black spots. It goes without saying that *Bhagvān Tryambaka* has three eyes. The plant is considered sacred amongst the Hindus for its fruits as a symbol of good fortune. The nuts are broken on the opening ceremonies.

While discussing the origin of *Devas* and *Asuras*, *Brahma Purāṇa* has made a description of a holy *Naimiṣa* forest. Apart from many other plants, *Nārikela* too was there in abundance.[125] When devotee sprinkles coconut water on *Bhagvān Acyuta* with full devotion in the month of *Jyeṣṭha*, all his sins (including daily sins, sins committed during the fortnight, the month, the season and the year and so on so forth) perish.[126] *Skanda Purāṇa* has suggested plantation of *Nārikela* tree for the purpose of alleviating the fatigue of wayfarers.[127] This *Purāṇa* further adds that the ablution of the great Lord *Rāmanātha* with water of *Nārikela*, is glorified as destructive of sins including *Brahmahatyā*.[128]

According to the Jains, the coconut symbolises freedom from hunger. A coloured coconut symbolises the destruction of the darkness of delusion. *Somadeva* of *Kathāsaritsāgara*[129] tells of the island *Nārikela* in the middle of the great sea, from which *devas* go through the air to the White island.[130]

---

[125] *Brahma Purāṇa*-1/4-12
[126] *Padma Purāṇa*- p 2007
[127] *Skanda Purāṇa*-3/1/12/41-42
[128] *Ibid*, 3/1/43/93
[129] *Kathāsaritsāgara*-54/19-23
[130] Sacred Plants of India, p 114

The fruit of *Nārikela* is referred to as *Śrīphala* or the fruit of *Lakṣmī*, the Goddess of prosperity. Symbolically, the coconut is considered *Bhagvān Śiva's* head-the fibrous mesocarp representing his tangled hair and the three black round scars on the shell representing his three eyes. The coconut is also associated to *Bhagvān Gaṇeśa*. At the beginning of any auspicious task or journey, people smash coconuts to propitiate *Gaṇeśa*, the remover of all obstacles.[131]

The coconut is the symbol of the fertility and all through India is kept on shrines and presented by the priests to women who desire children. The respect for it is probably based on its uses for food and as a source of intoxicating liquor. In Gujarat it represents the house spirit, and is worshiped as a family God.[132]

There is a popular legend in Kerala that the coconut was originally a *Devevṛkṣa* (divine tree). It was brought down to earth by *Bhagvān Paraśurāma* for the prosperity of people of Malabar Coast. The coast thus came to be known as Kerala literally meaning the land of coconuts.[133]

Nārikela is used to overcome the bad effects of *Ketu*. The persons who have taken birth in *Dhaniṣṭhā* or *Citrā Nakṣatra* should worship *Nārikela* tree for their progress and peace. It is considered to be very favourable in house limits.[134]

It is firm belief of Hindus that if there was a tree of *Nārikela* in association with an anthill there would be a current of very sweet water at the depth of four manheights at a distance of six hands to the west.[135] Water is also found in plenty where *Nārikela* with glossy leaves grows on the top of a mountain.[136]

Medicinal Properties of *Nārikela*-

The water of the unripe fruit is described as a fine-flavoured, cooling, refrigerant drink useful in thirst, fever and urinary disorders. The tender pulp of the fruit is said to be nourishing, cooling and diuretic. The pulp of the ripe fruit is hard and indigestible but is used medically. The terminal bud of the tree is esteemed as nourishing, strengthening and agreeable vegetable. The root of the coconut is used as a diuretic as also in uterine diseases. Coconut oil is said to promote growth of hair. The ashes of leaves are used in medicine. They contain a great deal of potash. The fresh juice of the tree considered refrigerant and diuretic. The fermented juice constitutes one of the spirituous liquors described by the ancient writers.[137]

According to *Dravyaguṇa Vijñāna*, *Nārikela* is aphrodisiac, carminative, cooling, diuretic, refrigerant and tonic. It is used in burning sensation in human body, consumption, diarhoea,

[131] *Ibid*, p 116
[132] An Introduction to the Popular Religion and Folklore of Northern India, p 254
[133] Sacred Plants of India, p 115
[134] Miraculous plants, p 179
[135] *Vishvavallabha*-IA/17
[136] *Ibid*, IE/6
[137] Materia Medica of the Hindus, p 248-249

emaciation, heart diseases, spermatorrhea and urinogenital diseases. The water produced by tender coconut provides source of glucose supply in acute dehydration.[138]

The coconut is known as wonder food. It is a near perfect diet, as it contains almost all the essential nutrients needed by the human body. The coconut is highly nourishing, strengthening and fattening food article. The coconut has a high oil content which is highly digestible. It is more easily utilised by the body than all other fats. The oil closely resembles the butter in physical and chemical properties. The protein content of coconut is of high quality, containing all the amino-acids. It is also rich in potassium, sodium, magnesium and sulphur. The energy value of the dried coconut is very high, being 662 calories per 100 grams.[139]

According to *Garuḍa Purāṇa*, *Nārikela* falls under *Madhuragaṇa*. Accordingly it is used in alleviating epileptic fits and a burning sensation in the body.[140] Coconut flowers taken in combination with goat's milk prove remedial for three types of *Vāta-Rakta*.[141]

Fruits of *Nārikela* are cold in potency, hard for digestion, cleanse the urinary bladder, cause constipation, nutritious, strengthening, mitigate *Vāta, Pitta, Rakta* and burning sensation. Very tender fruit especially mitigates *Pitta* and cures fever arising from *Pitta*, the same when ripe becomes hard for digestion, aggravates *Pitta*, causes burning sensation during digestion and constipation. Its water is cold in potency, good for heart diseases, increases digestive fire and semen, easily digestible, cures thirst, aggravation of *Pitta*, is sweet, and best to cleanse the urinary bladder. The head (soft marrow like material at the top of the tree) of *Nārikela* is astringent, unctuous, sweet, stoutening and hard for digestion.[142]

Fruits of *Nārikela* are *Śita, Durjara, Bastiśodhana, Viṣṭambhakara, Bṛmhaṇa, Vṛṣya, Vāta-pitta-raktadoṣahara* and *dāhaśāmaka* in nature. Coconut water is *Śita, Hṛdya, Dīpana, Śukrala* and *Laghu* by nature. Coconut terminal bud is claimed to be *Śukrala* and *Vatapittahara*.[143]

Nārikela is heavy, unctuous, cooling and anti-*pitta*. Half-ripe fruit alleviates and emancipation. It is highly difficult to digest.[144]

The water contained in the fruit of the unripe *Nārikela* is light, strength giving, cooling, sweet but heavy after digestion. This offers a good relief in thirst, emaciation, *pitta*, chronic rhinitis (*Pīnasa*), exersion and burning sensation. It gives pleasure. The ripe *Nārikela* water slightly increases *Pitta*. It is appetizer, sweet, digestive stimulant and gives strength. It is heavy, aphrodisiac and improves quality of semen.[145]

---

[138] *Dravyaguṇa Vijñāna*-p 676
[139] Foods That Heal, p 185-186
[140] *Garuḍa Purāṇa*-173/4
[141] *Ibid*, 189/12
[142] *Bhāvaprakāśa Nighaṇṭu-Āmrādi Phala Varga*/39-42
[143] *Madanapāla Nighaṇṭu-Phalādivarga*/115-16
[144] *Rāja Nighaṇṭu-Āmrādivarga*/49
[145] Ibid, *Āmrādivarga*/50

The *Nārikela Khubarā* is unctuous, heavy, difficult to digest, produces *viṣṭambha* (sluggish or impaired peristaltic movements resulting constipation) and burning. It is appetizer, strength giving and improves seminal secretions.[146]

The water of the tender coconut is generally purgative. It cures *Tṛṣnā* (morbid thirst) and alleviates *Pitta.*[147]

The top portion of the trunk of *Nārikela* is astringent, unctuous, sweet, nourishing and heavy. It helps in elimination of urine. It is aphrodisiac and vitalising. It is always useful for persons who have lost their strength and potency. It cures *Kāsa* (bronchitis), *rakta-pitta* (a disease characterised by bleeding from different parts of the body), vitiation of *Vāyu* and *Viṣa* (poisoning). It is cooling and delicious.[148]

The ripe fruits of *Nārikela* are bulk-promoting, unctuous, cold, tonic and sweet.[149]

In *Paittika* type of vomiting, one should take linctus the boiled grains, parched paddy, parched barley flour and boiled barley, *Kharjura* fruit pulp, coconut, grapes or jujube fruits mixed with sugarcandy, honey and *Pippali.*[150]

Oil of *Nārikela* is sweet in final taste after digestion, alleviates *Vāta* and *Pitta*; are cold in potency, hydrating, diuretic, and diminish digestive fire.[151]

The fruit of *Nālikera* is sweet in taste and also in the final stage after digestion. It pacifies *Vāta* and *Pitta*, is strengthening, demulcent, nourishing and cool.[152] This apart, it is heavy and demulcent in nature, eliminates *pitta*, is sweet and cool, increases strength and muscular tissue, is pleasant and nourishing and cleanses the urinary bladder. [153]

Kernels of upper parts of *Nārikela* are sweet in final taste after digestion and also in taste; they cure haemorrhagic disorders, increase semen, pacify *Vāta* and also increase *Kapha.*[154]

To check vomiting, one should take *Nārikela* fruit.[155]

In case of *Vātaja* tumour poultices prepared from the seeds of *Nārikela, Karkāruka, Ervāruka, Priyāla* and castor oil, milk, *ghṛta* and water should be applied in a hot state.[156]

Water of *Nārikela* is unctuous, sweet, aphrodisiac, coolant, easily digestible, relieves thirst, aggravation of *Pitta* and *Anila* (*Vāta*), increases hunger and cleanses the urinary bladder.[157]

---

[146] *Ibid, Āmrādivarga*/51
[147] *Ayurveda Saukhyam of Toḍarānanda*-19/60
[148] *Ibid,* 20/67-69)
[149] *Caraka Saṃhitā-Sū*/27/130
[150] *Ibid, Ci*/20/28
[151] *Suśruta Saṃhitā-Sū*/45/120
[152] *Ibid, Sū*/46/180
[153] *Ibid, Sū*/46/180
[154] *Ibid, Sū*/46/310-311
[155] *Caraka Saṃhitā*-Ci/20/28
[156] *Suśruta Saṃhitā-Ci*/18/29-30
[157] *Aṣṭāṅga Hṛdaya-Sū*/5/19

Nārikela makes the body stout, is not easily digestible, cold in potency, relives burning sensation, injury to the lungs, consumption, bleeding conditions, is sweet in taste and also at the end of digestion, unctuous, stays long in the stomach without digestion, increases *Kapha* and semen.[158]

Four fruits of coconut, slightly removing their outer rind, are boiled in a vessel of water until it fully evaporates. In the night water of one coconut should be taken. It alleviates even chronic fever.[159]

Parched grain flour mixed with equal sugar and taken with coconut water alleviates severe acidity, palpitation of heart, thirst, fainting, giddiness etc.[160] Coconut water mixed with *Hiṅgu* acts as authelminitic.[161] Old coconut oil promotes healing of wound.[162] Rice is kept inside coconut until it is decomposed, then it is applied locally. It removes cracks even severe.[163] In *Sūryāvartta* and hemicrania, one should take milk with sugar or coconut water or cold water or ghee or snuffing with the latter too.[164]

The pounded kernel of mature coconut 160 gram is roasted with ghee 40 gram and then mixed with sugar 160 gram. This is cooked with coconut water 640 ml. When it is cooked down, powders of *Dhānyaka, Pippalī, Musta, Jīraka, Vaṃśalocana* and *Caturjāta* each 2.5 gram are added. This preparation alleviates acid gastritis, anorexia, intrinsic haemorrhage, wasting, vomiting, colic, backache and biliary colic and is *Rasāyana*, promotes strength, semen, corpulence and ojas.[165]

Nārikela with water is filled with salt and cooked on fire. It alleviates all types of *Pariṇāmaśūla.*[166]

Some specific preparations of *Nārikela*-

***Nārikela Khaṇḍa* (1)-**

Consumed daily in the dose of either one *pala* or half *pala*, the *Nārikela Khaṇḍa* (*leha*) is aphrodisiac, bestows good sleep and strength, cures hyperacidity, bleeding disease, *pariṇāmaśula* (duodenal ulcer), cures constipation quickly like fire consuming dry wood.[167]

Nārikela Khaṇḍa (2)-

---

158 *Ibid, Sū*/6/119-122
159 *Vaidya Manoramā*-1/17
160 *Ibid*, 4/17
161 *Ibid*, 11/65
162 *Ibid*, 16/109
163 *Vṛndamādhava*-51/37
164 *Ibid*, 62/43
165 *Cakradatta*-26/13-16
166 *Ibid*, 27/20
167 *Bhāvaprakāśa Nighaṇṭu-Amlapittaśleṣmapittādhikāra*/23-26

It cures *āmla pitta* (hyper-acidity), anorexia, consumption, *rakta pitta* (an ailment characterized by bleeding from different parts of the body), colic pain, and vomiting. It promotes strength and virility.[168]

***Bṛhat Nārikela Khaṇḍa*-**

This consumed in the dose of one pala daily in the morning cures hyperacidity, fever of Pitta origin, bleeding disease, loss of taste/appetite, gout, thirst, burning sensation, anaemia, jaundice, *Kṣaya* (pthisis) and *pariṇāmśūla* (duodenal ulcer). It also bestows colour (complexion), stouteness of the body, is aphrodisiac, gives sexual prowess to men and good sleep.[169]

***Nārikela Kṣāra*-**

For preparing *Nārikela Kṣāra* a coconut is taken along with its water and is filled with powdered rock salt (125 gm.). The mouth of the fruit is closed. It is smeared with mud and heated up fire. After it cools down to atmospheric temperature, the coconut is compounded thoroughly into a fine powder. This cures *pariṇāmaja* type of colic pain and colic pain caused by *vāta*, *pitta*, *kapha* and all the three *doṣas* vitiated simultaneously.[170]

***Nārikelāmṛtam*-**

This medicine if taken with proper dose is capable of curing severe *āmlapitta*, *dāruṇa śūla*, *pariṇāma śūla*, *praṣṭśūla annadrava śūla*, *asādhya pārśava śūla*, all types of *mūtra ghāta*, *rakta pitta*, sinus (*pīnasa*) and *pratiśyāya*. This medicine is a great appetizer.[171]

Conclusion-

Going by the above facts, it is loud and clear that *Nārikela* is used for various religious purposes. It is also useful from astrological point of view. There is firm belief that use of fruits and water of this plant on various occasions would lead to peace and prosperity. Desires of devotees are fulfilled if this plant is used in prescribed manner as described in scriptures. Medicinally, too, this plant is highly useful. Almost all parts of this plant are used as medicine in some way or the other. It is taken both in isolation and in mixture with other medicinal plants. There are several preparations named before *Nārikela*.

BIBLIOGRAPHY

- *Aṣṭāṅga Hṛdayam (Tr.)*, Murthy K R Srikantha, Chowkhamba Krishnadas Academy, Varanasi, 2009
- Bakhru H.K., *Foods that Heal*, Orient Paperbacks, Delhi, 2010
- Bennet SSR, Gupta PC and Rao R Vijendra, *Venerated Plants*, Indian Council of Forestry Research and Education, Dehradun, 1992
- *Bhaiṣajya Ratnāvalī* (Trans.), Lochan Dr. Kanjiv, Choukhamba Sanskrit Bhavan, Varanasi, 2006

---

168 *Bhaiṣajya Ratnāvalī*-29/233-234
169 *Bhāvaprakāśa Nighaṇṭu- Amlapittaśleṣmapittādhikāra*/27-35
170 *Bhaiṣajya Ratnāvalī*-23/69-70
171 *Ibid*, 29/242-251

- *Bhāvaprakāśa of Bhāvamiśra (Tr.),* Murthy Prof. K.R. Srikantha, Chaukhamba Bharati Academy, Varanasi, 1999
- *Cakradatta* (Ed.), Sharma Priya Vrat, Chaukhambha Orientalia, Varanasi, 1998
- *Caraka Saṃhitā (Ed.),* Sharma PV, Chaukhamba Orientalia, Varanasi, 2008
- Dash Bhagwan, *Materia Medica of Ayurveda (Based on Āyurveda Saukhyam of Ṭoḍarānanda*, Concept Publishing House, New Delhi, 2000
- Gupta Shakti M., *Plant Myths and Tradition*, Munshiram Manoharlal Publishers Pvt. Ltd., New Delhi, 2001
- *Kaidevnighaṇṭu (Ed.)*, Sharma PV and Sharma Dr. GP, Chaukhambha Orientalia, Varanasi, 2006
- *Kashyapiyakrishisukti* (A Treatise on Agriculture by *Kashyapa*), Ayachit SM (Tr.), Asian Agri-Histroy Foundation, Secunderabad, 2002
- Pandey Gyanendra, *Dravyaguṇa Vijñāna* (Vol. 3), Chowkhamba Krishnadas Academy, Varanasi, 2004
- Pande Umesh, *Miraculous Plants*, Bhagvat Pocket Books, Agra, 2004
- Paranjpe Dr. Prakash, *Indian Medicinal Plants*, Chaukhamba Sanskrit Pratisthan, Delhi, 2005
- *Rājanighaṇṭu* (*Comm.*), Sankhyadhar Dr. Satish Chandra, Chaukhambha Orientalia, Varanasi, 2012
- Sharma PV, *Nāmarūpajñānam,* Satya Priya Prakashan, Varanasi, 2000
- Sharma PV, *Fruits and Vegetables in Ancient India*, Chaukhambha Orientalia, Varanasi, 2009
- *Skanda-Purāṇa* (Trans.), Tagare Dr. GV, Motilal Banarasidass Publishers, Delhi, 1993
- *Suśruta Saṃhitā (Ed.)*, Singhal GD, Chaukhamba Sanskrit Pratishthan, Delhi, 2007
- *The Agni Mahāpurāṇam (Ed.),* Kumar Dr. Pushpendra Kumar, Eastern Book Linkers, Delhi, 2006
- *The Brahma Purāṇa* (Tr.), A board of scholars, Motilal Banarasidass Publishers, Varanasi, 2010
- *The Garuḍa Mahāpurāṇaṃ* (Ed.), Kumar Prof. Pushpendra, Eastern Book Linkers, Delhi, 2006
- *The Padma-Purāṇa (Tr)*., Deshpande, Dr. N.A., Motilal Banarasidass Publishers, Varanasi, 2006
- *The Skanda-Purāṇa (Tr.),* Tagare Dr. G.V., Motilal Banarasidass Publishers, Varanasi, 1995
- *Vaidya Manorama*, Kalidasa Vaidya, Vaidya Jadavji Ticumbji Acharya Publishers, Bombay,
- 1924
- *Vishvavallabha* (Dear to the World: The Science of Plant Life), Sadhale Nalini (Tr.), Asian Agri-History Foundation, Secunderabad, 1996
- *Vrikshayurveda* (The Science of Plant Life) by Surapala, Sadhale Nalini (Tr.), Asian Agri-History Foundation, Secunderabad, 2004
- *Vṛndamādhava* (Ed. & Tr.), Tewari Premvati and Kumari Asha, Chaukhambha Bharati Academy, Varanasi, 2006

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

An Analysis on Intangible Cultural Heritage Chhau

Atanu Bandyopadhyay
Village + Post - Sonathali, District - Purulia,
State - West Bengal, Pin - 723121

SID- -370100684

Received on-10/25/2020 16:54:12 | **Accepted on-** 26th January, 2021

Key Words – Intangible Heritage, Folk Culture, Natyashastra, Chhau.

ABSTRACT

This research paper analyses the influence of ancient Indian mythology on semi-classical dance form Chhau and the life of Chhau performers. India is a land of different cultures and traditions. Each part of this country has its own specification. Thereafter Sanskrit plays a vital role in the preservation of this culture. Sanskrit is not just a language but also a treasure trove of knowledge about literature, grammar, astrology, Ayurveda, philosophy and so on. Indian semi-classical dance forms are highly inspired by Sanskrit Natyashastra. One of the most popular dance forms of eastern India is Chhau dance. Chhau represents the intangible cultural heritage of this particular region.

Introduction

In the year of 2010 Chhau dance was declared by UNESCO in the representative list of the intangible cultural heritage of humanity. Chhau dance is a rural extension of Bharat Muni's Natyashastra, which is the ancient source of dance, drama, music, stage play, facial expressions. Chhau is one of the oldest surviving folk-dance forms of eastern India despite tremendous modernization. Bharatanatyam, Kathak, Kuchipudi, Odissi, Kathakali, Manipuri, Mohiniyattam are the most famous Indian classical dance form but Chhau is a rare, unique and colourful dance form, where the performer uses a specific story from ancient Indian mythology by using rhythms, movements, and musks. Masks are used as an instrument of metaphor to portray the character of Lord Shiva, Ganesha, Arjuna, Kartika etc. Musks are also used to interpret facial expressions. These musks are manufactured by local artists at their village with the help of soil, newspapers, thin pieces of cloth, colour and paints at a very low budget. Dhol, Dhamsa, Kharki, and melody of Mahuri and Shehnai used during performances to make the dance entertaining[172].

The mythological stories depicted in Chhau dance used to convey the moral messages to the audience and educate them about the good over evil. We learned about nine aesthetic principles

---

172 https://en.wikipedia.org/wiki/chhau_dance

namely Nava Rasah from sage Bharat Muni's Natyashastra. Even though Chhau dance is a semi-classical folk-dance form, it also uses Nava Rasah as an important part of the performance. From the nine Rasah namely Hasya which is used for happiness, Krodha for anger, Bibhatsa for disgust, Bhayanaka for fear, Shoka for sorrow, Veer for courage, Karuna for compassion, Adbhuta for wonder and lastly Shanta for serenity. These nine aesthetic principles namely Nava Rasah play important role in Indian classical and folk dances to appreciate the movement and emotions of the performances. But the Chhau dance often primarily celebrate Veer Rasah in the performances[173]. Ramayana, Mahabharata, Puranas and other mythological stories depicted by Chhau dancers during performances. Shaivism, Vaisnavism, and Shaktism themes are found in Chhau dance. It is performed during various Indian festivals like Navratri, Chaitra Parva etc.

Meaning of Chhau – The origins of Chhau is shrouded in mystery so it is very difficult to point out the actual time and meaning of the word. Chhau word derived from Sanskrit word Chhaya which means shadow. Another meaning, it is derived from Sanskrit root Chhadma, which means disguise. Some people also said that Chhau word derived from the word Chhauni, which means military camp[174].

Different Types of Chhau – There are three types of Chhau, namely after their performing location, Saraikela Chhau of Jharkhand, Purulia Chhau of West Bengal and Mayurbhanj Chhau of Odhisa. All of them different from each other. Purulia and Saraikela Chhau performers used masks during their performances but Mayurbhanj Chhau doesn't used any masks during their performances, this is the most important difference between the three.

Chhau of Saraikela – The Chhau of Saraikela present-day in Jharkhand flourished under royal patronage. Masks used in Saraikela Chhau are similar to those used in Noh dance of Japan and the Wayang Wong dance of Java, Indonesia. Royal princes play the role of patrons in this dance form and also they are sometimes act as a dancers, teachers and mask making experts.

Chhau of Purulia – The Chhau dance of Purulia is listed on UNESCO's World Heritage List of Dances. It is mostly using the masks which are highly developed craft in this region. It also showcases the Tandava Nritya and Shaivism in the performance. The barren land of Purulia and it's tribal inhabitants and their local cultural influence all combinedly make this dance form an incredible one. The King of Bhagmundi in Purulia was the main patron of this dance form, his inspiration and patronage make this dance form more popular[175].

Chhau of Mayurbhanj – The Chhau dance of Mayurbhanj is similarly popular in Odhisa State. Geographically Mayurbhanj is very close to Saraikela and Purulia but the dance form is a little bit differs from the other two. The use of a mask is not so popular here. Maharaja Sriram and Pratap Chandra Bhanjdeo of Mayurbhanj are the main Patrons of this type of Chhau[176]. Their encouragement and inspiration make this type of Chhau very famous. The facial expressions with body movements and gestures make Mayurbhanj Chhau aesthetically beautiful[177].

---

173 Bharatmuni, Natyashastra (1971,1975) ed. Madhusudan Shastri, Benaras Hindu University, Vol. 1, 2.
174 https://www.ukessays.com/essays/film-studies/seraikela-chhau-and-purulia-chhau-drama-essay/
175 Arden, J (1971) The Chhau Dancers of Purulia, The Drama Review: pp. 65-75.
176 Citaristi, Ileana (2001) The Five Elements in the Danda Rituals of Orissa, Indian Folklore Research Journal, pp. 47-52.
177 Awasthi, Suresh (1993) Chhau Dance Structure and Style in Chhau Dance of Mayurbhanj, pp. 41-46.

Importance of Chhau – The Chhau dance is very important to the Indian culture because it is based on religious and mythological stories, which is passed through generation to generation. Semi-classical dance form chhau carry forward the local folk cultural, different religious beliefs, stories of legends and local myths. Chhau dance performed by local villagers rather than professional dancers. This types of performance organised during local festivals like Chaitra Parva, Shivaratri, Navaratri etc. That's how Chhau become part of everyday life to the people of this particular region. So the Chhau dance is very important to represents the cultural and traditional heritage of this region.

Conclusion – The semi-classical dance form chhau is struggling with the lack of promotion and government support. Musk makers and performers are from very humble families, they need proper remuneration to maintain their livelihood. The uncertainty of this profession does not attract educated and talented artists, therefor poor support of government makes this dance form a dance of unqualified people. Though very few steps taken by the government but those are not sufficient. Another reason is the area is very much underdeveloped, largely forest-covered and Naxal prone, which are the major obstacles of this dance form. The government must take necessary action to save this oldest dance form, otherwise, it will vanish in due course of the time.

BIBLIOGRAPHY

1. Bhattacharya, A (1972) Chhau dance of Purulia, Rabindra Bharati University edition.
2. Bhattacharya, Asutosh (1993) Chhau Dance of Purulia and Mayurbhanj, A Comparative Study in Chhau Dance of Mayurbhanj.
3. Chatterjii, R (2009) Writing Identities Folklore and Performative Arts of Purulia, Bengal, New Delhi; Aryan Books International.
4. Chhau Dance UNESCO, Representative List of the Intangible Cultural Heritage of Humanity.
5. Mahapatro, Sitakant (1993) Chhau dance of Mayurbhanj.
6. Mahato, Pashupati Prasad (1987) The Performing Arts of Jharkhand. Calcutta; B. B. Prakashan.
7. Pani, Jeevan (1986) A Comparative Study of Three Styles of Chhau, a seminar paper presented at Rabindra Mandap, Bhubaneswar.

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

साम्प्रतिककाले धर्मशास्त्रस्य प्रासंगिकता

डा. प्रीति पारेश्वरि महान्ति
सहाचार्यः, धर्मशास्त्रविभागः,
राजकीयसंस्कृत महाविद्यालय भागलपुर,बिहार

SID- 350596111

Received on--8/31/2020 13:51:09

Accepted on- 26th January, 2021

प्रमुखशब्दाः- लोकः, धर्मशास्त्रम्, धर्मः, साहित्यम्।

शोधसारः

भारतवर्षे विरचितेषु विभिन्नेषु शास्त्रेषु धर्मशास्त्रस्य प्राशस्त्यं प्रामाण्यञ्च सुविदितचरम्। वैदिककालादनन्तरं प्रादुर्भूतेषु त्रिविधेषु स्मृतिसूत्रनिबन्धात्मकेषु धर्मशास्त्रसाहित्येषु प्रामुख्येनैवाचारव्यवहारप्रायश्चित्तविषया विचारिता दृश्यन्ते। धर्मशास्त्रमिदं लोकोपकारकं सामाजिकं शास्त्रम्। लोके शास्त्रस्य बहुलमुपयोगित्वं विद्यते। धर्मशास्त्रे आलोचितानां पाप-प्रायश्चित्त-श्राद्ध-शुद्धि-देवार्चन-स्नान-होम-जप-तीर्थाटनोपवासप्रभृतीनां कर्मणामदृष्टैकफलत्वेन नास्तिकैरप्रत्क्षीकृतत्वेन चाप्रामाण्यमिति यद्यपि केचन संगीरन्ते तथापि सामाजिकवैज्ञानिकदृष्ट्या धर्मशास्त्रस्य प्रत्यक्षफलदायकत्वेन महत्युपादेयता विद्यते। अतः साम्प्रतिककाले अस्य धर्मशास्त्रस्य प्रासंगिकता इति विषये साम्प्रतं मया आलोच्यते।

ABSTRACT

In many scriptures in India, the praise and authenticity of the scriptures are known to all know that the three types of memory that arose after the Vedic period have been considered mainly in the non-discriminatory theology literature, etc., mainly on the subjects of ethics, behavior and atonement, etc., this scripture is a factor social scripture to the people, I have known the usefulness of the Scriptures. Etc., actions have been told. So, in the present period, this research paper on the relevance of this scripture has been presented.

वेदाङ्गेष्वन्यतमस्य कल्पस्यावान्तरभेदरूपेण वेदानुमापकत्वेन च धर्मशास्त्रं विदितचरं समेषाम्। धर्मार्थकाममोक्षेषु चतुर्षु पुरूषार्थेषु धर्मस्यैव प्राधान्यं प्रामाण्यञ्चेति सर्वे स्वीकुर्वन्ति1। धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा, लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति, धर्मेण पापमपनुदति, धर्मे सर्वं प्रतिष्ठितं, तस्मात् धर्मं परमं वदन्ती" त्यादिना धर्मस्य प्रशंसा साक्षाद् वेदेन कृता दृश्यते। `श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिरिति[2] मनुवचनात् धर्मशास्त्रं स्मृतिशब्देनापि व्यपदिश्यते।

श्रुतिस्मृतिवत् शास्त्रान्तराण्यपि धर्मशास्त्रस्य प्रामाण्यं स्वीकृत्य प्रशंसां कुर्वन्ति। तत्र 'सांख्यास्मृत्यास्ति सङ्कोचोऽथवा वेदसमन्वये' इत्यादिना[3] उत्तरमीमांसायां ब्रह्मणो जगत्कर्तृत्व-विचारप्रसङ्गे साङ्ख्यशास्त्रापेक्षया मन्वादिधर्मशास्त्रस्या प्राबल्यं प्रदर्श्य प्रामाण्यं प्रदर्शितम्।

'विहितकर्मजन्यो धर्मः' इति[4] नैयायिकैः, 'यतोऽभ्यदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' इति[5] वैशेषिकैश्च धर्मस्य लक्षणं कुर्वद्भिः धर्मशास्त्रस्य प्रामाण्यामङ्गीकृतम्। 'तमेतमात्मानं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति यज्ञेन' इत्यादिश्रुतेः 'तपसा किल्विषं हन्तीत्यादिस्मृतेश्च[6] वेदान्तोऽपि धर्मशास्त्रस्य प्रामाण्यामभ्युपगच्छति। सांख्यशास्त्रे[7] तत्त्वकौमुद्यास्वतः प्रमाणस्य युक्तत्वमभिधातुमेवं वेदमूलस्मृतीतिहासपुराणवक्याजनितमपि ज्ञानं युक्तं भवतीति प्रतिपादयता वाचस्पतिमिश्रेण प्रत्यक्षवेदमूलत्वेन मन्वादिस्मृतीनां प्रामाण्यं स्वीकृतम्। [8]व्याकरणशास्त्रे भगवता पतञ्जलिना 'मिदचोऽन्त्यात् परः' इति सूत्रस्य भाष्यं कुर्वता नैवेश्वर आज्ञापयति, नापि धर्मसूत्रकाराः पठन्ति, अपवादैरूत्सर्गा बाध्यन्तामित्यादिना धर्मशास्त्रस्य प्रामाण्यमभ्युापगतम्। 'अथातो धर्मजिज्ञासा' इत्यादिना ग्रन्थारम्भं कुर्वन्[9] पूर्वमीमांसाकारोजैमिनिरपि धर्मशास्त्रस्य धर्मस्य च प्रामाण्यं प्रादर्शयत्।

साहित्येऽपि [10]काव्यप्रकाशकृता मम्मटाचार्येण काव्यहेतुप्रसङ्गे शास्त्राणां च्छन्दोव्याकरणाभिधानकोश-कलाचतुर्वर्ग-गज-तुरगादिलक्षणग्रन्थानामितिवृत्तौ यत् चतुर्वर्गपदं प्रयुक्तं तेन धर्मार्थकाममोक्षाणां बोधनात् तत्प्रतिपादकस्य धर्मशास्त्रस्य प्रामाण्यं सुतरां प्रदर्शितम्। पुनश्च [11]कौटलीयार्थशास्त्रे -

व्यवस्थितार्यमर्यादः कृतवर्णाश्रमस्थितः।
त्रया च रक्षितो लोकः प्रसीदति न सीदति।। इति।

एतेन वर्णाश्रमधर्मस्य प्रशंसां कुर्वता कौटल्येन धर्मशास्त्रस्यापि प्रामाण्यं स्वीकृतम्। ज्योतिःशास्त्रे युगमानप्रसङ्गे मनुस्मृत्युक्तयुगमानमाश्रित्य गणनाप्रवृत्ते धर्मशास्त्रस्य प्रामाण्यं तत्रापि स्वीकृतम्। [12]रघुवंशमहाकाव्ये कविकुलगुरूणा कालिदासेन श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छदित्यादिना स्मृतेः प्रामाण्यं प्रतिपादितम्। पुनश्च -

अग्निहोत्रं यथा कार्यं राजकार्यं तथैव हि।
वेदोक्तवातत्वात् स्मृतिप्रोवोंतं कर्त्तव्यत्वान्मनीषिभिः।। इति।।

इत्यादिना [13]संङ्गीतशास्त्रेऽपि धर्मशास्त्रस्य प्रशंसया सह प्रामाण्यमभ्युपगतम्।

एतेन श्रुतेरारभ्य संगीतशास्त्रं यावत् सर्वे शास्त्रैः धर्मशास्त्रस्य प्रामाण्यं स्वीकृतमिति ज्ञायते। एवंभूतं प्रामाणिकं यद् धर्मशास्त्रं तस्य युगे युगे प्रामाण्यं प्रासङ्गिकता च विद्यत एवेत्यत्र नास्ति संशयाः। धर्मशास्त्रमिदं लोकोपकारकं सामाजिकं शास्त्रम्। लोके शास्त्रस्य बहुलमुपयोगित्वं विद्यते। धर्मशास्त्रे पाप-प्रायश्चित्त-श्राद्ध-शुद्धि-देवार्चन-स्नान-होम-जप-तीर्थाटनोपवासप्रभृतीनां कर्मणामदृष्टैकफलत्वेन नास्तिकैरप्रत्यक्षीकृतत्वेन चाप्रामाण्यमिति यद्यपि केचन संगीरन्ते तथापि सामाजिकवैज्ञानिकदृष्टया धर्मशास्त्रस्य प्रत्यक्षफलदायाकत्वेन महत्वपादेयता विद्यते। यथा शास्त्रान्तराणि धर्मशास्त्रस्य प्रामाण्यं स्वीकुर्वन्ति तथा धर्मशास्त्रेऽपि बहूनां शास्त्राणां समावेशेन प्रामाण्यमपि समुपन्यास्तम्।

धर्मशास्त्रे प्रतिपादितं शरीरतत्त्वमाधुनिकवैज्ञानिकानपि चमत्करोति। तत्र [14]याज्ञवल्क्यमतानुसारेण गर्भे भ्रूणः प्रथमे मासि द्रवीभूतः, द्वितीयेऽर्बुदाकारः, तृतीये इन्द्रियुक्त, चतुर्थेऽप्रत्यङ्गानां स्थिरता, पञ्चमे भ्रूणशरीरे रक्तोत्पत्तिः, षष्ठे बल-वर्ण-रोम्णाञ्चाविर्भावः, सप्तमे नाडीनां स्नायूनां वातपित्तश्लेष्माणां शिराणाञ्च समुत्पत्तिः, अष्टमे ओजस उत्पत्तिः, नवमे मासि च पूर्णतयोत्पत्तिः सम्पद्यते।

पुनश्च मनुष्यस्य सर्वाङ्गशरीरे आहत्य षष्ट्युत्तरत्रिशत (360) संख्यकानि अस्थीनि, नवशतानि स्नायवः, पञ्चशतानि मांसपेश्य, द्विशतधमन्य, लक्षत्रयसंख्यकाः श्मश्रुकेशाः, चतुः पञ्चशत्कोटयः सप्तोत्तरषष्टिलक्षाः सार्द्धपञ्चशत्सहस्रसंख्यकानि

(546750500) रोमाणि च सन्ति। पुनश्चास्मिन् शरीरे नवाञ्जलिपरिमिता रसाः, दशाञ्जलयः आपः, सप्ताञ्जलिपरिमितानि मलानि, अष्टाञ्जलिपरिमिताः रक्ताः, अञ्जलिषट्कं श्लेष्म, अञ्जलिपञ्चकं पित्तम्, अञ्जलिचतुष्टयपरिमितं मूत्रं, अञ्जलित्रयं वसा, अञ्जलिद्वयं मेदः, एकाञ्जलिपरिमितं मज्जा, अर्द्धाञ्जलिपरिमितं रेतश्च विद्यते।

धर्मशास्त्रे विज्ञानस्यापि महती चर्चा कृता दृश्यते। यद् भौतिकविज्ञानं सम्प्रति वैज्ञानिकैर्द्दक्सिद्धमित्युद्घोष्यते तद् बहुकालात् पूर्वं [15]मनुना समुद्भावितम्। यथा आकाश शब्दगुणकं, तस्माद् वायुः, वायोरग्निरग्नेर्जलं, जलाच्च पृथिवीति क्रमेण तत्तद्धर्मयुक्ताः सृष्टा अभूवन्। यथोक्तं तेन -

आकाशाज्जायते तस्मात् तस्य शब्दगुणं विदुः।
आकाशात्तु विकुर्वाणात् सर्वगन्धवहः शुचिः।।
बलवान् जायते वायुः स वै स्पर्शगुणो मतः।
वायोरपि विकुर्वाणाद् विरोचिष्णु तमोनुदम्।।
ज्योतिरूत्पद्यते भास्वत् तद्रूपगुणमुच्यते।
ज्योतिषश्च विकुर्वाणादापो रसगुणाः स्मृताः।
अद्भ्यो गन्धगुणा भूमिरित्येषा सृष्टिरादितः।। इति।।

पुनश्च प्राणिनां जीवनधारणार्थं जगति सुस्थपरिवेशस्य सुतरामावश्याकता विद्यते। परिवेशोऽयं यथा प्रदूषितो न स्यात् तदर्थं [16]मनुना या व्यवस्था विहिता साऽवश्मवधेया। तत्रादौ जलप्रदूषणनिषेधार्थं 'नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा' इत्यादिना जले मलमूत्रोत्सर्जनस्य निषेधोऽकारि। [17]'वस्त्रपूतं जलं पिवेदित्यादिना शुद्धजलस्य पानं सर्वदा तेनोपदिष्टम्। पुनश्च महायन्त्रप्रभृतीनां प्रवर्त्तनं, सर्वेष्वाकरेष्वधिकार ओषधीनां अहिंसा, इन्धनार्थं द्रुमच्छेद इत्यादीनामेकैकशो निषेधाद् वायोः प्रदूषणं निवारितम्। प्रसङ्गसऽस्मिन् यथोक्तं [18]मनुना -

सर्वाकरेष्वधिकारो महा ान्त्रप्रवर्त्तनम्।
इन्धनार्थमशुष्काणां द्रुमाणामवपातनम्।। इति।।

प्राणिनां श्वासप्रश्वासार्थमम्लजानसंज्ञको यो वायुरपेक्ष्यते तस्य संग्रहो वृक्षादिभ्यो भवतीति हेतोः सम्प्रति शासकैः वृक्षच्छेदननिषेधस्य वृक्षरोपणविधेश्च प्रणयनं कृतम्। परन्तु तस्या व्यावस्थायाः मूलं खलु धर्मशास्त्रम्।

धर्मशास्त्रेषु वृक्षच्छेदननिषेधस्य वृक्षरोपणविधेश्च प्रणयनं पापपुण्यादिभावनया व्यवस्थितं येन जनानां तत्र निवृत्ति-प्रवृत्तिरूपो धर्मः परिपाल्यते। येन परिवेशस्य सुरक्षया सह प्रकृतेर्भारसाम्यं स्यात्। प्रसङ्गेऽस्मिन् [19]मनुना निगदितं यात्-

फलदानान्तु वृक्षाणां च्छेदने जप्यमृक्शतम्।
गुल्मवल्लीलतानाञ्च पुष्पितानाञ्च वीरूधाम्।।
वनस्पतीनां सर्वेषामुपयोगो यथा यथा।
तथा तथा दमः कार्यो हिंसायामिति धारणा।। इति।।

पुनश्च -

अश्वत्थ एक पिचुमर्द एको द्वौ चम्पकौ त्रीणि च केशराणि।
सप्ताथ ताला नव नारिकेला, पञ्चम्ररोपी नरकं न याति।। इति।।

तिथितत्त्वे एतेषां प्रतिपादनात् जनानां रूचिस्तत्र समुत्पादिता। अपि च संस्काराणामनुष्ठानार्थं धर्मशास्त्रेषु या व्यवस्था विहिता सा अदृष्टफलकेति साम्प्रतिका मन्यन्ते। परन्तु नैतत् समीचीनम्। संस्काराणां सामाजिकी भूमिकाऽतीव महत्त्वपूर्णं। गर्भाधानादारभ्य विवाहसंस्कारं यावत् सर्वेषां संस्काराणां सामाजिकमूल्यबोधः सुतरां विद्यते। तत्र गर्भाधानस्य कः कालः

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

कदा स्त्रीगमने उत्तमाः प्रजा जायेरन् इत्यादिप्रसङ्गे `षोडशर्त्तुः निशाः स्त्रीणाम्', `स्वदारनिरतश्चैव' इत्यादि [20]याज्ञवल्क्येन `ऋतावुपेयादि'ति [21]गौतमवचनेन, `मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेदि'ति [22]मनुवचनेन च या व्यवस्था समाजे विहिता तेन समाजः श्रृङ्खलितः व्यभिचाररहितः सुस्थश्च सञ्जायते।

शासनश्रृङ्खलार्थं मन्वादिधर्मशास्त्रकारैर्यो राजधर्म उपदिष्टः, दुष्टानां निग्रहार्थं या कठोरदण्डव्यवस्था च विहिता, तस्माद् दण्डाद् भीता एव तदा जना सर्वे श्रृङ्खलिता निरूपद्रवाश्चासन्। तात्कालिकीं शासनपद्धतिमनु-सृत्य यदि सम्प्रति देशे शासकाः प्रवर्त्तेरन् तर्हि पुनरेवात्र रामराज्यस्य प्रतिष्ठा भवितुमर्हति। एवं धर्मशास्त्रेषु बह्वय व्यवस्थाः सन्ति याः काले काले यागे यागे च लोकानामुपकाराय कल्प्यन्ते।

प्रबन्धेऽस्मिन् स्थालीपुलाकन्यायेन दिङ्मात्रं मया समुपस्थापितम्। वस्तुतो धर्मशास्त्रमेकमात्रं शास्त्रं यास्यानुसरणेन मानवः पूर्णविकसितमनुष्यरूपेण श्रृङ्खलितसमाजं सृष्ट्वा मानवतां प्रतिष्ठापयितुं प्रभवत्। ये केचन तथाकथिता आधुनिका पाखण्डिनः मनुस्मृतिं मनुवादञ्च तिरस्कुर्वन्ति ते पितृद्वेष्टारो भवन्ति। यतो हि समग्रमानवसमाजस्य स्रष्टा मनुरेव। मनोरपत्यं पुमान् मानवः। अतएव य एवं द्वेष्टि नाऽसौ मानवः स पशुरेव। अतः साम्प्रतिके काले शास्त्रान्तरापेक्षया धर्मशास्त्रस्य महदुपादेयत्वं विद्यते येन समग्रं लोकतन्त्रं श्रृङ्खलितं संयतं व्यवस्थितमुपकृतञ्च भवितुमर्हतीति।

अन्तटिप्पणी

1. तैत्तिरीयारण्यकम् - 10/63
2. मनुस्मृतिः - 2/9
3. उत्तरमीमांसा - 2/1
4. तर्कसंग्रहः, पृष्ठ- 99
5. वैशेषिकसूत्रम् - 1/1/1
6. वेदान्तसारः, पृष्ठ-54
7. सांख्यतत्त्वकौमुदी, पृष्ठ - 111
8. व्याकरणमहाभाष्यम् - 1/1/47
9. पूर्वमीमांसासूत्रम् - 1/1/1
10. काव्यप्रकाशः, प्रथमो}धसे
11. कौटलीयार्थशास्त्रम् - 1/3
12. रघुवंशम्, तृतीयसर्गे
13. संगीतपारिजाते - 1/4
14. याज्ञवल्क्यस्मृतिः - 3/75-107
15. मनुस्मृतिः - 1/75.78
16. तत्रैव - 4/56
17. तत्रैव - 6/46

18. तत्रैव - 11/63
19. तत्रैव - 11/142
20. याज्ञवल्क्यस्मृतिः - 1/79,1/81
21. गौतमधर्मसूत्रम् - 1/5/1
22. मनुस्मृतिः - 2/215

सन्दर्भग्रन्थसूची

- काव्यप्रकाशः, संस्कृत पुस्तक भाण्डार, कलिकाता, 2008
- कौटलीयार्थशास्त्रम्,आर.पी.कांगलो, मुम्बाई, 1966
- गौतमधर्मसूत्राणि, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2005
- तर्कसंग्रहः, हरिकृष्णनिबन्धभवनम्, 1960
- तैत्तिरीयारण्यकम्, आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावली, 1967
- पूर्वमीमांसासूत्रम्-चौखम्बा संस्कृत सिरीज आफिस्, वाराणसी, 1916
- ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्यम्, निर्णयसागरप्रेस्, मुम्बई, 1904
- मनुस्मृतिः, मोतिलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1990
- महाभारतम्, (अनुशासनपर्व)भण्डारकर ओरिएण्टालरीसर्च इन्स्टिच्युट, पूना, 1972
- याज्ञवल्क्यस्मृतिः(मिताक्षरासहिता) चौखम्बासंस्कृतप्रतिष्ठान, दिल्ली, 2005
- रघुवंशम्, चौखम्बासंस्कृतसंघटन, वाराणसी, 1985
- व्याकरणमहाभाष्यम्, विद्यानिधि शोधसंस्थान, कुरूक्षेत्र, 2006
- वेदान्तसारः, राष्ट्रियसंस्कृतसाहित्यकेन्द्र, जयपुर, 2005
- वैशेषिकसूत्रम्, एसियाटिक सोसाइटि, कलिकाता, 1909
- सङ्गीतपारिजातः, चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, 1987
- सांख्यतत्वकौमुदी, मोतिलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1979

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

तैत्तिरीयोपनिषद् सम्मत शरीर में अन्नरसमयत्व की अवधारणा

प्रियंका मिश्रा
शोधछात्रा ; संस्कृत, वी.एस.एस.डी. कालेज, नबावगंज, कानपुर उ0प्र0

SID- 371811513

Received on-10/28/2020 21:00:43 | **Accepted on-** 26th January, 2021

प्रमुख शब्द- **अन्नरसमयत्व, सप्त धातुएँ, तैत्तिरीयोपनिषद् ।**

शोध-सार

उपनिषदों में विभिन्न प्रकार से शरीर की तात्त्विक तथा भौतिक सृष्टि का उल्लेख प्राप्त होता है जिसके अनुसार परमतत्त्व परब्रह्म से सृष्टि के क्रम में आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से आप, आप से पृथिवी, पृथिवी से वनस्पति, वनस्पति से अन्न, तथा अन्न के रस से समस्त प्राणियों की उत्पत्ति हुयी है। अतः यह भौतिक शरीर अन्नरसमय वाला है। शरीर के द्वारा जो भी अन्न ग्रहण किया जाता है, उस अन्नादि के जीर्ण होने से रस परिणामस्वरूप शरीर में सप्त धातुओं तथा अवयवों के आधारों की रचना होती है। संकेत रूप में जीर्ण अशितपीत पदार्थो के स्थूल, मध्यम तथा सूक्ष्म अशों से रक्त, मांस, अस्थि ,मज्जा, मन, वाक् आदि का निर्माण होता है। इस प्रकार आहाररस में उक्त धातु निर्माण के सभी तत्त्व विद्यमान रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप बाह्य तथा आभ्यन्तर शरीर पुष्ट होता है।

ABSTRACT

This physical body is anatomical. Whatever food grain is ingested by the body, due to the chronic loss of the anadi, the result of which is the formation of the basis of sapta metals and ingredients in the body. In the form of indications, blood, flesh, bone, marrow, mind, speech, etc. are formed from the gross, medium and microscopic ashes of chronic Ashtapeet substances. In this way, all the elements of the said metal formation are present in the dietary body, as a result of which the external and meditative body is strengthened.

उपनिषद् हिन्दू धर्म के महत्त्वपूर्ण श्रुति धर्मग्रन्थ हैं। इनमें परब्रह्म, माया, ब्रह्मविद्या, जीव तथा जगत आदि की उत्पत्ति का रोचक शैली में विस्तृत वर्णन किया गया है। उपनिषदों में जीव तथा जगत की उत्पत्ति के क्रम में ही अन्नरसमयत्व का वर्णन प्राप्त होता है। वैसे तो प्रायः सभी उपनिषद् अन्न की महिमा का वर्णन करते हैं किन्तु तैत्तिरीयोपनिषद् में अन्न के महत्त्व तथा अन्नरस से सप्त धातुओं व शरीर की उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन किया गया है।

अन्न की महिमा का वर्णन करते हुये तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा भी गया है कि -

’अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते। या काश्च पृथिवीश्रिताः। अथो अन्नेनैव जीवन्ति।
अथैनदपि यन्त्यन्ततः। अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते।

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

अन्नाद् भूतानि जायन्ते। जातान्यन्नेन वर्धन्ते । अद्यतेऽत्ति च भूतानि।
तस्मादन्नं तदुच्यते इति।'[1]

अर्थात् पृथिवी लोक का आश्रय लेकर रहने वाले सभी प्राणी अन्न से ही उत्पन्न होते हैं । फिर अन्न से ही जीवित रहते हैं तथा अन्त में अन्न में ही विलीन हो जाते हैं। अतः अन्न ही समस्त भूतों में श्रेष्ठ है। इस कारण यह सर्वोषध रूप कहलाता है।

इस प्रकार प्राणियों द्वारा जो अन्न ग्रहण किया जाता है, वह पित्त की उष्णता से पाचित होकर सप्त धातुओं यथा - रस (Circulatory Fluid), रक्त (blood cells), मांस (muscles), मेद (Fat or adipose tissue), अस्थि (bone), मज्जा (Bone Marrow) और शुक्र(Sperms / Reproductive tissue) में परिणत हो जाता है। इस प्रकार इनमें सर्वप्रथम **रस,रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से शुक्र** की उत्पत्ति होती है।

उपर्युक्त तथ्य को स्पष्ट करते हुए शार्ङ्गधरसंहिता में द्रष्टव्य है कि -

'रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः।
जायन्तेऽन्योऽन्यतः सर्वे पाचिताः पित्ततेजसा।।।
रसाद् रक्तं ततो मांसं मांसान् मेदः प्रजायते।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसम्भवः।।'[2]

उल्लेखनीय है कि आहार में उक्त सप्त धातुओं के मूल कारण या उत्पादक तत्त्व विद्यमान रहते हैं।

आहार के परिपाक होने पर सारभूत पदार्थ जो आहार से पृथक होता है, वह रस धातु कहलाता है। यह रसवाहिनियों द्वारा सम्पूर्ण धातुओं का पोषण करता है। रस धातु का जितना भी भाग रंजक पित्त द्वारा रंग दिया जाता है, वह रक्त धातु कहलाता है। यह रक्त भी धमनियों द्वारा सम्पूर्ण धातुओं को पोषण देता है। इसी प्रकार जब रक्त अग्नि द्वारा परिपक्व होकर वायु द्वारा घनीभूत होता है, तब वह मांस धातु कहलाता है । यह मांस धातु मांसपेशियों में रहता है, मेद जमे हुए घी जैसा पदार्थ है, जो त्वचा के नीचे पाया जाता है, अस्थि शरीर को आकार प्रदान करता है, मज्जा हड्डियों के भीतर पाया जाने वाला स्नेह है तथा शुक्र या वीर्य 'रेतस्' के नाम से जाना जाता है।

इस प्रकार आहाररस के द्वारा ही अन्य सभी धातएँ पुष्ट होती हैं तथा शरीर को धारण किए रहती हैं जिसके परिणामस्वरूप शरीर सभी प्रकार की अन्तः तथा बाह्य क्रियाओं को करने में प्रवृत्त होता है। शरीर की उत्पत्ति का मूल कारण अन्नरस ही होता है। स्त्री-पुरुष के द्वारा ग्रहण किया गया अन्न ही शुक्र-शोणित में परिणत हो जाता है जिससे शरीर की उत्पत्ति होती है। इस सम्बन्ध में सांख्यकारिका माठरवृत्ति में कहा भी गया है -

तत् स्त्रीपुंसाभ्यामुपभुक्तं शुक्रशोणिते , ततः पुरुष इति।[3]

इसके अनन्तर जब गर्भाशय में गर्भ स्थापित हो जाता है, तब शरीर की रचना तथा वृद्धि माता द्वारा ग्रहण किए गये आहाररस के निमित्त ही होती है। माता जो भी खाती पीती है, उस आहार के पच जाने पर माता के शरीर में रस द्रव्य का उपचय होता है। यह रस ही मातृनाड़ी से बालक के नाभिरन्ध्र में उसी प्रकार प्रवेश करता है, जिस प्रकार किसी एक मार्ग अथवा कुल्या से पहँचा हुआ जल पूरे शाकवाटिका को सिक्त कर देता है।

सांख्यकारिका में उक्त तथ्य को स्पष्ट करते हुये कहा भी गया है--

CONTACT US- JAHNAVISANSKRITJOURNAL@GMAIL.COM WEBSITE-JAHNAVISANSKRITEJOURNAL.IN

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

'मातुरशितपीतः रसो मातृनाडीसम्बन्धेन प्रविश्य सूक्ष्मशरीरस्य शुक्रशोणितमयस्योपचयं कुरुते। मातुश्च नाड्या बालस्य नाभिरन्ध्रं प्रविशति। यथैकेन मार्गेण शाकवाटस्याप्यायनमुदकं करोति। एवमन्नपानस्य रसो मातृनाडीगतो बालस्य नाभिं प्रविशति। प्रविश्य बालशरीरस्याप्यायनं करोति।' [4]

परिणामस्वरूप गर्भस्थित पललपिण्ड पालित पोषित होता हुआ शरीर के रूप में शनैः शनैः वृद्धि को प्राप्त होता रहता है। इस प्रकार गर्भ में आहाररस शरीर की क्रमिक रचना का प्रयोजन है जिसके परिणामस्वरूप शरीर में - **अर्बुद, मांसपेशी, कलल, कण्डरा, शिर, पाणि** आदि स्वरूपों की अभिव्यक्ति होती है।

इस प्रकार माता द्वारा आहार द्रव्य के परिणामभूत रसों से पुष्ट होता हुआ शरीर प्रसव के लिए सर्वथा पूर्ण हो जाता है। अतः अन्न ही जीवन का आधार है। मनुष्य को इसकी निन्दा नहीं करनी चाहिए। कहा भी गया है-

अन्नं न निन्द्यात्। तद् व्रतम्। [5]

पृथिवी तथा आकाश दोनों को भी अन्न रूप वाला बताया गया है जिसके तत्त्व को जानकर मनुष्य अनेक फलों का भोक्ता हो जाता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में इसका वर्णन करते हुए कहा गया है -

'अन्नं बहु कुर्वीत। तद् व्रतम्। पृथिवी वा अन्नम्। आकाशोऽन्नादः।
प्रथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः। आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता। तदेतदन्नमन्ने
प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो
भवति। महान्भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान्कीर्त्या ।।' [6]

अर्थात् अन्न को बढ़ायें, यह एक व्रत है। पृथिवी ही अन्न है। आकाश भी पृथिवी रूप अन्न का आधार होने से अन्नाद है। आकाश सर्वव्यापी है। अतः वह पृथिवी में स्थिर है और पृथिवी आकाश में स्थिर है। इस प्रकार ये दोनों ही एक दूसरे के आधार होने के कारण अन्न स्वरूप वाले हैं। अतः अन्न में ही अन्न प्रविष्ट है।

जो मनुष्य इस रहस्य को जान लेता है ,वह अन्नादि पदार्थ, पाचन शक्ति, सन्तान, तेज तथा कीर्ति आदि से समृद्ध होकर महान हो जाता है। इस प्रकार अन्न ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

छान्दोग्योपनिषद् में भी भक्षण किए गये अन्न की तीन अवस्थाओं का वर्णन करते हुए अन्न के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है जिसका वर्णन निम्नवत है -

'अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुस्तत्पुरीषं
भवति यो मध्यमस्तन्माँसं योऽणिष्ठस्तन्मनः।' [7]

अर्थात् जो अन्न भक्षण किया जाता है, वह तीन प्रकार से बँट जाता है। जो स्थूलतम अंश है, वह विष्ठा बन जाता है, जो मध्यम अंश है वह रसादि होकर मांस बन जाता है और जो सूक्ष्म भाग है वह मन बन जाता है। अतः अन्नपान से रसादि धातुओं को पोषण मिलने के साथ मन को भी ऊर्जा प्राप्त होती है।

आचार्य चरक ने भी अन्न का वर्णन करते हुए कहा है कि-

'इष्टवर्णगन्धरसस्पर्शविधिविहितमन्नपानं प्राणिनां प्राणिसंज्ञकानां प्राणमाचक्षते कुशलाः, प्रत्यक्षफलदर्शनात्, तदिन्धना ह्यन्तरग्नेः स्थितिः तत् सत्त्वमूर्जयति, तच्छरीरधातुव्यूहबलवर्णेन्द्रियप्रसादकरं यथोक्तमुपसेव्यमानं विपरीतमहिताय सम्पद्यते।' [8]

अतः आहाररस पुष्टिदायक, बलकारक, उत्साह, कान्ति, ओज, आयु, स्मृति तथा अग्नि को उदीप्त करने वाला होता है जिसका वर्णन करते हुए शार्ङ्गधरसंहिता ने भी कहा है कि-

आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृद् देहधारकः।
आयुस्तेजः समुत्साहः स्मृत्योजोऽग्निविवर्द्धनः।।[9]

उल्लेखनीय है कि अन्नरस ही समस्त धातुओं को पुष्ट करता हुआ शरीर की रक्षा करता है, अतएव यह अमृत के समान होता है।

निष्कर्ष- इस प्रकार अन्न की श्रेष्ठता स्वयं सिद्ध है, क्योंकि समस्त प्राणियों का अस्तित्व अन्नरस पर ही निर्भर करता है। आहार की समुचित मात्रा का ग्रहण करके मनुष्य देह सन्ताप को शान्त करता हुआ शतायु जीवन की कामना करता है। इस कारण इसको सर्वोषध रूप भी कहा जाता है।

अन्तटिप्पणी

1 तैत्तिरीयोपनिषद्, अनु0 2/1
2 शार्ङग धरसंहिता, पूर्वखण्ड, अ0 5/15-16
3. सांख्यकारिका, मा0 वृत्ति पृ0सं0 146
4. सांख्यकारिका, मा0 वृत्ति पृ0सं0 146
5. तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगु बल्ली अनु0 7/1
6. तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगु वल्ली अनु0 9/1
7. छान्दोग्योपनिषद्, 6/5/1
8.चरकसंहिता, सूत्रसथान अ0 27/3
9. शार्ङ्ग धरसंहिता, पूर्वखण्ड अ0 6/1

सन्दर्भग्रन्थसूची

1 चरकसंहिता, डा ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चैखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी।
2 छान्दाग्योपनिषद्, पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति सस्थान, बरेली।
3 तैत्तिरीयोपनिषद्, स्वामी प्रखर प्रज्ञानन्द सरस्वती, चैखम्भा संस्कृत सस्थान, वाराणसी।
4 तैत्तिरीयोपनिषद्, पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति सस्थान, बरेली।
5 न्यायदर्शन, उदयवीर शास्त्री, अजय प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली।
6 शार्ङ्ग धरसंहिता, डा॰ ब्रहानन्द त्रिपाठी, चैखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।
7 सांख्यकारिका, थानेशचन्द्र उप्रति, चैखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

Interpretation of Vedas: Oversee by Time Factor (?)

Dr. Pranati Mohapatra Mishra
Purni Devi Chawdhury Girl's College, Bolpur

SID- 362556749

Received on-10/5/2020 16:54:50 **Accepted on-** 26th January, 2021

Keywords- The Vedas, Brahmā, *Ṛgveda Saṁhitā,* Scientific Interpretations.

ABSTRACT

The Vedas are probably the earliest literary documents of human mind are indeed thorny to say when and how the most basic scrap of Vedas came into subsistence. As the ancient Hindus hardly ever kept any historical record of their religious, literary and political insight, it is also difficult to determine the time of the Vedas with accuracy. Historians provide us many guesses but none of them is free from haziness. Vedas are otherwise considered as knowledge, the knowledge of eternal. Evolved from Brahmā and handed over to the *Ṛṣis* and Ṛṣis handed it over to their eligible disciples and those disciples again handed over to their disciples and so on. In this chain Vedas handed over to common man through device like sacrifice, *karmakānda* and social laws. In course of time, it has become obscure for a good percentage of users. Probably this obscurity compiled the scholars to interpret the source knowledge (Vedas) for the knowledge of common man. This trend of interpretation initiated from *Brāhmaṇa* literature and never ended till date.

According to tradition *Ṛgveda Saṁhitā* is the oldest collection of hymns and verses. This Veda has been interpreted by interpreters in different stages, different times as well as in different ways. Some where it has given importance to lexical meaning, somewhere it is philosophical and somewhere scientific interpretations and etc.

Introduction

The Vedas are probably the earliest literary documents of human mind are indeed thorny to say when and how the most basic scrap of Vedas came into subsistence. As the ancient Hindus hardly ever kept any historical record of their religious, literary and political insight, it is also difficult to determine the time of the Vedas with accuracy. Historians provide us many guesses but none of them is free from haziness. Vedas are otherwise considered as knowledge, the knowledge of eternal. Evolved from Brahmā and handed over to the *Ṛṣis* and Ṛṣis handed it over to their eligible disciples and those disciples again handed over to their disciples and so on. In this chain Vedas handed over to common man through device like sacrifice, *karmakānda* and social laws. In course of time it has become obscure for a good percentage of users. Probably this obscurity compiled the scholars to interpret the source knowledge (Vedas) for the knowledge of common man. This trend of interpretation initiated from *Brāhmaṇa* literature and never ended till date.
According to tradition *Ṛgveda Saṁhitā* is the oldest collection of hymns and verses. This Veda has been interpreted by interpreters in different stages, different times as well as in different ways.

Some where it has given importance to lexical meaning, somewhere it is philosophical and somewhere scientific interpretations and etc.

Trend of Interpretations

In this process of handing over the knowledge we can trace many commentaries and commentators and their unique method of interpretations on the Vedas. Interpreters like Sayana, Skanda,Venkata were the traditional interpreters and Sri Dayananda, Sri Aurobindo, T.V. Kapali Sastry are some contemporary interpreters.

Among the traditional interpreters, name of 14th century interpreter Sayana considered most vital. The inner current of his commentary based on *Purāṇa*, Sacrificial traditions, *Nirukta*, *Vyākaraṇa*, *Brāhmaṇa* and *Mîmāṁsā*.

Among the contemporary interpreters Swami Dayananda Saraswati is the most prominent Vedic scholar of 19th century and is the founder of famous Vedic organization Arya Samaj. Svami Dayananda had a receptive mind, but he was endowed with a critical faculty of high order. Dayananda believed the commentators like Sayana, Mahidhara, Ubata etc. have interpreted the Vedas in such a way that the original meaning of the Vedas was masked in darkness. Swami Dayananda Saraswati is one of the contemporary interpreters of the Vedas, who is emphasized on the inclusion of *Nirukta* and *Nighantu* in Vedic interpretation. His interpretation on first chapter of *Ṛgveda* (*Aṣṭaka* system) seems very interesting. Interpreters like Sayana, Skanda,Venkata are also referred *Nirukta* for word analysis. Similarly, Dayananda also follows the same tradition. It is noticeable fact that when all other interpreters use *Nirukta* infrequently at the same time Dayananda takes help of *Nirukta* and Nighantu in case of almost all Mantras he interpreted. As a strong supporter of *Nirukta* tradition Dayananda tried to overcome the interpretation follows the *Mîmāṁsā* tradition. It is interesting that at the same time he plays two contradictory roles, in one side he is considered as strong supporter of sacrifices and homely rituals and in the other side his Vedic interpretations deviating the *Mîmāṁsā* system. Cause behind this seems very ambiguous. Probably as a strong supporter of Indian Cultural heritage, he has accepted ritualistic system as the foundation of Vedic society and simultaneously to protest the Brahmanic dominance on the Vedas, he may stand against the *Mîmāṁsā* system of interpretations not the sacrificial system.

According to his thought system normally *ādhidaivika*, *adhyātmika* and *adhiyājñika*, these three types of meaning are possible but these commentators and interpreters have only given the meaning *adhiyājñika* referring only to *Yajña* or sacrifice. According to him the commentators and interpreters grossly misinterpreted the Vedas and inserted as well as super imposed their false notions or petty pimples in the Vedas.

Sayana, Mahidhara, Ubata etc. were far away from the age of the Vedas. Of several traditions only the *Yajña* tradition survived while the others were lost. The commentary of Dayananda is based on *Nighantu*, *Nirukta* of Yaska and as well as on the Grammatik traditions. The words in the Vedas are not based on *Rūḍha* but they are *Yaugic* in nature. Hence every word has the capacity to provide several meanings. He went one step further and by his interpretations succeeded in persuading others that everything worth knowing even the most recent inventions of modern science was all added to in the Vedas. Here in this paper selected words or combination of Ṛgveda ((only from the first Addhyāya of Aṣṭaka system) shall analysed. In each case intenced focus will be on the interpretation of the five interpreters of Ṛgveda (mentioned earlier). The words or combination of words to be discussed are-

I. *Agnim* **II**. *Vṛktabarhiṣaḥ* **III.** *Rudravartinî* **IV**. *Subhagān V. Indra* **VI.** *Rāyaḥ* **VII.** *Surupakṛtnum* **VIII.** *Indramabhipragāyata* **IX.**Hari **X**. *Sutapābne suta eme sucayo yanti vitaye*

Comparative Study of Interpretations

I. *Agnim* - According to Sayana *Agnim* (of RV.1.1.1)[178]is the word derived from the root '*ag'* and we can get several supporting stanzas from different sources where *Agni* has been identified as a Particular deity and, in the commentary, Sayana explains agnināmakam *devam* or to *Agni*, similarly Venkata Madhava Skandasvami and Kapali Sastry explained *Agnim* as *Agnim* or ''to the fire''. When we come across the commentary of Dayananda here the word *Agni* has left its lexical meaning and narrated as *paremeśvaram bhautikam vā*. Here Dayanada has the intention to expand the internal meaning of the word and successfully he made it clear that *Agni* is nothing but the supreme all mighty. To substantiate we can go through the RV 1.164.46, where henotheistic concept of Vedic deities has been discarded and monotheism has been established. So, *Agni* is accepted here as the supreme deity or god. Unfortunately, Dayananda has not referred neither *Nirukta* nor *Nighantu* to explain *Agni*, whereas Sayana referred *Nirukta* to explain *Agni* and has given all available etymologies of the word *Agni* and tried to justify his concept as logical.

II. *Vṛktabarhiṣaḥ* -The word *vṛktabarhiṣaḥ* (Rv.1.3.3)[179] has been explained by Sayana as '*mūlairvarjitāni varhirṣi āsataraṇarupāṇi'*. According to him the "*kuśa* grasses without the root" which are spread around the sacrificial alter for *Soma* or to keep the vessel of *Soma*. This interpretation is also supported by *Śatapatha Brāhmaṇa*. But Dayananda has the opinion that *vṛktavarhiṣaḥ* is a synonym to *Ṛtvik* and gives the reference of *Nighaṇtu* (3.18)[180]. From this passage of *Nighantu* it is clear that *vṛktavarhiṣaḥ* is one of the eight synonyms of *Ṛtvik*. But the meaning made by Sayana is seems ambiguous as he has not referred any source to the same meaning. In this case interpretation made by Dayananda serves the purpose with lexical references, whereas Sayana explained the compound only on the basis of *Mîmāṁsā* tradition (probably) which is closely associated with the sacrificial system as it is supported by *Śatapatha Brāhmaṇa*. However, Kapali Sastri interpreted it in different way and says - *vṛktam varjitam anupayuktam varjanîyḥ apāvanair-vā vastubhiriti//* His explanation seems closer to Sayana, that root-less Kuśa may have resemblance to the things deprived of unwanted parts as explained by Kapali Sastri. Both the interpretations have similar intent to get Soma, which is most purified and deprived of unwanted substance. Skanda and Venkata have similar idea to the interpretation of Sayana.

III. *Rudravartinî*- The word *rudravartinî* (at Rv.1.3.3)[181] is another adjective to *Aśvinau*. Sayana has interpreted *rudrāṇām* or *śatrurodanakāriṇam*. The deities who are cause of enemy's cry. Venkata Madhava indirectly supports the same concept, at the same time Skanda has interpreted the same with different idea. To him Aśvins made them available to the sound or where ever sound present or where ever sound like cry is present, *Aśvinau* approach them for their rescue etc. Dayananda has accepted a new meaning of the word *rudra* as *Prana* and explained them as the *prāṇamārga* and refers *Nighantu*, however, the gross meaning made by Dayananda seems cloudy. In this context Sayana and Skanda have similar concept whereas Kapali Sastri , Dayananda and

---

178 *agnimîle purohitam yajñasya devamṛtvijam/hotaram ratnadhātamam//RV.1.1.1*
179 *dasrā yuvākavaḥ sutā nāsatyā bṛktavarhiṣaḥ/āyātam rudravartanî*
180 *bharataḥ/kuravaḥ/vādhataḥ/ vṛktabarhiṣaḥ/yatasrucaḥ/marutaḥ/sabādhaḥ/devayava iti ṛtijām(devayava ityaṣṭāvṛtviṅgāmāṇi).*
181 *dasrā yubakavaḥ sutā nāsatyā vṛktavarhiṣaḥ/ āyātam rudravartanî//*

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

Venkata have independent ideas. Kapali Sastri explained it as whose faith is like taht of Rudra with these explanations this compaound becomes more ambiguous and confusing.

IV. *Subhagān* - Sayana explains the word *subhagān*(at Rv.1.4.6)[182]as *subhagān dhanopetān* while Dayananda described it differently with a reference of *Nighantu* (Nigh-2.10) and explained *sobhana-bhago vidhyaiśvayayogo yeṣām tān/bhaga iti dhananāmasu paṭhitam.* Both the interpreters accepted the lexical meaning on the basis of *Nighantu* (Nigh-2.10).

V. *Indra* - We can see the difference of opinions regarding the word *Indra* as the Vedic deity *Indra*. While commentators like Kapali Sastri, Sayana, Skanda and Vekata Madhava accepted the word as Vedic deity named Indra at the same time Dayananda described it *parameśvaraḥ karuṇāmayaḥ*. Dayananda has simply explained the characteristic feature of the deity which is applicable to any Vedic deity but has not forgotten to take the help of etymologies made in Nirukta.

VI. *Rāyaḥ* - In the Mantra (RV.1.4.10)[183] commentators like Kapali Sastri, Sayana, Skanda and Vekata Madhava described *rāyaḥ* as *dhanaḥ* while Dayananda interpreted it in different meanings like *vidyā-suvarṇādidhanasya-rāya iti dhananāmasu paṭhitam*. He has also accepted two aspects as *vidyā* (knowledge) and *suvarṇa* (Gold). In his interpretation Dayananda gives more importance to the synonym *vidyā* or knowledge.

VII. *Surupakṛtnum* - When Sayana made commentary of the Mantra RV.1.4.1 he explained the word *surupakṛtnum* as *supāraḥ susṭhu karmaṇaḥ pūrayitā* and Venkata Madhava says *sobhanapuraṇaḥ*, Skanda described as *susṭhu pālayitā* similarly Dayananda says *sarvakāmānām suṣṭhu pūrtikaraḥ* or the best fulfiller of all desires. Here we can't see any difference among the scholars however the words used by the commentators are slightly different.

VIII. *Indramabhipragāyata* - The compound *indramabhipragāyata* is a part of the mantra (RV.1.5.1) which has been interpreted by scholars as Oh, friend (sacrificers) prays *Indra* etc. Dayanda clarified it separately that *Indra-parameśvara vidyudādiyuktam vāyu vā* (Nir.5.4). In the interpretation of Dayananda, we can see new implementation (feature based) on the basis of Nighantu again. From his interpretation ambiguity comes whether deity of the mantra is *Indra* or *Vayu*. It is notable that *Indra* and *Vayu* are considered as same in Nirukta in the context of *tisraḥ eva devatāḥ*. But in other cases, he has explained *Indra* as the deity of prosperity which is also supported by the Nirukta. Lac of uniformity is the greatest problem of the commentary made by Dayananda.

IX.*Hari* - From another mantra (RV.1.6.2)[184]the word *hari* has been taken for analysis and discussion. This word is interpreted by Sayana as the horses which are attached to the chariot of *Indra*, Venkata Madhava and Kapali Sastri have similar opinion. With the words *yasmin avasthite*, Skanda differs to Sayana, he has interpreted it as battle whereas Dayananda explains it as *haraṇaśîlau valaparākramauprakāśakarṣaṇākhyausva harî indrasyetyādiṣṭopayojananāmasu paṭhitam* (*Nighantu*.1.17). To him *hari* is the synonym of *Indra* as he is the stiller. Probably he is the stiller of enemy's properties and happiness.

X. *Sutapābne suta eme sucayo yanti vitaye* - This mantra (*sutapābne sutā eme sucayo yanti vîtaye/somāso dadhyāśiraḥ/*(RV.1.5.5) can be reproduced in the following order *sutapābne indrāy pitaye somaḥ yanti*. The Soma purified and prepared at sacrifice are for the satisfaction of *Indra*. There is one adjective to *Indra –sutapābne.* Except Dayananda all other commentaries are unanimous that "*Indra* who is drinker of purified *Soma*. Whereas, Dayananda has a little different

---

[182] *uta naḥ subhagān arirvoceyurdasma kruṣṭayaḥ/syāmedindrasya śarmaṇi//*
[183]*yo rāyo vanirmaḥāntsupāraḥ sunvataḥ sakhā/tasmā indrāya gāyata//*
[184] *indreṇa saṁ hi dṛkṣase saṁjagmāno avibhyuṣā/mandū samānavarcaṣā//*

understanding - *abhi sūyanta utpadyanta uttamāvyavahārā yeṣu te//* (*Nighantu* 5.5) *soma iti padanāmaṣu paṭhitam*//etc.

Conclusion

After thorough discussion of the above examples, it is clear that when all other commentators have not referred Nirukta or *Nighantu* very frequently, Dayananda given utmost importance to the references of Nirukta and *Nighantu*. As a refuter of *Mîmāmsā* and ādhiyājñika form of interpretation Dayananda always traced on the factual interpretation based on the available lexicons and Gramamatik standards.In the course of his interpretation sometimes it seems very ambiguous in some other cases the lexical alternatives given by Dayanada seems very logical.

- The Vedic interpreters consulted here are –
  - Yaska of 6th Century BC (Nirukta)
  - Skanda of 8th century AD
  - Venkata of 12th Century AD
  - Sayana of 14th Century AD
  - Dayananda of 19th Century AD
  - T.V. Kapalisahastri of 20th Century AD
- In course of time, changes in interpretations were taken place.
- Skanda in his interpretation seems very much dependant on Ritualistic Literatures, Grammar and Lexicons, particularly on *Nighantu*.
- Veṅkata Madhava, the most economic interpreter goes with lexical meaning but not much associated with the Nirukta or *Nighantu*. But we can see the influence of *Brāhmaṇa* literature and sacrificial tradition in his commentary.
- Sayana, depended on Nighantu, Nirukta, Ritual literatures as well as on Purāṇas and sacrificial tradition.
- Dayananda is well dependant on Nighantu, Nirukta and Grammar.
- T.V. Kapali Sastry is depended on the commentaries available to him and tried to think in different angel, that is philosophic in nature.
- Interpretations available up to 14th century A.D. are not much elastic in character. In these interpretations we can observe maximum importance has given to ritualistic trend and available word meaning whichever is instantly available to the word.
- Post 14th century A.D. interpreters are elastic in nature. They have excellent efficiency regarding the extension and expansion of the fundamental word meanings.
- Skanda, Sayana, Venkata in maximum cases goes with *Abhidhā* (the instant meaning) whereas Dayananda goes with extended meaning and tried to establish his explanation through instances or references from *Nighantu* and Grammar.
- In many cases it is observed that the derivation of compounded words differs a lot between Sayana and Dayananda.
- It is interesting that Sayana, Skanda and Dayananda have very good faith on Nighantu, but in practice when Sayana and Skanda accepts one meaning on the basis of Nighantu, Dayananda accepts another meaning referred in Nighantu.

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

- Sayana, Skanda, Venkata, Dayananda are believers of sacrificial context but there is a great contradiction on identification of deity.
- Older tradition in maximum cases identifies the deities instantly and interpreted 'the deity of this name' but the younger generation has no support to the early theory.
- Dayananda always gives importance on the post-mortem of the word. He gives importance to finding of the characteristic features of the deities and trying to equalise him with the supreme.
- The difference between the two segments of interpreters is to move around the establishment of Monotheism and Henotheism.
- Older generation is not argumentative, they are dependent on tradition.
- The younger generation is argumentative and believes on conceptuality.
- Contextuality before Dayananda is to defend the western attacks on our religious thought system.
- T.V.Kapali Satry from the Aurobindo trend has an impression that, Vedas are not literature like anything, they have philosophy and it is property of intellectuals, so dimension of his interpretation is very much new and innovative.
- Dayananda is in favour of generalization of messages of Vedas with logical reasoning.
- Other interpreters are not much influenced by the environmental constraints. These interpretations in most of the cases have influenced by the tradition, newness was unacceptable to them.
- Dayananda and Kapali Sastry are openers of newness in Vedic thoughts.
- It is observed that interpretation of Vedas is always dependant on factors like

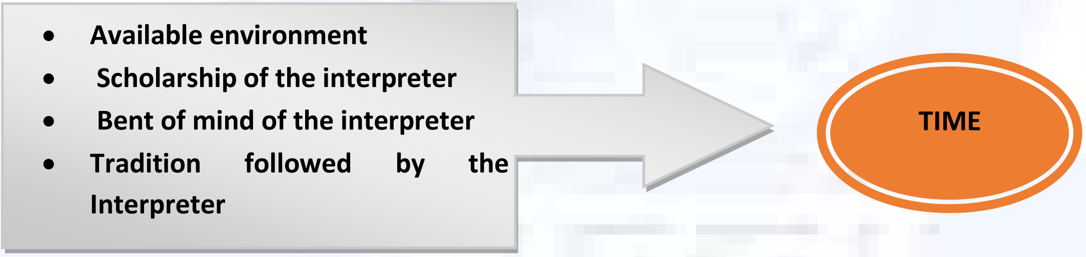

BIBLIOGRAPHY

- *Nirukta, ed.Lakshman Sarup,* Motilal Banarasidas,Varanasi,1984
- *Rigveda Samhita (With Dayananda Commentary*) Vaidika Pustakalaya, Dayananda Asram, Kesarganj, RaJSTHAN,2050 VE
- *Rigveda Samhita (With Satvalear Commentary*) Swaddhyaya Mandal, Paredi, 2023 Vikram Era (VE)
- *Rigveda Samhita* (With Skanda Swami Commentary) ed.C.Kunhanraja, Madrass University Sanskrit Series no -8,1935
- *Rigveda Samhita* (With T.V.Kapali Sastri Commentary)Siddhanjkana-I, Pipti publications, Sri aurovindo Ashrama,Pondichery,1983
- *Rigveda Samhita* (With Venkata Madhava Commentary) ed.C.Kunhanraja, Adyar Library,1939
- Rigveda Samhita, ed.with Sayana Commentary by F.max-Muller in 6 Vols, London,1862-74
- *Rigveda Samhita*, ed.with Sayana Commentary by Ram Govinda Trivedi,Chaukhamba Vidya Bhavana, Varanasi,2003

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

सम्प्रदानसंज्ञाविचारः

Dr. G.S.V. Dattatreya Murthy
Assistant Professor & Head,
Department of Sanskrit & Indian Culture SCSVMV (Deemed to be University),
Enathur, Kanchipuram - 631561

SID- 377392669

Received on-11/15/2020 18:00:18 | **Accepted on-** 26th January, 2021

प्रमुखशब्दाः-सम्प्रदानसंज्ञा, विप्राय गां ददाति, शेषित्वम्, शेषत्वम्, अन्वर्थसंज्ञा, पत्ये शेते, अनिराकर्तृ, अनुमन्तृ, यं सः, अभि, प्र, निरूपकत्वम्, स्वत्वम्, प्रतियोगित्वम्

शोधसारः

कारकाणि षट्। षड्सुकारकेषु सम्प्रदानमपि अन्यतमं भवति। संज्ञासूत्रमिदम्। अनेन सूत्रेण सम्प्रदानसंज्ञा विधीयते। लघ्वर्थं संज्ञाकरणम्। संज्ञा नाम यतो न लघीयः। सम्प्रदानमिति महासंज्ञाकरणात् अन्वर्थसंज्ञा विज्ञायते। सम्यक् प्रदीयते अस्मै इति सम्प्रदानम्। एवञ्च यत्र पुनः अपुनर्ग्रहणाय दीयते तत्रैव दानक्रियाकर्मणा सम्बन्धुमिष्टस्य अनेन सम्प्रदानसंज्ञा विधीयते। उदा-विप्राय गां ददाति। एतत्सर्वं वृत्तिकारमतानुरोधेन। भाष्यकारमते अन्वर्थत्वं नस्त्यस्याः। खण्डिकोपाध्यायः शिष्याय चपेटां ददाती ति वाक्यं महाभाष्ये दरीदृश्यते। तत्र शिष्याय इत्यत्र चतुर्थिविभक्तिः । सम्प्रदानस्यान्वर्थत्वाङ्गीकारे शिष्याय इत्यत्र चतुर्थ्या न भाव्यम्। तस्मात् नास्याः अन्वर्थत्वम्। अतः क्रियामात्रकर्मसम्बन्धाय क्रियायामुद्धेश्यं यत् कारकं तत् सम्प्रदानमिति शाब्दिकसिद्धान्तः। यथा ब्राह्मणाय गां ददाति इत्यत्र दानक्रियाकर्मीभूतगोसम्बन्धाय ब्राह्मणे दानक्रियायामुद्देश्यः। विचारपत्रेऽस्मिन् वृत्तिकारमतम्, भूषणकारादीनां च मतं सम्यगनुनिशम्य सम्प्रादानविषये विद्यमानान् मतभेदान् सुष्ठु परिशील्य, क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति वार्तिकमनावश्यकमिति सिद्धान्तप्रदर्शनमत्र यथामति कृतम्। अत्र युक्तायुक्तत्वं उत्पश्यन्तु पण्डिताः

ABSTRACT

Kaaraka prakaranam is considered as the main part of Paninian grammar. According to Patanjali, Kaaraka is that which generates the action. There are six karakas. Karta, karma, karana, sampradana, apadana and adhikaranam.Karta is that which performs the action independently. Karma kaaraka is that which is the most desired thing performed by karta. The thing which is more useful to perform the action of karta is called karana. Many instruments will help karta to accomplish the action among those, after the completion of the activity of the instrument, karta can complete his action successfully is called karana. Sampradana is that whom the karta approaches with the karma. राजा विप्राय गां ददाति In this instance, the Dana kriya is performed by the king and the cow is karma through the Karma I.e.cow I.e.cow king wants to approach vipra. Hence vipra can be designated as sampradana. If there is a separation the one which is stable or unstable and which has no action of separation is called apadana. Adhikaranam is that which is the base of an activity. the substratum/base of the the activity of either karta or karma and it is being denoted by either Karta or karma then that substratum/base is designated as adhikaranam.

Since 2010

कर्मणा यमभिप्रैति स संप्रदानम्[185] इति सूत्रेण संप्रदानसंज्ञा विहिता। कर्मणा इति तृतीयान्तम्। कर्मणा इति करणे तृतीया। अभिप्रैतीति तिङन्तं पदम्। सः इति प्रथमान्तम्। सम्प्रदानमित्यपि प्रथमान्तम्। सूत्रे ऽस्मिन् कारके इत्यधिक्रियते। अधिकारो नाम **स्वस्थले लक्ष्यसंस्कारकवाक्यार्थबोधाजनकत्वे सति (प्रयोजनाभावेपि) स्वोत्तरवर्तिविधिशास्त्रैकवाक्यतापन्नत्वम्।** तथा च दानस्य कर्मणा करणभूतेन यमभिप्रैति स सम्प्रदानसंज्ञं स्यादिति सूत्रार्थः फलति। दानक्रिया कर्मणा कर्ता यम् अभिप्रैति = इच्छति = सम्बध्नाति = ईप्सति वा तत्कारकं सम्प्रदानं स्यादिति निगूढार्थः। सूत्रे यमभिप्रैती त्युक्त्या यमिति निर्दिष्टस्य शेषित्वं =उद्देश्यत्वं, कर्मणेति निर्दिष्टस्य शेषत्वं =अप्रधानत्वरूपं, च प्रतीयते। यथा- **स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले**[186] इति सूत्रे कर्त्रभिप्राये क्रियाफले इत्युक्त्या कर्तुः शेषित्वं, क्रियाफलस्य शेषत्वं च प्रतीयते। प्रकृते यस्य शेषित्वं तस्यैव सम्प्रदानत्वमिति कृत्वा **अजां ग्रामं नयती** त्यत्र अजायाः ग्रामं प्रति अशेषत्वात् तन्निरूपितशेषित्वस्य ग्रामे अभावान्न तस्य तत्संज्ञा। अजां ग्रामं नयती त्यत्र ग्रामः अजासम्बद्धो भवत्विति नेतुः नेच्छा, किं तु अजा ग्रामसम्बद्धा भवत्विति। यदा तु ग्रामः अजासंयुक्तो भवत्विति उद्देशेन अजानयनं स्यात्, तदा ग्रामस्य सम्पदानत्वमिष्टमेव -अजां ग्रामाय नयतीति। अजापुरीषसम्बन्धेनाधिकसस्यसम्पत्या विलक्षणशोभाजननाय ग्राममजासंयुक्तं जनः करोति। स्पष्टं चेदं सर्वं भूषणसारादिषु[187]। हरिदीक्षतस्तु **अजां ग्रामं नयती** त्यत्र परत्वाकर्मत्वेन सम्प्रदानत्वं बाध्यते। अन्यथा अजाग्रामसम्बद्धा भवत्वित्यभिप्रायेण अजानयने तस्याः सम्प्रदानत्वापत्तिरित्यभिप्रैति। अमुमेवाभिप्रायं मनसि निधाय **कर्मसंज्ञया बाधान्न दोष इति**[188] **तत्वम्** इति प्रौढमनोरमाव्याख्याने प्रोक्तम्।

विप्राय गां ददाति इत्युदाहरणम्। राजा विप्राय गां ददातीति वाक्यार्थः।स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकपरस्वत्वानुकूलरूपेच्छा क्रिया अत्र वर्तते। तस्याः क्रियायाः फलाश्रयत्वेन कर्म गौः। अभिसम्बन्धक्रियायां प्रति कर्मणः करणत्वम्। तथा च दानक्रियाकर्मणा गवा कर्ता यं विप्रमिच्छति तस्य विप्रस्य सम्प्रदानसंज्ञा सिध्यति। तेन **चतुर्थी सम्प्रदाने**[189] इति सूत्रेण चतुर्थीविभक्तिः। विप्राय गां ददाती त्यत्र एकस्मिन् काले गवादेः कर्मत्वं करणत्वं कथमिति नाशङ्कनीयम्। कुत इति चेत् क्रियाभेदस्य सत्वात्। दानक्रियायां गौः कर्म, अभिप्रयणक्रियायां करणम्। दीयमानया हि गवा राजा विप्रमभिप्रैति। तथा च विप्राय गां ददाती त्यत्र विप्राभिन्नसम्प्रदाननिष्ठोद्देश्यतानिरूपकं दानमिति बोधः।

अत्र संशयः

अध्याहारेणापि सर्वनमद्वयार्थस्य लाभात् सूत्रे **“यं ,सः”** इत्यनयोर्ग्रहणं किमर्थमिति।

समाधानम्

अभिप्रयतः कर्तुः संप्रदानसंज्ञावारणार्थं तद्ग्रहणम्। तथाहि- अभिप्रैतीति कर्तृतिङ्श्रुत्या **“यः सः”** इत्येव लभ्यते। तथा च तदर्थसंबन्धेनैव निराकाङ्क्षतया यं सः इत्याध्याहारो नोपपद्यते। तथा च कर्मणा यो अभिप्रैति स संप्रदानमिति सूत्रार्थलाभात् कर्तुरेव संप्रदानत्वं स्यात्। ततश्च उपाध्यायाय शिष्येण गौर्दीयते इत्यर्थे शिष्याय उपाध्यायस्य गौर्दीयते इति प्रयोगापत्तिः। अतः सूत्रे **“यं ,स”** ग्रहणम्। तेन अभिप्रयतः संप्रदानत्वं निवार्यते।

पुनः संशयः

185 .1-4-32(अष्टाध्यायी)
186 .1-3-72(अष्टाध्यायी)
187 .वैयाकरणभूषणसारः-सुबर्थनिर्णयः, पृ-375,380,381,
188 .प्रैढमनोरमा, कारकप्रकरणम्, पृ-905
189 .2-3-13(अष्टाध्यायी)

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

सूत्रे उपसर्गद्वयग्रहणं किमर्थमिति , तदभावेपि कर्मणा यमेति = गच्छति प्राप्नोति संबध्नातीत्यर्थो लभ्यते, अभिप्रैतीत्युक्तेपि पूर्वोक्तार्थ एव खलु इति।

समाधिः

संनिहितसंप्रदानस्थले दानस्य तत्काले विप्रसंतोषरूपदृष्टफलवत्वात् तत्रैव संप्रदानत्वं स्यात्, असंनिहित संप्रदानस्थले विप्राय गां ददातीति न स्यात्। अतः सूत्रे यम्, अभि इति उपसर्गद्वयग्रहणम्। अभिराभिमुख्ये वर्तते, प्रशब्दः आदिकर्मणि। तथा च कर्मणा करणभूतेन कर्ता क्रियारम्भे यमुद्दिशति स संप्रदानमिति सूत्रार्थो लभ्यते। स च उद्देशः संनिहितासंनिहिते च सर्वत्रास्तीति विप्राय गां ददाति, अदात्, दास्यतीति प्रयोगाः सिध्यन्तीति सर्वंसुस्थम्।

संप्रदानभेदाः

अनिराकरणात्कर्तुस्त्यागाङ्गं कर्मणेप्सितम्।

प्रेरणानुमतिभ्यां लभते संप्रदानताम् [190] ।।इति।

कर्तुः त्यागस्य निमित्तं कर्मणा ईप्सितं च यद्वस्तु अनिराकरणात् प्रेरणयानुमत्या च कारकं सत् तद्विशेषं संप्रदानत्वं लभते इति कारिकाशयः। इदं सम्पदानं अनिराकर्तृ, प्रेरयितृ, अनुमन्तृ इति त्रिधा वर्तते।

1.अनिराकर्तृ-------- देवता------सूर्याय अर्घ्यं ददाति । नात्र सूर्यः प्रार्थयते, नानुमन्यते, नापि निराकरोति।

2.प्रेरयितृ----------- याचकः----विप्राय गां ददातीति। विप्रेण मह्यं गां देहीति पूर्वं प्रवर्तितो राजा तस्मै गां ददाति। अत्र पूर्वव्यापारप्रेरकत्वं विप्रे।

3.अनुमन्तृ---------उपाध्यायाय गां ददाति। उपाध्यायो न प्रेरयति, न निराकरोति, अपि तु एवमस्त्विति अनुमन्यते।

अत्र काशिकाकारमतम्[191]

लघ्वर्थं संज्ञाकरणम, संज्ञा नाम यतो न लघीयः महत्याः एतस्याः सम्प्रदानसंज्ञायाः प्रयोजनम् अन्वर्थत्वाय। तथाच सम्यक् प्रदीयते अस्मै तत्सम्प्रदानमिति। दानक्रिया कर्मणा कर्ता यमभिप्रैति तत् कारकं सम्प्रदानमिति अर्थः। दानञ्च स्वस्वत्वनिवृत्तिपूर्वकपरस्वत्वापादनम्। अत एव **रजकाय वस्त्रं ददाति** त्यत्र न सम्प्रदानसंज्ञा, किन्तु रजकस्य वस्त्रं ददातीत्येव इति। वस्तुतस्तु सूक्ष्मदृष्ट्या परिशील्यमाने तत्र स्वत्ववृत्तेरभावेपि **न शूद्राय मतिं दद्यात्, खण्डिकोपाध्यायः शिष्याय चपेटां ददाती**ति भाष्यकारीयप्रयोगदर्शनेन तस्याः अन्वर्थत्वाश्रयणमयुक्तम्। **रजकस्य वस्त्रं ददातीति** तु शेषत्वविवक्षयापि सिध्यति। अत एव पत्ये शेते, ग्रामाय गच्छतीति प्रयोगाणां सम्प्रदानचतुर्थ्या निर्वाहं प्रदर्श्य क्रियाग्रहणं कर्तव्यम् इति वार्तिकस्य, गत्यर्थकर्मणी त्यादि सूत्रस्य च प्रत्याख्यानं भगवतः सङ्गच्छते।

क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति वार्तिकविचारः

पत्ये शेते, श्राद्धाय निगर्हते, युद्धाय सन्नह्यते इत्यादौ शीङादिधातूनामकर्मकत्वेन कर्मणः अभावात् प्रकृतसूत्रेण संप्रदानत्वं न सिध्यति, तथा चैते प्रयोगाः कथं सिध्येयुरिति शङ्कां मनसि निधाय, पूर्वोक्तस्थलेषु सम्पदानत्वासम्पादनार्थं क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति **क्रियया यमभिप्रैति सोपि सम्प्रदानम्**[192] वार्तिकमारब्धं श्रीमता कात्ययनमहर्षिणा। तथा च शयनादिक्रियाभिः पत्यादीनामभिप्रेयमाणत्वात् तेषां सम्प्रदानत्वं सिध्यतीति वार्तिकस्याशयः।

महाभाष्यकाराणामाशयः

---

190 .वाक्यपदीये साधनसमुद्देशे-129 कारिका

191 .काशिकावृत्तिः, प्रथमभागः, पृ-546

192 .सिद्धान्तकौमुदी, प्रथमभागः,पृ-644

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

वस्तुतस्तु सम्प्रदानसंज्ञाविधायकसूत्रस्थ क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति वार्तिकं भगवता भाष्यकारेण प्रत्याख्यतम्। तथा हि- [193]क्रियाग्रहणमपि कर्तव्यम्। इहापि यथा स्यात् = श्राद्धाय निगर्हते, युद्धाय सन्नह्यते, पत्ये शेते इति तत्तर्हि वक्तव्यम् ? न वक्तव्यम् ? कथम् ? क्रियां हि लोके कर्मेत्युपचरन्ति- कां क्रियां करिष्यसि ? किं कर्म करिष्यसि ? एवमपि कर्तव्यम्- कृत्रिमाकृत्रिमयोः कृत्रिमे कार्यसम्प्रत्ययो भवति। क्रियापि कृत्रिमं कर्म। न सिध्यति। कर्तुरीप्सिततमं कर्मेत्युच्यते। कथञ्च नाम क्रियया क्रियेप्सिततमा भवति। कया क्रियया ? सन्दर्शनक्रियया वा प्रार्थयतिक्रियया वाध्यवस्यतिक्रियया वा। इह एष मनुष्यः प्रेक्षापूर्वकारी = विचारपूर्वं क्रियाकर्ता, भवति स बुध्या = बुद्धिवृत्या, तावत् =प्रथमं, कञ्चिदर्थं = फलरूपमर्थं, सम्पश्यति, सन्दृष्टे प्रार्थना, प्रार्थनायामध्यवसायः, अध्यवसाये आरम्भः, आरम्भे निर्वृत्तिः, निर्वृत्तौ फलावाप्तिः। एवं क्रियापि कृत्रिमं कर्मे त्युक्तम्। तथा च पूर्वोक्तरीत्या क्रियाया अपि क्रिययेप्सिततमत्वात् पत्ये शेते इत्यादौ प्रकृतसूत्रेणैव सम्प्रदानत्वे सिद्धे तत्र सम्प्रदानत्वसिध्यर्थं क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति वार्तिकमनावश्यकमिति भाष्यकाराणामाशयः।**वार्तिकारम्भपक्षे--** पतिसम्प्रदावकं शयनम्[194] इति बोधः, **वार्तिकप्रत्याख्यनपक्षे--** पतिसम्प्रदानकमारम्भकर्मभूतं पत्नीकर्तृकं शयनम्[195] इति बोधः। अतः क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति वार्तिकं श्रीमता भाष्यकृता प्रत्याख्यातमित्येव शाब्दिकसिद्धान्तः। अत एव लघुमञ्जूषायां क्रियया यमभिप्रैति स सम्प्रदान **मिति** वार्तिककारमते तु इत्यत्र अरुचिबोधकः **तु**शब्दः प्रयुक्तः। स्पष्टं चेदं सर्वं लघुमञ्जूषायां[196]

संदर्शनं प्रार्थनायां व्यवसाये त्वनन्तरा।
व्यवसायस्तथारम्भे साधनत्वाय कल्पते[197]।। इत्यादि ग्रन्थेन।

सम्प्रादानविषये मतभेदाः

धात्वर्थकर्मयत्सम्बन्धितया अभिप्रेतं तत्सम्प्रदानम् इति वदन्ति न्यायवार्तिककराः[198]। तदुक्तम्- **यद्वस्तु कर्मणा प्राप्तुमभिप्रेतं तत् सम्प्रदानम्।** वृक्षायोदकमासिञ्चति इत्यत्र आसिच्यमानमुदकं कर्म, तेन कर्मणा उदकेन वृक्षं प्राप्नोतीति वृक्षः सम्प्रदानं भवति इति। सम्प्रदानमिति नान्वर्था संज्ञेत्यपि तेषामाशयः। उक्तञ्च न्यायवार्तिकटीकायां वाचस्पतिमिश्रैः[199] **पाणिनीयलक्षणानुरोधेन लौकिकप्रयोगानुरोधाच्च सम्प्रदानमिति नेयमन्वर्था संज्ञेति** भावः। **भवानन्दस्तु**[200] समप्रदानसंज्ञायाः अन्वर्थत्वं स्वीकृत्य कर्मणा दानकर्मणा, यमभिप्रैति स्वत्वभागित्वेनोद्देश्यीकरोति, स सम्प्रदानमिति व्याख्याय वृक्षायोदकमासिञ्चती त्यत्र वृक्षादेः गौणसम्प्रदानतां निरूपयामास। **जगदीशोपि**[201] भवानन्दमतमेव अनुसरति सम्प्रदानलक्षणे। परन्तु चतुर्थ्यर्थतया प्रतियोगित्वं निरूपितत्वं वा स्वीचकार। **गदाधरोपि** मुख्यभाक्तसाधारणतया क्रियाकर्मसम्बन्धितया कर्त्राभिप्रेतत्वं क्रियजन्यफलसम्बन्धितयेन्यत्वम्। चतुर्थ्यर्थस्तु निरूपितत्वमित्युक्त्वा जगदीशमेवानुचकार। **गोकुलनाथस्तु**[202]

---

193 .पातञ्जलमहाभाष्यम्-पृ-370
194 .वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा-पृ-1267
195 . .वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा-पृ-1267
196 वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा-पृ-1267
197. वाक्यपदीये साधनसमुद्देशे-17 कारिका
198 .न्यायवार्तिकम्, पृ-196
199 .न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका-पृ-254
200 .कारकचक्रम्, पृ-55-61
201 .शब्दशक्तिप्रकाशिका, पृ-156
202 .पदवाक्यरत्नाकरः, पृ-702

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

निरूपकत्वं स्वत्वं वा चतुर्थ्यर्थतया स्वीचकार। **खण्डदेवस्तु**[203] सर्वत्र मुख्यसम्प्रदानतां नाङ्गीकरोति। वृक्षादीनां भाक्तमेव सम्प्रदानमिति तस्याशयः।

वैयाकरणमतनिष्कर्षः

कर्मणा यम् इति निर्देशात् कर्मकारकं प्रति सम्प्रदानस्य ईप्सितत्वं लभ्यते। तेन फलभागित्वेन ईप्सितत्वं सम्प्रदानत्वमिति सिध्यति। तथा च क्रियाकर्मसम्बन्धजन्यफलभागित्वेनेच्छाविषयत्वं वा सम्प्रदानत्वमिति सिध्यति। वृत्तिकारमते इयं अन्वर्थसंज्ञा। भाष्यमते तु न तथा। सम्प्रदानं त्रिधा विभक्तं वाक्यपदीयकारेण। पत्ये शेते इत्यादौ सूत्रादेव सम्प्रदानत्वसिध्या क्रियाग्रहणं कर्तव्यमिति वार्तिकं नारम्भणीयमेव। तथा च विप्राय गां ददाती त्यत्र विप्राभिन्नसम्प्रदाननिष्ठोद्देश्यतानिरूपकं दानमिति बोधः।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. प्रौढमनोरमा(शब्दरत्नसहिता) चौखाम्बा, वारणासी, 1946.
2. लघुशब्देन्दुशेखरः(गुरुप्रसादशेषसहितः), Andhra University, Visakhapatnam, 1941.
3. वैयाकरणभूषणसारः(तत्वदर्शिनीसहितः) S.V. Vedic University, Tirupati.
4. वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा, चौखाम्बा, वारणासी, 1919.
5. भाट्टरहस्यम्(खण्डदेवभावप्रकाशसहितम्) Ministry of Education, GOVT of India
6. व्याकरणमहाभाष्यम्(प्रदीपोद्योतसहितम्) चौखाम्बा, वारणासी 1938.
7. न्यायवार्तिकम्-वारणासी, 1936.
8. पदवाक्यरत्नाकरः, मूलमात्रम्, शास्त्रमुक्तावली, काञ्चीपुरम्
9. भाट्टचिन्तामणिः, तर्कपादः, समयूखः, चौखाम्बा 1934.
10. कारकचक्रम्, चौखाम्बा, वारणासी, 1942.
11. शब्दशक्तिप्रकाशिका, सटीका,चौखाम्बा, 1936.
12. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, मोतीलालबनारसदास्, वारणासी.

[203] .भाट्टरहस्यम्, चतुर्थीविचारे-पृ-106

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

The Impact of the Upaniṣad: A Formation of Rabindranath's Mind

Sri Gopal Acharjaya
HOD & Assistant Professor,
Dpt. of Sanskrit, SCBC College, P.O & Dist Murshidabad, W.B, India

SID- 373033486

Received on-11/1/2020 10:04:58 | **Accepted on-** 26th January, 2021

Keywords- *Upaniṣad* in Rabindranath's mind, *brāhmavāda, ānandavāda,* Upaniṣad mythology and development of ideas in Rabindra Sahitya.

ABSTRACT

Paramapuruṣārthasvarūpa Brahmavidyā i.e., *śhreya* and *Abidyārūpa Karma* i.e., *Preya-* in both of these sciences, Indian sages have adopted *śhreyarūpa Brahmavidyā* i.e., *Parāvidyā.* This statement of the *Upaniṣad* has attracted the respect of various scholars. The world-renowned Rabindranath is no exception. Rabindranath inherited the Sanskrit reverence of his father Maharshi Debendranath. From an early age he studied the *Upaniṣad* s with great pleasure and tried to understand its meaning. Therefore, from an early age the study of *Mantra-Brāhmaṇa-Upaniṣad* texts and the attempt to understand the meaning of *Upaniṣad* developed the philosophical thinking of Rabindranath. In every verse of this Upanishad thought, the coexistence of monotheism with Upanishadism in a separate version of the universe as the god of life has been revealed in every phase of his life. As a result, the taste of Brahmanism has taken a colourful form in Rabindra Sahitya, especially in poetry and essays, due to the quality of his writing. In Rabindranath, various myths of various *Upaniṣad s* like *īśa-keno-kaṭha-praśna-muṇḍaka-māṇḍukya-taittirīya-chāndogya-vṛhadāraṇyaka- śvetāśvatara* , have been collected which is helpful in understanding the significance of *Upaniṣad* thought in the formation of Rabindra Mind. This research paper is a reflection of how the Upanishad ideology is reflected in the formation of Rabindranath's mind.

Introduction

Paramapuruṣārthasvarūpa Brahmavidyā i.e., *śhreya* and *Abidyārūpa Karma* i.e., *Preya-* in both of these sciences, Indian sages have adopted *śhreyarūpa Brahmavidyā* i.e., *Parāvidyā.* They have realized that the eternal welfare of man is not possible by mere ignorance. The *Upaniṣad* word is the part of the Vedic literature that reflects the thoughts of the sages. Upaniṣads is a wonderful creation of ancient mystics. The etymology of the word *Upaniṣad* in the application of the suffix kvip to the *upa-pūrbaka ni-pūrbak ṣad-dhātu* , applied in the sense of sub-proximity, uncertainty. In the *Upaniṣads*, it is the *trividhārtha* of *ṣad-dhātu* in terms of detail-motion-exhaustion. This *Upaniṣad* is indicative of independent thinking. The word *Upaniṣad* expresses joyful realization. It has been said-

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 Since 2010

"Tad vijñānena paripaśyanti dhīrā ānandarūpamamṛtaṃ yadvibhāti." [1]

This statement of the *Upaniṣad* has attracted the respect of various scholars. The world-renowned Rabindranath is no exception. So perhaps human life has ended in bliss for him.

The impact of the *Upaniṣad* in Rabindranath's mind: a theory of *brāhmavāda and ānandavāda*

In Sanskrit Rhetoric there is an ornament called *"Ananvaya"*. When the same substance is imagined as analogy and metaphor, then that ornament is said to be *"Ananvaya* "[2] Ornaments. In the same way Rabindranath is like Rabindranath. On the one hand he is a poet, philosopher, short story writer, play writer, novelist, on the other hand he is a lyricist, painter, critic and eminent academician. Incidentally, Rabindranath's love for Sanskrit made him respectful of Sanskrit. And that is why the literature or scriptures like *Mantra-Brāhmaṇa-Upaniṣad* of Vedic literature, *Manvādismṛtiśāstra, Rāmāyaṇa-Mahābhāratadi-Itihasapurāṇādi śāstra, Vedānta Philosophy* etc. have been brilliantly revealed in his all-encompassing genius. Rabindranath inherited the Sanskrit reverence of his father Maharshi Debendranath. From an early age he studied the *Upaniṣad* s with great pleasure and tried to understand its meaning. Inspired by the philosophical theory of the *Upaniṣad* s, Rabindranath's essays on *"śāntaṃ śivamadvaitaṃ", "Tatah Kiṃ", "Vṛkṣa Iva Stabdho Divi Titaṣṭhatyekah sanātanamenamahūrutādya syāt punarnavah" , "Tannaṣṭaṃ yanna dīyate" , "Udāracaritānāṃ" , "kākah kākah pikah pikah", "Dhruvāni tasya naśyanti"* etc. Rabindranath has made a special effort to present the philosophy of the *Upaniṣad* s in a new form.He has presented his aspirations -

" India is one of the world's civilized societies, as evidenced by its history. Feeling the one in the world and in one's own soul, to place that one in diversity, to discover it by knowledge, to establish it by action. This is what India is doing in the midst of various obstacles, misfortunes and misfortunes to be realized, to be realized by love and to be propagated by life." [3]

The basis of such an ideology is the perception developed in the *Upaniṣad*, by which the presence of great power in the universe - this idea was embodied in Rabindranath's *Upaniṣad* thinking. And the evolution of that Upanishad philosophy in a new form. He himself says -

" Many parts of the Upanishads in my childhood were memorized by repeated recitations. I could not accept everything with all my mind. There was respect, maybe there was no strength." [4]

This philosophical and spiritual thought of Rabindranath was enough. Brahmaism is the main melody of the Upanishads. So he noticed the impersonation of an omnipresent being in the world and established a loving relationship with him on the basis of sweet juice. With the help of intellect, he has tried to reconcile these two theories through his own theory of humanity. As a result, the "God of life" theory has emerged in Rabindranath's mind. Behind the development of this "God of life" theory is the influence of the poet's divine vision and the influence of reasoning in his own way. He took his lessons from nature. It was revealed to him that the same great being has the power to manifest itself in two different stages. One as an impersonal force in the whole world, the other as a personified lover. In this way, his ingenuity and inquisitive attitude towards the path of realization of the Upanishads in a way that motivates him to create an environment of coexistence of monotheism with the Upanishads.As a result, a similar idea of Brahmanism appeared in his poems and essays. In this context, his ideas have also been expressed -

" Looking back on those days, I think, unknowingly, I have followed in the footsteps of my Vedic ancestors, and I have been inspired by a glimpse of the distant sky of my country." [5]

"Nāhaṃ manye suvedeti no na vedeti veda ca
Yo nastadveda tadveda no vedeti Veda ca" [6]

Rabindranath, in his essay " *Upaniṣad* - *Brahma*", expresses the meaning of this mantra of the *Kenopaniṣad* in a fascinating way with the analogy of children and mothers. Just as a child knows its mother in its reformation, peace of hunger, cessation of fear and comfort, and as much as it tastes its own contentment and peace, so too we can know *Brahman* in this world, in our inner soul, and know that it cannot be ended even by knowing him. He has explored the word of the *Upaniṣad “**Om** "*. According to him -

"As far as we have known Brahman through sadhana, as we have been able to do it, it expresses everything in this ***Om*** word .... Just as the tone of music conveys an indescribability in the words of a song, so the full sound of ***Om*** impresses an indescribability." [7]

In the Ancient Indian tradition, *Brahman* was formless. Only with the help of this sound did the sages see the learned soul immersed in *Brahman* like the bondage of the arrow. The seeds of this idea of him have also been sown in the essay " *Upaniṣad* - *Brahma*". The closeness of Rabindranath to the philosophical thought of Brahmanism in the Upanishads can be gauged from the gist of the Upanishads mentioned in his essays. Therefore, the call of the poet for the purpose of self-consciousness is this *śvetāśvataropaniṣadīyavacana* -

" *śṛṇvantu viśve amṛtasya putr āh*
ā ye dhāmāni divyāni tasthuh
Vedāhametaṃ puruṣaṃ mahāntaṃ
ādityavarṇaṃ tamasah parastāt " [8]

In the sage's concept of the Upanishads, the form of blissful taste of *Brahman* has become manifest. Duality is required for the development of juice. The Supreme Being gets pleasure by realizing the juice. There is a detailed mention of this thought in the Tittiriya Upanishad - *"* He is the juice. He enjoys the juice.*"* [9] Not only the earth, but everything else on earth became honeyed with the touch of duet music. Then the joy, that joy seems to have no end. Break all the bonds of addiction and let everything end in nectar. Let it be said in the words of the poet -

“Madhuvātā ṛtāyate madhu kṣaranti sindhavah
Mādhvīrnah santoṣadhī.
Madhu naktaṃ utoṣaso madhumat pārthibaṃ rajah
Madhumānno vanaspatirmadhumāṃ astu sūryah.

The wind is carrying honey, the rivers are dripping honey. May all medicinal plants be honeyed, may the night be honeyed, may the dawn be honeyed, may the dust of the earth be honeyed, may the sun be honeyed. *"* [10]

Rabindranath has embraced this bliss of the *Upanisad* with all his heart. Surprisingly, his realization came through the trauma of great mourning. Rabindranath's voice is heard -

"I acknowledge that the bliss of bliss is in the Bhutanese jayantha and the blissful endeavor is *abhisaṃviśanti* - but this joy is not the joy of rejecting sorrow, but the joy of assimilating sorrow."[11]

He cannot realize the joy of *Brahman*. The origin of this philosophical thought of the poet is reflected in the article "Manushyattva" in the book of "Religion". Incidentally, the poet has also retrieved the sentence of *Muṇḍakopaniṣad* - "*Nāyamātmā valahīnena labhyah"* [12]

It was as if Rabindranath had tasted that joy. If not, why would he say -

"What joy, what joy, what joy / release day and night dance, stop dancing." [13]

Again it,

"The foundation is broken in the house
Get rid of me,
The game of happiness is no longer Roche

I got happiness. "[14]

And it is in this soul that he has realized the joy of this *Brahman*. And the idea of where this soul is also realized in poetry and writings. His example -

" On one side is knowledge and on the other side is ignorance, on the other side is theology and on the other side is family. The state of our soul is where these two have been resolved. " [15]

The sage of the Upanishad is also a poet, Rabindranath is also a poet. The thought of blissful enlightenment described in the Upanishad, has become more colourful due to the quality of Rabindranath's writing. Incidentally, the famous saying of *Muṇḍakopaniṣad* can be mentioned - "*Tad vijñānena paripaśyanti dhīrā anandarūpamamṛtaṃ yadvibhāti*."[204]* Rabindranath Tagore has revealed -

"It simply came to our notice then
The joy of waking up holding an idol;
Life is full of intense interest. "[16]

The words of *Vṛhadāraṇyakopaniṣad* "*Madhumat pārthivaṃ rajah madhu daurastu nah pitā."* Quotes from Rabindranath -

"This world is the dust of the honeyed honeyed earth
I took it to heart
This mantra,
The word of contentment is life. "[17]

The language of the *Upaniṣad* s seems to have echoed in the poet's face. From the analysis of the quotations and discussions of the *Upaniṣad* s in Rabindra literature, especially in prose, verse, and religious works, the significance of Upanishadism in the formation of Rabindranath is inferred. The translation or adaptation of the *Upaniṣad* s is noticeable somewhere in his writings. Rabindranath says in the article "Prarthana" in the book "Santiniketan" ----

" The *Upaniṣad* s are the vegetation of theology of India. It's not just beautiful shades, it's big and it's hard. Not only is there an abundance of perfection in it, but the austerity of austerities has gone up in it. " [18]

***Upaniṣad* mythology and development of ideas in Rabindra Sahitya**

How reverently Rabindranath looked at the *Upaniṣad* s, how the Upanishadism is intertwined with his soul, the aforesaid bears his identity. In Rabindranath, various myths of various *Upaniṣad s* like *īśa-keno-kaṭha-praśna-muṇḍaka-māṇḍukya-taittirīya-chāndogya-vṛhadāraṇyaka-śvetāśvatara* etc. have been collected. Rabindranath has fully explained the first myth of the *śuklayajurvedīya-vājasaneyī saṃhitopaniṣad* in various texts -

" *īśvāsyamidaṃ* sarva*ṃ yat kiñca jagatyāṃ jagat*
Tena tyaktena bhuñjīthā mā gṛdhah kasyasviddhanaṃ." [19]

Rabindranath translated this mantra in his essay "*Upaniṣad Brahma*". Rabindranath says in a moral exhortation there - " This is the mantra of worldly travel. You will see God everywhere, you will enjoy the pleasures given by God, you will not afflict others with greed." [20]

" *kurvanneveh karmāṇi jijīviṣecchataṃ samāh.*
evaṃ *tvayi nānyathetoaasti na karma lipyate nare* . " [21]

Taking the full or partial meaning of this mantra of *Iśopaniṣad*, Rabindranatha has presented his statement in " Upanishad Brahma ", "Dharma", "Santiniketan", "Manusher Dharma" etc. In his essay " Manuser dharma", he recalls the mantra-

---

* *Muṇḍakopaniṣad*, 2/2/7

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

"*Īśopaniṣad* therefore says, you have to save a hundred years, not if you do not do the work. Succeed to save a hundred years in action, in such a way that you can say 'soaahaṃ' with conviction and proof. *"* [22]

"andhaṃ tamah praviśanti yeaavidyāmupāsate.
tato bhūya iv ate tamo ya u vidyayāṃratāh
vidyāñcāvidyāñca yastad vedobhayaṃ saha
avidyayā mṛtyuṃ tīrtvā vidyayāmṛtamaśnute "[23]

Rabindranath has adopted these two *Iśopaniṣad* mantras in his two articles "Sanchay" and "Shikshar Milon". Rabindranath's *Upaniṣad* thinking has been praised in the philosophical discourses of the two mantras. In the essay " Manuṣer dharma ", Rabindranath says about the meaning of the mantra "*Sambhūtiñca vināśañca yastad Vedobhayaṃ saha*..."[24] etc. "The truth of man is complete by matching the infinite in the limit. The one who is infinite in the human being has to express it in the society within the limit. The infinite truth has to be made the real truth". [25]

"*hiraṇmayeṇa pātreṇa satyasyāpihitaṃ mukhaṃ*
*tattvaṃ pūṣannapāvṛṇu satyadharmā*ya dṛṣṭ*aye.*" [26]

In the poem "*Janmadine*" he recalls part of this myth-

" O Sabita, your best form
Cover up,
That oath appeared
Harry, I am past death in my soul. " [27]

Thus the remembrance of a part of the mantra reminds one of the significance of the Upanishads in Rabindranath. In the context of the discussion, the influence of *Isopaniṣad* as well as *Kenopaniṣad* is also noticeable in Rabindranath. In the first mantra of the *Kenopaniṣad*, which begins with the mantra "*Keneṣitaṃ patati praṣitaṃ manah* ..." [28] etc., the disciple is asking the guru about the nature of Paramatma. Rabindranath says in his essay "*prāṇa O prema*" in his book " *śāntiniketan*" - " *Kenopaniṣad* is asking - why *prāṇa* first *praitiyuktah* ? By whom *prāṇa* is getting his first love? The answer is hidden in this question, who is the great soul by him." [29]

He has memorized the mantras of *Kenopaniṣad- "śrotrasya śrotraṃ manaso mano yad ...."* [30] in the article "*Manusher Dharma*". There is a reflection of his Upanishadian thought in this form-

"The *Upaniṣad* s call this one of all the *Pratibodhaviditaṃ* - .... *Pratibodhavidita* is a true *śrotrasya śrotraṃ*. The *Upaniṣad* say about it that the other God is *tadviditādatho abiditādadh*i. Everything we know and know is unique." [31]

Also, the *Upaniṣad* theory of *Kenopaniṣad* in the essays " *Santiniketan*" ", " *Manusher Dharma* " as a whole is the result of his practice of Upanishadism. This word of peace was read at the beginning of *Kathopaniṣad* . Realizing the significance of the collective prayer of the guru-disciple, the poet has analyzed and quoted this idea in essays like "*Jatiya Vidyalaya*", "*Atmabodha*" etc. Some parts of the article " *Jatiya Vidyalaya* " can be quoted. In the words of the poet-

"The mantra that the theologian Guru *Muktikam* called to the students in the ancient Tapoban of India has not resounded in this country for a long time. Today our school is standing in the place of that guru and sending this message on the banks of Brahmaputra and Bhagirathi: ..... *Saha Bīryaṃ Karavāvahai*. We both come together to express semen. *Tejasvināvadhītamastu.* Let our study be vigorously taught. The mother is mad. We should not hate each other. " [32]

The first mantra of the second balli of the first chapter of the *Kaṭhopaniṣad* -

"anyacchhreyoanyadutaiva preya-ste ubhe nānārthe puruṣaṃ sinītah.
Tayoh śreya ādadānasya sādhu bhavati hīyateaarthād ya u preyo vṛṇīte"

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

And the second one-

"śreyaśca preyaśca manuşyameta-stausamparītya vivinaktidhīrah.
śreyo hi dhīroabhi preyaso vṛṇīte preyo mando yogakṣemad vṛṇīte. "

Rabindranath, in his essay "Manusher Dharma", mutilated the first half of the second mantra and the second half of the first manta. Rabindranath's individuality is admirable in the autobiographical thinking of the Kathopanisad's mantra. The fourteenth mantra of the third verse of the first chapter of the *Kaṭhopaniṣad* -

"Uttiṣṭhata jāgrata prāpya varān nibodhata.
kṣurasya dhārā niśitā duratyayā
durgam pathastat kavayo vadanti. "

Rabindranath has repeatedly mentioned this mantra in his articles on *"Samaja"*, *"Dharma"*, *"Upanishad Brahma"*, *"Santiniketan"* etc. Inspired by this mantra, the poet named the first article of the book "*Santiniketan"* is " *Uttiṣṭhata jāgrata* ". The article "*Manusyatva*" in the book *"Dharma*" begins with the word "awake". In the words of the poet - "Get up! Wake up! Get up, wake up -".[33] Elsewhere the poet says -"Flowering is as easy for a flower as it is for a human being. Humanity is not so easy for a human being. " [34]

In the ancient Indian tradition, the poet claims the three forms *śānta, śiva* and *advaita* as the basis of the three forms of celibacy, domestic and banaprastha *from* this mantra of *Māṇḍukyopaniṣad " śāntam śivamadvaitam caturtham manyante.sa ātmā sa vij*ñeya.*"*[35] Restraining all opposing forces in peace and the pursuit of peace in strength, *śiva*'s realization of worldly bondage and all good interests. Realizing this, the poet chants *śāntam śivamadvaitam* mantra and immerse the mind in peace and well-being. This sentiment is reflected in the essay "Ashrama". The prayer mantra there is -" asato *mā sadgamaya, tamaso mā jyotirgamaya, mṛtyormāmṛtangamaya.* " [36] The effect of this mantra is noticeable in the essay "Tin".[37] [205]In the essay of "Upanisad Brahma", Rabindranatha explains the five parts of Taittiriyashruti's "*Omiti Brahma*" [38]etc. in the Upanishadistic view- "It opens and pervades our minds with this sound *Om* ......*Om is* echoing eternally as a great command over all our actions over the world. "[39]

In the *Upaniṣad* education system, *Taittiriyopaniṣad* indicates on the day of the convocation, Acharya is advising the disciple to enter the Sansara Ashram after completing his education and make arrangements to continue the lineage. In Rabindranath's mind, the issue of keeping the lineage intact has become quite significant. The poet's mentality is reflected in his essay "Upanishad Brahma". There he says -

" But should the attempt to attain Brahma be abandoned altogether? But should the mind be made to understand that those who have left their homes and taken refuge in the forest, for whom the distinction between good and evil and beautiful and ugly inner and outer has been completely erased, is *Brahmajnana Brahmopasna* for them? Why is the Brahmachari disciplining the Brahmajijnasu disciple- *prajātantuṃ mā vyavacchetsīh?* "[40] Quoting the passage of the *taittirīyopaniṣad- "satyānna pramaditavyaṃ.... bhūtyai na pramaditavyaṃ*"[41], he says in the

---

[37] "Satya Shantam says Shivam. For Shantam he holds, protects everyone, everyone has got constant shelter in him ..... Advaitam is manifested in him who is Shivam. Where the truth as Shiva, there he is joyful, loving, ... truth on the one hand and joy on the other,Mars in the middle. So we have to go to Anandalo through this Mars. "

"*Upanisad Brahma"* that" he(Om) is the one whose discipline it is."[42] Again Rabindranath quotes *'atithidevo bhava' from* this part of the mantra "*devapṛ itrikāryabhyāṃ na pramaditavyaṃ / matṛidevo bhava /. pitṛdevo bhava /. acharyadevo bhava /. atithidevo bhava* ...." [43] and has explained it by his own style in the essay of "*samaja*" and "*manuser dharma*". Inspired by the Upanishad style of these three Upanishads, " *śraddhayā deyaṃ* ", "*aśraddhayā deyaṃ*", "bhiyā deyaṃ" - his interpretation in the essay "*pitar bodha*" in "*Santiniketan*" may be an indication of his upanisad's philosophical understanding.[44] At the beginning of the *Chāndogyopaniṣad's* lesson, " *āpyāyantu mamāṅ gāni vāk prāṇa chakṣuh śrotramatho valamindriyāṇi ca sarvāṇi sarvaṃ brahmopaniṣadam* ...." Rabindranath accepted the word *śantivacana* in his book *'Upanisad-brahma'*. This part of *Chāndogyopanisad* '*ekamevādvitīyaṃ* ' also did not go unnoticed by the poet. Again, the adoption of this part of the mantra " *asato mā sadgamaya* " from" *asato mā sadgamaya, tamaso mā jyotirgamaya, mṛtyormāmṛtangamaya*" [45] of " *vṛhadāraṇyakopaniṣad"* is seen in the composition of the poet.He says-

"I will offer myself as a reward to the one who has given you in the world. May the joyous mantra of that ever-changing garland be - *satya jñānamanantaṃ brahma*. And may the prayer of our life be in the righteous *tamaso*, in the light of death. " [46]

The Upanishads say that the tree is shaped like a tree, then another. " [47] This Upanishad thought of poet is to be greeted with admiration.

"sarvendriyguṇābhāsaṃ sarvendriyavivarjitaṃ
sarvasya prabhumīśānaṃ sarvasya śaraṇaṃ vṛhat. " [48]

Regarding the *Svagunabrahmasvarupa* of the mantra of *śvetāśvatopaniṣad*, Rabindranath says in his essay "Manuser dharma"- "In our philosophy, Sagunabrahma has been told about his nature *sarvendriyagunābhāsaṃ*........That is to say, whatever is the quality of the external and internal senses of man, his perception is in it." [49]

Conclusion

The poet has embellished the higher path with the reverent Vedic thought of various *Upanisad s*. So it can be said that you are the only poet like you. The moral interpretation of the poet's *Upanisad* s in various contexts, the fluent quotations, the assimilation of the Upanisadic thought in the context is really wonderful.Connecting the heart with the Upanishad principle seems to be the only way to resolve the conflict of interest of Rabindranath. The only way to entertain people in the *Upanisad* era is to curiosity about the Absolute. Rabindranath realized this excellence in the perception of the sages of the Upanishad era. That is why it is proclaimed in a bright voice –" ved*āhametaṃ puruṣaṃ mahāntamādityavarṇam tamasah parastāt tameva viditvāati mṛtyumeti nānya panthā vidyateayanāya. "*[50]

This idea arises in the poet's Upanishad thought - the path in which the sage of the Upanishads found superiority or welfare seems to be the path to salvation in the present world. Therefore, in the language of the poet, this *Upanisad* statement is inevitable - "*nānya panthā vidyateayanāya."*

ENDNOTES

1.*Muṇḍakopaniṣad*, **2/2/7**
2. *"Upamānopameyatvamekasyaiva tvananvayah" Sāhityadarpaṇa*, **10/36.**
3. Rabindraracanabali ,Volume II, Bharatavarsa: Bharatavarser Itihasa, Visva-Bharati Granthanvibhag, Calcutta, 1394 Bangabda, p. 707

4. Rabindraracanabali , Vol-10, Manuser Dharma, Visva-Bharati Granthanvibhag, Calcutta, 1396 Bangabda,
5. ibid
6. *Kenopaniṣad*, **2/2**
7. Rabindraracanabali, Fifteenth Volume, Upanishad Brahma, Visva-Bharati Granthanvibhag,, Calcutta, 1396 Bangabda,, p. 163
8. Rabindraracanabali, 7th volume, Santiniketan: Amriter Putra, Visva-Bharati Granthanvibhag,, Calcutta, 1395 Bangabda,, p. 656
9. "*Raso vai sah/ rasam hyevayan labdhanondi bhavati" Taittiriyopaniṣad, Brahmānandaballī* / **7**
10. Rabindraracanabali,, Seventh volume, Santiniketan: Vairagya, Visva-Bharati Granthanvibhag,, Calcutta, 1395 Bangabda,, p. 621
11. Rabindraracanabali,, Volume Fourteen, Atmaparichay-3, Visva-Bharati Granthanvibhag,, Calcutta, 1395 Bangabda,, p.17
12., *Muṇḍakopaniṣad*, **3/2/4**
13. Rabindraracanabali,, 6th volume, Aruparatan, Visva-Bharati Granthanvibhag,, Calcutta, 1395 Bangabda,, p. 269
14. ibid, p.266
15. Rabindraracanabali,, 7th volume, Santiniketan: Om, Visva-Bharati Granthanvibhag,, Calcutta, 1395 Bangabda,, p. 855
16. Rabindraracanabali,Volume VI, Gitanjali-6, Visva-Bharati Granthanvibhag,, Calcutta, 1395 Bangabda,, p. 16
17. Rabindraracanabali,Volume XIII, Arogya-1, Visva-Bharati Granthanvibhag, Calcutta, 1397 Bangabda,, p. 35
18. Rabindraracanabali,Volume 7, Santiniketan: Parthana, Visva-Bharati Granthanvibhag, Calcutta, 1395 Bangabda,, p. 539
19. *Iśopaniṣad*, **1**
20. Rabindraracanabali, Volume 15, Upaniṣad Brahma, Bharati Granthanvibhag, Calcutta, 1396 Bangabda,, p.156
21. *Iśopaniṣad*, **2**
22. Rabindraracanabali,Volume 10, Manusher Dharma, Visva-Bharati Granthanvibhag, Calcutta, 1396 Bangabda,, p.646
23. *Iśopaniṣad* , **9, 11**
24 *Iśopaniṣad*, **14**
25 Ibid p.648
26. *Iśopaniṣad*, **15**
27. Rabindraracanabali,, Volume XIII, Janmadine-23, Visva-Bharati Granthanvibhag, Calcutta, 1396 Bangabda,, p.79
28. Kenopaniṣad, **1/1**
29.. Rabindraracanabali,, Volume VII, Pran O Prem, Visva-Bharati Granthanvibhag, Calcutta, 1395 Bangabda,, p.79
30. *Kenopaniṣad*, **1/2**
31. Rabindraracanabali,, Volume X, Manusher Dharma, Visva-Bharati Granthanvibhag, Calcutta, 1396 Bangabda,, p.629
.32. Rabindraracanabali,Volume VI, Siksha**:** Jatiya Vidyalaya, Visva-Bharati Granthanvibhag, Calcutta, 1395 Bangabda, p.593.
33. Rabindraracanabali,Volume VII, Dharma**:** Manushyattva, Visva-Bharati Granthanvibhag, Calcutta, 1395 Bangabda,, p. 457
34. Ibid p. 459
35. *Māṇḍukyopaniṣad*, **7**

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

36. Rabindraracanabali,, Seventh Volume, Santiniketan**:** Ashram, Visva-Bharati Granthanvibhag, Calcutta,1395,Bangabda, p.687
37. Rabindraracanabali,, Volume VII, Santiniketan**:** Tin, Visva-Bharati Granthanvibhag, Calcutta, 1395 Bangabda,, p.583
38 *Taittīriyopaniṣad*, *śikṣāballī*, the Eight Anubakah
39.. Rabindraracanabali,, Fifteenth volume, Upanishad Brahma, Visva-Bharati Granthanvibhag, Calcutta, 1396 Bangabda,, p. 163-164
40. Rabindraracanabali,, Fifteenth volume, Upanishad Brahma, Visva-Bharati Granthanvibhag, Calcutta, 1396 Bangabda,, p. 161
41. *Taittīriyopaniṣad, śikṣāballī* , **11**, anuvāk, **1.**
42. Rabindraracanabali,, Fifteenth volume, Upanishad Brahma, Visva-Bharati Granthanvibhag, Calcutta, 1396 Bangabda,, p. 165
43, *Taittīriyopaniṣad, śikṣāballī* **11**, anuvāk,**2**.
44. Rabindraracanabali,, Volume VIII, Santiniketan**:** Father's Feelings, Visva-Bharati Granthanvibhag,, Calcutta 1395 Bangabda,, p.634
45. Brihadaranyakopanishadh, **1/3/28**
46. Rabindraracanabali,, Eight volume, Santiniketan**:** Ekti Mantra, Visva-Bharati Granthanvibhag,, Calcutta 1395 Bangabda,, p.667
47. Rabindraracanabali,, Fifteenth volume, Upanishad Brahma, Visva-Bharati Granthanvibhag, Calcutta, 1396 Bangabda, p. 160
48. *śvetāśvatopaniṣad*, **2/4**
49. Rabindraracanabali,, Volume IV, Sahitya**:** Saundarza O Sahitya, Visva-Bharati Granthanvibhag,, Calcutta, 1394 Bangabda,, p.634.
50. *śvetāśvatopaniṣad* , **3/8**

BIBLIOGRAPHY

1. Bandyopadhyay, Hiranmoy, Darshan of Upanishads, Sahitya Sangsad, Calcutta, 1983, reprinted.
2. Bandyopadhyay, Hirinmoy, Upanishads and Rabindranath, New Paper Publications, Calcutta, 1970.Reprinted.
3. Bhattacharya, Sukhmoy, Rabindranath in Sanskrit Studies, Aruna Prakashani, Calcutta, 1984. Reprinted.
4. Rabindraracanabali , Volume I-XV, Visva-Bharati Granthanvibhag,, Calcutta, 1394-1396 Bangabda, Reprinted.
5. Sahityadarpan (by Bishwanath) ঃ 10th chapter, ed. Uday Chandra Bandyopadhyay, Sanskrit Book Depot, Calcutta, 2000, reprinted.
6. F.. Swami Gambhirananda, Upanishad Granthabali**:** Part I, Udbodhana Karyalaya, 1982, Reprinted.
7. Swami Gambhirananda, Upanishad Granthabali**:** Part II, Udbodhana Karyalaya, 1984, Reprinted.
8. Swami Gambhirananda, Upanishad Granthabali**:** Part III, Udbodhana Karyalaya, 1985, Reprinted.

Unsung royal poets of Sanskrit from *Saduktikarṇāmṛtam.*

Debobrato Sarkar
Assistant professor,
Ramananda College, Bishnupur Bankura, West Bengal, 722122.

SID- 320721685

Received on-5/12/2020 11:03:53 | **Accepted on-** 26th January, 2021

Keywords-Śrīdhara Dāsa, *Saduktikarṇāmṛtam*, *koṣakāvya*, Vākpatirāja, Dharmāśoka, Lakṣaṇa sena, Yaśovarma.

ABSTRACT

Why the God has been created king? According to *manusaṃhitā* as it is known that 'for, when these creatures, being without a king, through fear dispersed in all directions, the lord created king for the protection of this whole creation' (*Manusaṃhitā*, 7/3). A *kṣatriya* became a king who received the knowledge and performed the all rituals of Vedas. It can say that a king will have many good qualities. So sometimes found some kings name who ruled their kingdom as we as associated with several cultural works like singing, dancing, writing etc. for example, samudragupta was a musician, he can play musical instrument and king gangadhara rao newalkar, husband of Rani laksmibai who can dance very well. In this way get many kings name who were associated with Sanskrit literary works. Śrīdhara Dāsa compiler the *Saduktikarṇāmṛtam* in 1205 A.D. It divided into five chapters and collected around 2400 verses from 500 different poets. So found few royal poets among those and this research paper is going to reveal the information of royal poets.

Generally, this varied and vast Sanskrit literature has divided into two parts they are Vedic literature and classic literature. Vedic literature consists of four Vedas, namely Ṛga Yajur Sāma and Atharva along with all Upaniṣads, Āraṇyakas and Vedaṅgas etc. Classic Sanskrit literature generally divided *Dṛśyakāvya* and *Śravyakāvya*[1].but generally kavya this name considered to all kind of literary compositions-prose, poetry, drama, mixed-poetry and prose etc. but non-dramatic kavya literature means *Śravyakāvya* is divided into many classes and *koṣakāvya* is one of them. In this classical literature found different types of works of poets. Viśvnātha opined about *koṣakāvya*, that is-

koṣaḥ ślokasamūhastu syādanonyānapekṣaḥ.
vrajyākrameṇa racita sa ebātimanoramaḥ[2].

It means that collection of detached verses under different sections called as *koṣakāvya*.

Our text *Saduktikarṇāmṛtam* is a *koṣakāvya* which is compiled by Śrīdhara Dāsa in 1205 A.D. It is divided into five chapters and around 2400 verses are available here. Each chapter is divided into sub-chapters and each sub-chapter consists of five verses. As it is known he was recruited as *māhāmāndalika* under king laksana sena of sena dynasty. Compiler collected 2400 verses from around 500 poets. Found many of the famous poets like Jayadeva umāpatidhara rājaśekhara kālidasa baṇabhaṭṭa etc as well as unknown or minor poets. So following discussed about few unsung royal poets who are associated with Sanskrit writing.

Vākpatirāja – In the History two Vākpatirāja are found: Vākpatirāja I who also known as vapparaja. He available in 10th century A.D. he was the son and successor of king govindarāja II. Another one is Vākpatirāja II was a king who belonged to Shakambhari chahamana dynasty. He ruled sapadalaksaha country which included parts of present day Rajasthan. He may flourish in 11th century A.D. As per prithviraja vijaya kavya he may defeat to bhoja and the paramara king malwa[3].

In *SKM* found some verses which are attributed to Vākpatirāja and Vākpati. Are they same or not? Five verses attributed to as Vākpatirāja and another five verses attributed to as Vākpati, total ten verses attributed to Vākpatirāja. Vakpatiraj was the author of a Sanskrit work named '*Gauḍavaho*' and in this book found some information about king Yaśovarma. He was the court poet of king Yaśovarma[4].
Vākpati known as munja who was the king and ruled in malwa reign. As it is known dhanañjaya and padmagupta flourished in his the court[5]. He was the fond of Sanskrit poetry. Therefore in *SKM* found five verses which are attributed to Vākpati. In one verse he praised to Viṣṇu's vāmana incarnation and he may vaiṣṇava. This verse is following:

कुतस्त्वमणुकः खतः स्वमिति किं न यत्कस्यचि
त्किमिच्छसि पदत्रयं ननु भुवा किमित्यल्पया।
द्विजस्य शमिनो मम त्रिभुवनं तदित्याशयो
हरेर्जयति निह्नुतः प्रकटितश्च वक्रोक्तिभिः।।[6]

He may devotee of Viṣṇu, praised to Viṣṇu and his different incarnations over 5 verses. He acknowledges the contribution of trees in a verse.
Dharmāśoka- Dharmāśoka was the third ascent from kaniṣka of first gunanda dynasty of kaśmīra. Kalhana save this king freed himself from sins by embracing Buddha's religion and built the city of Śrīnagara with ninety-six lakhs of houses.

स षण्णवत्या महाप्सा लक्षैलक्षीसमुज्ज्वलैः।
गरीयसीं पुरीं श्रीमांश्चक्रे श्रीनगरीं नृपैः।।[7]

Dharmaśoka appears to have been a poet and his verse is enchanting. For instance:
अनुद्धुष्टः शब्दैरथ च धटनात्प्रस्फुटरसः
पदानामर्थात्मा रमयति नतूत्तानितरसः।
यथा किञ्चिद्दृश्यः पवनचलचानांशुकतया

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

स्तनाभोगः स्त्रीणां हरति न तथोन्मुद्रितवपुः॥[8]

Lakṣaṇasena- Lakṣaṇasena was the most famous king of sena dynasty and he came to the throne in 1179 century A.D[9]. He was the successor of king ballalasena. He had great passion for Sanskrit poetry. Therefore, in his court famous poets were flourished Jayadeva govardhana umāpatidhara śaraṇa. He also associated with Sanskrit writings. In *Saduktikarṇāmṛtam* some verses attributed to king laksanasena. His description of Kriṣṇa is alluring.

कृष्णत्वद्वचनमाला सह कृतं केनापि कुञ्जान्तरे
गोपीकुन्तलवर्हदाम तदिदं प्राप्तं मया गृह्यताम्।
इत्थं दुग्धमुखेन गोपिशिशुनाख्याते त्रपानम्रयो
राधामाधवयोर्जयन्ति वलितस्मेरालसा दृष्टयः॥[10]

Another one verse of king Lakṣaṇasena:

तिर्यक्कन्धरमंसदेशम्लितश्रोत्रावतंसं स्फुरद-
वर्होत्तंसितकेशपाशमनृजुभ्रुवल्लरीविभ्रमम्।
गुञ्जोद्वेणुनिवेशिताघरपुटं साकुतराधानन-
न्यस्तामीलितदृष्टिगोपवपुषो विष्णोर्मुखं पातु वः॥[11]

Above mentioned both verses are written by king Lakṣaṇasena based on Kriṣṇa. It seems that he may vaiṣṇava. **Yaśovarma** - Yaśovarma was indubitably a powerful ruler of kannauj during 7th century A.D and was the patron of vākpati and bhavabhūti. Kalhana says:

कविर्वाकपतिराजश्रीभवभीत्यादिसेवितः।
जितो ययौ यशवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्॥[12]

The well-known verse states explicitly that yasovarman was himself a poet; he wrote a play called *Rāmābhyudaya*[13] It as illustration in rhetorical works, which be speak the author's high poetical talent and good power of description. Rhetorical works cited several excellence verses from the *Rāmābhyudaya*. King Yaśovarma wrote a verse where he compared himself with aśoka.

रक्तस्त्वं नवपल्लवैरहमपि श्लाघ्यैः प्रियाया गुणै-
स्त्वामायान्ति शिलीमुखास्स्मरधनुर्मुक्तास्सखे मामपि।
कान्तापादतलाहतिस्तव मुदे तद्वन्ममाप्यावयोः
सर्वं तुल्यमशोक केवलमहं धात्रा सशोकः कृतः॥[14]

Compiler Śrīdhara Dāsa gave place those aforementioned royal poets in his anthology. Compiler thinks those royal poets have the alluring power of description and high poetical talent. Those aforementioned royal poets ruled their states as well as associated with Sanskrit writing. In the history can found several names of royal poets.

ENDNOTES

1. *Sāhityadarpaṇa*,6/1. "दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विविधम्".
2. *Sāhityadarpaṇa*, 6/308.
3. Early chauhan dynasty, by dasharath Sharma, p-34.
4. Rajatarangini 4/144.
5. Encyclopaedia of Indian literature vol 2, ed. Amaresh data. P.995.
6. *Saduktikarṇāmṛtam,213.*
7. Rajatarangini,1/104.
8. *Saduktikarṇāmṛtam,2160.*
9. Historians opined that king laksanasena became king around 1178 or 1179 A.D. chittaranjana sen and sailendra sena fully agreed with saduktikarnamrtam said time of laksanasena.
10. *Saduktikarṇāmṛtam272.*
11. *Saduktikarṇāmṛtam,282.*
12. Rjt,IV,144
13. Bhavabhuti: his date, life and works. By V.V. Mirashi,p.366.
14. *Saduktikarṇāmṛtam,1655.*

BIBLIOGRAPHY

- Banjerjee, Suresh Chandra. *Sduktikarnāmṛtam* of sridhardasa. Calcutta: Firma K.L.Mikhopadhyaya, 1965.
- Bhattacharya, Amit. "*The gauda king referred to in vakpatiraja's 'Gaudabaho.'*" Proceedings of the Indian history congress, vol.36, 1975, pp.38-42. JSTOR.
- Data, Amaresh. *Encyclopaedia of Indian literature* vol 2. Newdelhi: sahity Academi. 2005 (rpt.), 1988 (1st Ed.)
- Dutta, Jogesh chunder. *Rajataraṇginī* of kalhana, Kings of Kashmir. Calcutta: I.C.Bosn & Co. Stanhoph press, 1879.
- Kane,P.V. *The Sahitydarpana of visvanatha*. Bombay: Nirnayasagar Press, 1932 (2nd Ed.), 1910 (1st Ed.).
- Krishnamacariya, M. *History of classic Sanskrit literature*. Delhi: Motilal Banarasidass Publisher, 2016 (4th rpt.), 1974 (3rd Ed.).
- Mirashi, V.V. *Bhavabhūti: his date, life and works*. Delhi: Motilal Banarasidass Publisher, 1996 (rpt.), 1974 (1st Ed.).
- Sharma, Dasharath. *Early chauhan dynasty*. Delhi: Motilal Banarasidass Publisher, 2002.

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

Swami Vivekananda's Vision on The Social-Religious Aspect of Bharat: An Analysis

Dr. Shlesha Sachindra
DoE, Delhi.

SID- 328162015

Received on-6/12/2020 15:49:47 | **Accepted on-** 26th January, 2021

Keywords-Social, Religious, Spirituals, colonial India

ABSTRACT

Swami Vivekananda is the youngest seers of ancient Indian wisdom who mesmerized the whole world in 19th century. His audacity makes him harbinger of the invaluable Indian culture and philosophy. Vivekananda admired the impartation of technology but opposed the proselytizing.

Introduction

What Bharat needed, amidst the general disintegration of the modern era, was to rediscover her transformative identity. This identity is the rock where she could lie at anchor came as an authoritative utterance so she might recognize herself. This was given to her in these words and writings of Swami Vivekananda.

Early Life

Swami Vivekananda was born as Narendranath Datta in Kalkatta, the capital of British India, on 12th January 1863. He was the student of Presidency College of Calcutta. He was a voracious reader and was interested in a wide range of subjects such as Indian Scriptures the Vedas, the Upanisads, the Bhagvata Gita, the Ramayan, the Mahabharat and the Purana and its allied. He regularly participated in various forms of physical exercises, sports and organizational activities.

Spiritual Apprenticeship

Narendra became the member of Brahma Samaja during his college period being led by Keshabchandra Sen and Debendranath Tagore. His initial belief was shaped by concepts of 'Brahma'. This included belief in a formless God and Deprecation of idolatry. Narendra's first introduction to Sri Ramkrishna occurred in a literature class during General Assembly's Institution. His Professor William Hastie was lecturing on William Wordsworth's poem 'The Excursion'. While explaining the word 'trance' in the poem at that time he was recommended to visit Sri Ramkrishna of Dakshineswer in order to know the real meaning of 'trance'. Though at first Narendra could not accept Sri Ramkrishna and his vision completely, he could not neglect him either. Instead, he tested Sri Ramkrishna, who faced all of his arguments and examinations

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 Since 2010

with patience *Try to see the truth from all angles*[206] was his reply. He taught him that service to men was the most effective worship of God. Sri Ramkrishna died in the early morning hours of 16th August 1886 in Cossipore.

Socio-Religious Condition in Colonial - India

When the British first gained a foothold on the Indian subcontinent in the 18th century their concern was far profit. The men who administered their territory for the East India Company were more inclined to profiteering than attempting to establish an effective government. By the beginning of the 19th century, this type of attitude had begun to change. A series of conquests expended the territory held by the British and idea of responsible trusteeship began to creep into the minds of the individuals charged with governing British India. The British believed that understanding the caste system was the key to understand the people of India. The caste system was seen as the essence of Indian social structure, the system through which it was possible to classify all of the various groups of indigenous people according to their ability as reflected by their caste to be of service to the British. Any change within a society requires the participation of all the groups if it is to have lasting effect.[207]

In the 19th century, certain social practices like female infanticide, child marriage, sati, polygamy, and rigid caste system became more prevalent. These practices were against human dignity and values. Women were discriminated against in all stages of life and were thus a disadvantaged section of the society. They did not have access to any development opportunities to improve their status. Education was limited to a handful of men belonging to the upper castes. The expensive rituals, sacrifices, and practices after birth or death were outlined by priestly class yet unaffordable by many people. In the meantime, there was the reformation movement and the various revolutions that took place in Europe. They brought new ideas such as liberty, equality, freedom, and human rights. These ideas appealed to some sections of our society and led to served reform movements in different parts of the country. At the forefront of these movements were visionary. Indians such as Rajaram Mohan Roy, Swami Dayananda, and Sri Ramkrishna started movements that, to one degree or another, attempted to explore new paths that would allow them and their people to live more equitably with British India.

The Meaning of the word 'social' and 'Religions'---- All spheres of human activity are affected by the social structure. The traditional focuses of social life include-social stratification, social class, culture, race and ethnicity, gender and sexuality, social mobility, religion, secularization, law, and deviance. Social life has gradually expended its focus to further subjects, such as health, medical, environment, political-economy and the role of social activity in the development of scientific knowledge. In this way, we can say life is multi-dimensional and all dimensions are affected by social life.

The word 'social' is derived from both Latin and Greek origins. The Latin word: 'socius' is the origin of the word social, it means- 'Companion'. The word 'Religion' is sometimes used interchangeably with faith, belief, experience, system, sometimes set of duties. Religion is an

[206] *Wikipedia*. (2013). Retrieved Jnuary 18, 2013
[207] A History of British India, Vol.i, page no. 16

organized collection of experiences, beliefs, cultural systems, and views that relate humanity to the supernatural and to spirituality. Many religions have narrative symbols and sacred histories that are intended to create meaning to life or traditionally to explain the origin of life or the universe. From their beliefs about the cosmos and human nature, they tend to derive morality, ethics, religious laws, or a preferred lifestyle. The practices of religion also include rituals, Sermons or the show respect of deity, Gods or Goddesses, Sacrifices, festival, feasts, trance, funerary services, matrimonial services, meditation, prayer, music, art, dance, public service or other aspects of human culture.[208]

Vivekananda's vision about Socio-Religious aspect of Bharat: -- India with her thousands of years of national development in which she has sounded many things, proved many things and realized most all save only her perfect unanimity from end to end of her great expanse of time and space as to certain fundamental and essential truths held by all her people in common. The inspiration of this Indian wisdom whole ambition of Vivekanands's life had made to set into motion social machinery which will bring noble ideas to the door of everybody and then men & women may settle their own fate. He said—
"People should know what our fore-fathers well as other nations have thought on the most momentous questions of life. We are to put the chemicals together the crystallization will be done by nature according to her laws."[209]

There was a society that was governed by superstitions. People were always prepared to do anything for the name of God. Natural Disaster, Foreign encroachment, and at every step of social life costly ritual veiled the mass in hellish poverty. To see the hedonistic desire of rich people and hell conditions of the masses Vivekananda followed the key teaching of his teacher- 'Service of men was the most effective worship of God".[210]

He said—
"I base my teaching on the great Vedantic truth of the sameness and omnipresence of the soul of the Universe. First bread and then religion. We stuff them too much with religion, when poor fellows have been starving. No dogmas will satisfy the carryings of hunger. You may have sects by the hundreds of millions, age but it is nothing until you have the heart to feel; feel for them as your Veda teaches you, till you find they are parts of your own bodies, till you realize that you and they, the poor and the rich, the saint and the sinner are all Brahma.
Feel for the miserable and look up for help-it shall come. I have travelled twelve years with this load in my heart and this idea in my brain. I have gone from door to door of the so-called rich and great. With a bleeding heart I have crossed half the world to this strange land seeking for help. I know he will help me- I am perishing of cold or hunger in this land, but I bequeath to you, young man this sympathy, this struggle for the poor, the ignorant, the oppressed. I do not belief in a religion or God which cannot wipe the widow's tears or bring a piece of bread to the orphan's mouth. I do not care for liberation or for devotion. I would rather go to a hundred thousand hells, "doing good to others like the spring." This is my religion."[211]

---

[208] *Wikipedia*. (2013). Retrieved Jnuary 18, 2013
[209] Thought of Power: page no. 03
[210] *Wikipedia*. (2013). Retrieved Jnuary 18, 2013
[211] Thought of Power: page no. 22-30

Every nation has a national purpose of its own. Either in obedience to the law of nature or under the superior genius of the great ones, the social manner and customs of every nation are molded into shape, to bring that purpose with fruition Vivekananda wanted each nation to grow to its full stature and strength, thus contributing to the sum total of work's growth and human welfare. Swami Vivekananda's attitude towards socialism is summed up in:
I am a socialist, not because it is perfect system but because I believe that half a loaf is better than no bread."[212]
Swamiji thought socialism as a ray of hope in the large number of problems confronting India. He viewed the cause of world History as a change in governance between the four castes: Brahmina, Kshatriya, Vaishya and Shudra in conformity to the law of nature, with the rise of Shudura, the lowest caste, Vivekananda identified democracy and distribution of physical comforts and education. Swamiji 's concept of socialism was in no way averse to religion. He believed in process of gathering a higher of the masses without injuring the religious sentiment. He also believed that social change can be brought forward only on a firm platform of conduct, character, and spirituality. He considered that the degeneration of India came not because the laws and customs of the ancients were bad, but because they were not allowed to be carried to their legitimate conclusion. He said—

> *"I consider that the great national sin is the neglect to the masses and that is one of the cause of our downfall. No number of politics would be any avail until the masses in India are once more well educated, well fed and well cared for."*[213]

The Industrial revolution had changed the world scenario materially but it intact was in the form of painful disintegration of the social life of the world. The suffering coming out of this painful disintegration was also realized by Vivekananda. He expressed his pain in the addresses at The Parliament of World Religion 20th September 1893---

> *"Christians must always be ready for goof criticism. You Christians who are so fond of sending out missionaries to save the soul of the heathen- why not try to save their bodies from salvation? In India, during the terrible famines, thousands died from hunger, yet you Christians did nothing. You erect churches all through India, but the crying evil in the East is not religion- they have religion enough but it is bread that the suffering millions of burning India's cry out for with preached throats. It is an insult to a starving people to offer them religion; it is insult to a starving man to teach them metaphysics. In India a priest that preached for money would lose caste and be spat upon by the people. I came here to seek aid for mu impoverished people."11*[214]

Vivekananda considered that India was still rich in her spiritual heritage, but was impoverished materially. The poverty and weakness of the people made him shed tears. Sitting on the last bit of Indian rock at Cape Comorian he received the light of inspiration for the regeneration of his motherland. He declared that renunciation is one of the best paths to serve the country. Religion is not in doctrines, in dogmas nor in intellectual; it is being and becoming; it is realization. To understand his religious vision we can go through his speech which was delivered in 'The World Parliament of Religions, 1893 in Chicago'---

---

[212] Caste Culture and Socialism: Page no.-25
[213] Caste Culture and Socialism: Page no.-43
[214] Complete Work of Swami Vivekanand: Page no- 34, Vol- I

> *"We Hindus, do not merely tolerate, we unite ourselves with every religion, praying in the mosque of the Mohammedan, worshipping before the fire of the Zoroastrian and kneeling to the Cross of the Christian. We know that all religions are alike, from the lowest fetishism to the human soul to grasp and realize the Infinite. So we gather all these flowers, and binding them together with the cord of love, making them into a wonderful bouquet of worship. We people are able to do likewise because all our knowledge is based upon experience. We can call inferential knowledge, in which we go from the less to the more general of from the general to the particular, has experience as its basis. In what are called the exact sciences, people easily find the truth, because it appeals to the particular experiences of every human being. The scientist does not tell you to believe in anything, but he has certain results which come from his own experiences, and reasoning on them when he asks us to believe in his conclusion, he appeals to some universal experience of humanity. In every exact science there is a basis which is common to all humanity, so that we can at once see the truth or the fallacy of the conclusions drawn there from. Now the question is: Has religion any such basis or not? Religion, as it is generally taught all over the world, is said to be based upon faith and belief and in most cases. Consists only of different sets of theories; and that is the reason why we find all religions quarreling with one another. These theories again are based upon belief.*

Well, in the first place, we analyze all the various religions of the world. Yet, in all of them we find one consensus, that the truths they teach are the results of experiences of particular persons. The Christian says to people to believe in his religion, to believe in Christ and to believe in him as the incarnation of God, to believe in a god, in a soul, and in a better state of that soul. If we ask him for reason, he says he believes in them. But if we go to the fountain head of Christianity. We will find that it is based upon experience. Similarly, In Buddhism it is Buddhas's experience. He experienced certain truths saw them, came in contact with them, and preached them to the world. So, with the Hindus, in their books the writers, who are called Rishi of sages, declare they experienced certain truths and these they preach. Thus it is clear that all the religions of the world have been built upon that one universal and adamantine foundation of all our knowledge – direct experience. The teachers all saw God; they all saw their own souls, they envisioned their future, they witnessed eternity and what they experienced they preached. Only three is this difference, that by most of these religions, especially in modern times, a peculiar claim is made, namely that these experiences are impossible at the present day; they were only possible with a few man who were the first founders of the religions that subsequently bore their names. At the present time these experiences have become absolute and therefore, we have now to take religion on belief. This is entirely deniable. If there has been one experience in this world in any particular branch of knowledge it absolutely follows that experience has been possible millions of times before and will be repeated eternally. Uniformity is the rigorous law of nature; what once happened can happened always.

> *Why is there so much disturbance (cultural conflict) So much fighting and quarrelling in the name of God? There has been more bloodshed in the name of God than for any other, because people never went to the fountain head, they were often content only to give mental assent to the customs of their forefathers and wanted others to do the same. what right has a man to say he has a soul if he does not feel it, or that there is a God if he does not see*

Him? If there is a God, we must see Him, if there is s soul, we must perceive it; otherwise, it is better not to believe."12[215]

Conclusion:

To see the above thoughts and speech of swami Vivekananda we can say, men want both bread and thought. Bread and thought are one 'अहमन्नमहमन्नम्' the experience of Unpnishadic Risi proves the inseparability of matter and energy. Disintegration between bread and thought has made the human society a hell. Hand and mind both should unify it is Socio-Religious aspect of Swami Vivekanand. And the industrial world can be heaven only through this universal realization of Socio-Religious aspect. In this way, by going through his literary work about the socio-religious-cultural- nationalist etc. we people can come to know his vision for peaceful co-existence and real national development.

BIBLIOGRAPHY

1. Complete Work of Swami Vivekananda, swami Gambhirananda, president, Advait Ashram, Mayavati Almora, Himalyas, vol- I&II, year-1963

2. Caste Culture and Socialism: Advaita Ashram, Culcutta-14, year 1947

3. Thought of Power, Advaita Ashrama, Mayavati Almora, Himalayas: year-1948

4. Atmaprana Pravrajika, Sister Nivedita, Sister Nivedita Girls school, 5 Nivedita lane, Calcutta-3 Ed- 6ht, year 2007

[215] Complete Work of Swami Vivekanand: Page no- 52, Vol- I

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

अथर्ववेदे रसायनविज्ञानम्

वेणुधरदाशः
शोधच्छात्रः (वेद-विभागः),
ज.रा.रा.संस्कृतविश्वविद्यालयः,जयपुरम्

SID- -372632920

Received on- 10/31/2020 0:52:45

Accepted on- 26th January, 2021

प्रमुखशब्दाः- वेदाः, रसायनम्, सलिलम्, अग्निः, सृष्ट्युत्पत्तिः, सोमः, भौतिकम् ।

शोधसारः

विद् ज्ञाने धातोः घञ् प्रत्यये कृते निष्पन्नस्यास्य वेदशब्दस्यार्थः ज्ञानं भवति । वेदेषु विविधज्ञानविज्ञानविषयाः सन्ति । एतदर्थं वक्तुं शक्यते यत् वेदेष्वपि रासायनिकतत्त्वानां विवेचनं मिलति । रसायनं नाम विविधानां रसानां मिश्रितं रूपम् । रसस्यायनं रसायनमिति विग्रहेण सिद्ध्यति । तैश्च रसैः यत्कार्यं सम्पद्यते तत्कृत्यं रसायनमिति कथ्यते । अत एव रसायनविज्ञानान्तर्गतं ये विषयाः चिन्त्यन्ते तेषु मुख्यघटकरूपेण अपाम् उत्पत्तिः-महत्त्वम्-गुणाः-भेदाः, जलात् सृष्टिः, विविधाः धातवः तथा तेषां मिश्रणविधयः, लवण-जल-रत्नानां च औषधिरूपेणोपयोगः च इत्यादीनां विषयाणां वर्णनानि भवन्ति । अतः अस्मिन् शोधप्रबन्धे केषाञ्चन महत्त्वपूर्णानां विषयाणामुल्लेखः क्रियते ।

ABSTRACT

The word Veda, originating from Vid Dhatu Ghanya suffix, means knowledge. The Veda contains the subject of various types of knowledge science. That is why we can say that the chemistry element is also found in the Vedas. Rasayana means mixed form of various types of juices. Under chemistry, the description of mixture of different juices is obtained, such as the origin of water, importance, properties, distinction, etc. Besides, the origin of creation from water, the method of mixing different metals, the use of salt water and gems in medicine. The description of many subjects is found in the Vedas, in this dissertation, I have mentioned about some of the above facts.

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

भारतीयज्ञानगङ्गायाः स्रोतांसि वेदा एव सन्ति । अतः विद् ज्ञाने धातोः घञ् प्रत्यये कृते निष्पन्नस्यास्य वेदशब्दस्यार्थः ज्ञानं भवति । पुनश्च विद् ज्ञाने, विद् सत्तायाम्, विद्लृ लाभे, विद् विचारणे इति धातुभ्योऽपि घञि वेदः इति रूपं निष्पद्यते । सायणस्तु अपौरुषेयं वाक्यं वेद इत्याह । ऋग्वेदभाष्यभूमिकायाम् अपि वेदस्वरूपं प्रतिपादयतोक्तम्-

"इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोः अलौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः।"

पुनश्च उक्तम्-

"विद्यन्ते धर्मादयः पुरुषार्था यैस्ते वेदाः इति।"[216]

एतदतिरिक्तं तैत्तरीयब्राह्मणे तु वेदानामानन्त्यमेवोक्तम् तद्यथा-

'अनन्ता वै वेदाः।'[217]

अनेन ब्राह्मणवचनेन वेदानामानन्त्यं सिध्यति। इत्थमनन्तरूप- सम्पन्नेषु सर्वेष्वपि वेदेषु विविधज्ञानविज्ञान- विषयाः सन्ति। अतः यद्वेदेषु सर्वविद्यानां सूत्राणि विद्यमानानि सन्ति । तदुक्तम्मनुना-

"यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः।
स सर्वोऽभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः।"[218]

तत्र विशेषरुपेण इदमवधेयमस्ति अस्मिन् जगति समस्तविद्यानां द्विविधमेव स्वरूपं दृश्यते ज्ञानं विज्ञानञ्च । तत्र ज्ञानं मुक्तिजनकत्वादपवर्गसिद्धिसाधनत्वाच्च ज्ञायते । एतदर्थं कथितमस्ति-

"सा विद्या या विमुक्तये ।"

विज्ञानञ्च चतुर्विधपुरुषार्थेषु वर्गफलप्राप्तिनिमित्तत्वात् दैहिकसुखसाधनोपायभूतत्वाच्च यज्ञविद्येत्यपरनाम्ना विख्यातमस्ति । तदुक्तं तैत्तरीयोपनिषत्सु-

"विज्ञानं यज्ञं तनुते ।"[219]

विज्ञानविषये अमरकोशकारेण अमरकोशे लिखितम्-

"मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः।"[220]

अर्थात् अपवर्गप्राप्त्यर्थं निःश्रेयसजनकं धर्मकर्मादिकं ज्ञानमिति कथ्यते । विज्ञानन्तु शिल्पशास्त्रादिषु प्रवर्तते । शिल्पस्य परिभाषा गोपथब्राह्मणे एवं प्राप्यते-

"आत्मसंस्कृतिर्वै शिल्पानि आत्मनमेवास्य तत्संस्कुर्वन्ति ।"[221]

अस्य कथनस्य तात्पर्यमस्ति यत् आत्मसंस्कारनामो शिल्पम् । आत्मसंस्कारस्तु कर्मविशेषः,स च कर्मव्यापारः यज्ञेष्वेव भवति । यज्ञेषु विविधानां रासायनिकतत्त्वानां प्रयोगो भवति । रसायनं नाम विविधानां रसानां मिश्रितं रूपम् । रसस्यायनं रसायनमिति विग्रहेण सिद्ध्यति । तैश्च रसैः यत्कार्यं सम्पद्यते तत्कृत्यं रसायनमिति कथ्यते । अत एव रसायनविज्ञानान्तर्गतं ये विषयाः चिन्त्यन्ते तेषु मुख्यघटकरूपेण अपाम् उत्पत्तिः-महत्त्वम्-गुणाः-भेदाः, जलात् सृष्टिः, विविधाः धातवः तथा तेषां

216 सायणभाष्य

217 तैत्तरीयब्राह्मण

218 मनुस्मृति.२/७

219 तै.उ.२/५/१

220 अमरकोश धीवर्ग

221 गोपथ ब्राह्मण.२/६/७

मिश्रणविधयः, लवण-जल-रत्नानां च औषधिरूपेणोपयोगः च इत्यादीनां विषयाणां वर्णनानि भवन्ति । अत्र केषाञ्चन महत्त्वपूर्णानां विषयाणामुल्लेखः क्रियते ।

अपामुत्पत्तिः-

आपः इति शब्दस्य पर्यायाः भवन्ति अद्भ्यः, जलम्, सलिलमिति । जलस्योत्पत्तौ बीजरूपौ अग्निषोमौ इत्युक्तौ । यथोक्तमथर्ववेदे-

"अग्निषोमौ बिभ्रति आप इत्ताः ।"[222]

अस्मिन् मन्त्रे अग्निशब्देन यस्य तत्त्वस्य बोधो भवति तमेव तत्त्वम् अद्यतनीय वैज्ञानिकाः ऑक्सीजन इति पदेन व्यवहरन्ति । तथैव षोमशब्देन च यस्य तत्त्वस्य बोधो भवति तं हाइड्रोजेन इति कथयन्ति । तयोः द्वयोः तत्त्वयोः सम्मेलनेन जलस्योत्पत्तिर्भवतीति स्पष्टमेव प्रतीयते ।

वस्तुतः वेदेषु पर्यायशब्दानां प्रयोगः बाहुल्येन भवति । पर्यायशब्दानाम् अर्थज्ञानं यद्यपि काठिन्यं भवति तथापि वैदिकविज्ञानदृष्ट्या तादृशानां शब्दानामर्थाः अत्र प्रदर्श्यन्ते । वेदेषु अग्निः, मित्रः, वैश्वानरोऽग्निः, मातरिश्वा च देवाः प्राणभूताः इत्युक्ताः सन्ति । सोमः, आपः, जलम्, सलिलम्, वरुणश्च अपानवायुस्वरूपाः उक्ताः । यथा-

"अपानेन वै प्राणो धृतः ।"[223]

अर्थात् अपानवायुसदृशैः सोमादिपदार्थैः एव अग्निमित्रादयः प्राणस्वरूपाः सन्तः स्व स्व स्वरूपेषु स्थिताः भवन्ति । अत एव अथर्ववेदे कथितमस्ति-

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥[224]

इत्यनेन मन्त्रेण स्पष्टं भवति यत् सोमगततत्त्वानाम् आधारेण एव सूर्यः बलवान् भवति । यतः आदित्यशब्दस्य निर्वचनं कुर्वता यास्काचार्येण उक्तम्-

आदत्ते रसानादत्ते भासं ज्योतिषम् ।[225]

अर्थात् सूर्यः स्व रश्मिभिः रसान् स्वीकृत्य ग्रहनक्षत्राणां कृते प्रकाशं प्रददाति । तदुदये सति चन्द्रतारकादिनां ज्योतिः विलुप्तो भवति । पार्थिवपदार्थेषु रसस्योपस्थितिः स्पष्टी भवति । अर्थात् सूर्यः स्व रश्मिभिः रसरूपस्य सोमतत्त्वस्य ग्रहणं करोति येन तस्य बले बर्द्धते । अयं सौमिकानि तत्त्वानि एव आधुनिकैः वैज्ञानिकैः हाइड्रोजनमिति नाम्ना व्यवह्रियन्ते । तस्माद् कारणादेव कथितमस्ति यत् सूर्ये 90 प्रतिशतं हाइड्रोजनतत्त्वम्, 80 प्रतिशतं हीलियमतत्त्वम्, द्विप्रतिशतञ्च अन्यद्रव्यं वर्ततेति आधुनिकवैज्ञानिकैः स्वीकुर्वन्ति । अतः वक्तुं शक्यते यत् पाश्चात्याः यदा भारतभूमौ समागतवन्तः तदानीम् अत्र स्थितं ज्ञानविज्ञानात्मकं कौशलमत्यन्तोन्नतमासीदिति स्पष्टं भवति ।

अग्निषोमात्मके जगति यद्यपि अग्निः एव प्राणभूतः प्रधानभूतश्च तथापि सोमतत्त्वं सर्वत्र व्याप्तं वर्तते । एतदर्थं केन्द्रबद्धमपि प्रत्यृतमिति ऋतमित्युच्यते । अग्निः तद्गर्भे निवसति । सोमस्यैव तिस्रः अवस्थाः भवति यथा- सोमः, आपः, वायुरिति । एषामपामपि व्याप्तिमनुपदं श्रुतिराह । यथा-

---

222 अथर्ववेद.३/१३/५

223 मैत्रायणी.४/५/६

224 अथर्ववेद.१४/१/२

225 निरुक्त.२/४/१३

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

आपो भृग्वङ्गिरो रूपमापो भृग्वङ्गिरोमयम् ।[226]

इत्यस्मिन् मन्त्रे जलेसु भृग्वङ्गिरयोः उपस्थितिः वर्ततेति उक्ताः। भृगुशब्देनात्र हाइड्रोजेनतत्त्वस्य ज्ञानं भवति । यतः तु वरुणः हि अपानवायुस्वरूपः सोमरूपो वा इत्युक्तः।तस्मात् कारणात् वरुणादस्य भृगोः उत्पत्तिः अभवदिति कथितमस्ति अथर्ववेदस्य गोपथब्राह्मणे ।

अपां महत्त्वम्-

जले सर्वासां देवतानां निवासः भवतीति वेदेषु वर्णनमुपलभ्यते । तस्मात् कारणादेव जलं देवालयमित्युच्यते । जलस्याधार एव सम्पूर्णं रसायनविज्ञानं भवति । जले इन्द्रादिदेवगणाः सदैव स्थिताः भवन्ति तस्मात् जले स्वेच्छानुसारं यस्मिन् कस्मिन्नपि काले परीक्षणं कर्तुं शक्यते । यथा-

यद्देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत।[227]

प्रविष्टा देवाः सलिलान्यासन् ।[228]

इत्याभ्यां मन्त्रांशाभ्यामपि ज्ञानं भवति यत् जलस्य प्रत्येकासु कणिकासु छिद्राणि भवन्ति । तस्मादेव कारणाद् जले शर्करादिकञ्च स्वीयां कणिकां प्रवेशयित्वा मिश्रितं भवति । अथर्ववेदस्य **"प्रविष्टा देवा सलिलनि"** इत्यनेन मन्त्रेणापि इदं स्पष्टं भवति यत् जलमखण्डम् अविभाज्यञ्च नास्ति ।

पुनश्च ता आपः सर्वौषधिरुपेण प्रयुक्ता भवन्ति । सर्वविधरोगाणां चिकित्सापि जलेन कर्तुं शक्यते । तदुक्तमथर्ववेदे-

आप इद्वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।

आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ॥[229]

मन्त्रेऽस्मिन् आपः विश्वस्य भेषजीत्युक्ताः।अर्थात् सम्पूर्णेऽस्मिन् भूमण्डले ये के च रोगाः सन्ति तेषां सर्वेषां रोगाणां निवारणं जलेन कर्तुं शक्यते । यथा हिमालयात् निसृतानां नदीनां जलेन विशेषरुपेण हृद्रोगस्य शमनं कर्तुं शक्यते । तदुक्तमथर्ववेदे-

हिमवतः प्र स्रवन्ति सिन्धौ समह संगमः।

आपो ह मह्यं तद्देवीर्ददन् हृद्योतभेषजम् ॥[230]

तथा च इमा आपः समस्तेभ्यः चराचरेभ्यः जीवेभ्यः विशेषरुपेण मानवेभ्यः जीवनं प्रयच्छन्ति । एतदर्थं हिन्द्यामपि कथितमस्ति **"जल ही जीवन है"** । अर्थात् मानवानां जीवनस्याधाररूपाः सन्ति । जलेन विना मानवानां जीवनमसम्भवमेव भवति । तद्यथा-

ईशाना वार्याणां क्षयन्तीश्चर्शणीनाम् । अपो याचामि भेषजम् ॥[231]

पूर्वमेवोक्तं यत् जलेषु अग्निषोमयोः व्याप्तिरस्ति । तत्र अग्नितत्त्वेन इमा आपः प्राणशक्तिं सोमतत्त्वेन च तेजस्वितां प्रयच्छन्ति । तद्यथा-

---

226 गोपथब्राह्मण.पू.१/३९

227 ऋग्वेद.१०/७२/६

228 अथर्ववेद.१०/८/४०

229 अथर्ववेद.३/७/५

230 अथर्ववेद.६/२४/१

231 अथर्ववेद.१/५/४

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्निषोमौ बिभ्रत्याप इत्ताः।
तीव्रो रसो मधुपृचामरङ्गम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ॥[232]

अपां भेदाः-

अथर्ववेदे अपामनेकभेदाः वर्णिताः सन्ति । यत्र-यत्रजलं तिष्ठति तत्तत् स्थानं जलस्याश्रयरूपमुक्तम् । प्राप्तिस्थानाधारेण जलस्यानेके भेदाः सन्ति । ताः यथा-

शं न आपो धन्वन्याः शमु सन्त्वनूप्याः।
शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः शिवा नः सन्तु वार्षिकीः॥[233]
अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः।
सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः॥[234]
शं त आपो हैमवतीः शमु ते सन्तूत्स्याः।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः॥[235]

उपर्युक्तेषु मन्त्रेषु वर्णितानां जलाश्रयाणां माध्यमेनापां भेदाः प्रदर्श्यन्ते । यथा-

१. धन्वन्याः- शुष्कप्रदेशात् प्राप्यमाणा आपः।
२. अनूप्याः- गर्तात् प्राप्यमाणा आपः।
३. वार्षिकीः (वर्ष्याः)- वृष्ट्या लभ्यमाणा आपः।
४. हैमवतीः- हिमालयपर्वतात् प्रस्रवतीनां नदीनामापः।
५. उत्स्याः- निर्झरादिभ्यः स्रोतेभ्यः प्राप्यमाणा आपः।
६. सनिष्यदाः- निरन्तरं प्रवहमाणा आपः।
७. सैन्धवाः- नदीभ्यः प्राप्यमाणा आपः।
८. समुद्रियाः- समुद्रेभ्यः प्राप्यमाणा आपः।

आसु विविधप्रकारेषु जलेसु **"पर्जन्यं शतवृष्ण्यम्"**[236] इत्यनेन श्रुतिवचनानुसारेण वृष्टिजलं सर्वोत्तमं शतगुणितं शक्तिसम्पन्नञ्च कथितमस्ति ।

अद्भ्यः सृष्ट्युत्पत्तिः-

जलेषु सर्वेषामपि तत्त्वानां (देवानां) उपस्थितिः वर्तते । तस्मात्कारणाद् जलेषु एव सर्वप्रथमं सृष्टेः बीजं परमात्मना प्रतिस्थापितम् । अत एव इमा आपः समस्तानामपि चराचरात्मकानां जीवानां जगतश्च जननीत्युक्ताः। यथा-

"आपो अस्मान्मातरः।"[237]

---

232 अथर्ववेद.३/१३/५
233 अथर्ववेद.१/६/४
234 अथर्ववेद.१/४/३
235 अथर्ववेद.१९/२/१
236 अथर्ववेद.१/३/१
237 यजुर्वेद.४/२

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

जलेषु अग्नेरुत्पत्तिः-

वेदमन्त्रेषु कचिद् **"अपां नपाद्"** अपां प्रजा उक्तः। आपश्च अग्नेः जननीरूपेण वेदषु स्तुताः। क्वचित् अग्निः अपां पित्तरूपेण वर्णितोऽस्ति । अर्थात् अपां घर्षणेन, मन्थनेन च अग्नेरुत्पद्यत इत्यपि स्पष्टरुपेणोक्तम्-

"अग्ने पित्तमपामसि ।"[238]

ऋग्यजुषोश्चेदं वर्णितमस्ति यत्परमवैज्ञानिकेन अथर्वानामकेन ऋषिणा सर्वप्रथमं तडागस्थाम् अपां मन्थनेन अग्निरुत्पादितः इति प्रतिपादितमस्ति । यथा-

"त्वामग्ने पुष्करादधि अथर्वा निरमन्थत ।"[239]
"अथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने ।"[240]

आधुनिकविज्ञानानुसारं रसायनविज्ञानस्य तिस्रः प्रमुखाः शाखाः सन्ति । ताः यथा- भौतिकं रसायनम् (Physical chemistry), अकार्बनिकं रसायनम् (Inorganic chemistry), कार्बनिकं रसायनम् (Organic Chemistry) च । यद्यपि अथर्ववेदे एताद्दशं विभाजनं तु नोपलभ्यते तथापि आधुनिकवैज्ञानिकानां व्यवस्थानुसारम् अत्र एतेषां विषयाणां कानिचिद् विवरणानि प्रस्तूयन्ते ।

क. **भौतिकं रसायनम् (Physical chemistry)-** रसायनविज्ञानस्य अस्यां शाखायां भौतिकजगतः उत्पत्तिविषक विवेचनं भवति । वेदेषु नासदीयसूक्त, पुरुषसूक्त, हिरण्यगर्भसूक्तञ्च सृष्ट्युत्पत्तिविषयकं वर्णनं प्रस्तौति । ऋग्वेदे अदितेः सकाशाद् दक्षस्य दक्षाच्चास्याः सृष्टेः उत्पत्तिक्रमो वर्णितोऽस्ति । यथा-

"अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि ।"[241]

ख. **अकार्बनिकं रसायनम् (Inorganic chemistry)-** अकार्बनिकरसायनान्तर्गतं धातुज-रसायनस्य वर्णनं भवति, तच्च अथर्ववेदेषु प्रचुरेण व्याख्यातम् । तत्र मणिकारः, हिरण्यकारः, अयस्तापः, इषुकारः, अञ्जनीकारादीनामुल्लेखः मिलति । विविधधातुभिः अस्त्रशस्त्रनिर्माणविषयकं वर्णनमपि अथर्ववेदेषूपलभ्यते । त्रयाणां धातूनां मिश्रणेन वस्तुविन्यासवर्णनमपि प्राप्यते । यथा-

"हरिते त्रीणि, रजसे त्रीणि, अयसा त्रीणि तपसाविष्ठितानि ।"[242]

तत्रापि एकेन धातुना निर्मितस्य वस्तुनः संज्ञा एकवृत्, द्वाभ्यां धातुभ्यां मिश्रणेन द्वितः द्विवृद्वा, त्रयाणां धातूनां मिश्रणेन च त्रिवृत् वस्तुर्भवति । तद्यथा-

"त्रयः पोषाः त्रिवृति श्रयन्ताम् ।"[243]

धातूनां परिशुद्ध्यर्थं या प्रक्रिया भवति तस्याः परिभाषिकं नाम "दक्ष" इत्यस्ति । अत एव विशुद्धस्य हिरण्यस्य नाम दाक्षायणं हिरण्यम् इति भवति । तदुक्तमथर्ववेदे-

---

238 अथर्ववेद.१८/३/५
239 ऋग्वेद.३/१६/१३
240 यजुर्वेद.११/३२
241 ऋग्वेद.१०/७२/४
242 अथर्ववेद.५/२८/१
243 अथर्ववेद.५/२८/३

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

"यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः।"[244]

अर्थात् यः कश्चिदपि जनः विशुद्धं स्वर्णनिर्मिताभूषणं धारयति स दीर्घायुं, वर्चं, बलवृद्धिञ्चाप्नोतीत्युक्तम् । एवमेव अन्येष्वपि मन्त्रेषु धातुभिः विनिर्मितानि आभूषणानि अस्त्रशस्त्रादीनि च वर्णितानि सन्ति । यथा-

"अयस्मयान् वि चृता बन्धपाशान् ।"[245]

"हिरण्यनिर्णिगुपरा न ऋष्टिः।"[246]

"तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ।"[247]

"अयस्मयेनाङ्केन द्विषते त्वा सजामसि ।"[248]

गोपथब्राह्मणेऽपि एकेन धातुना अपरं धातुं योजनस्य विधिवर्णितोऽस्ति । यथा-

"लवणेन सुवर्णं सन्दध्यात् सुवर्णेन रजतं रजतेन लोहं लोहेन सीसं सीसेन ।"[249]

एवमेव अन्येऽपि विषयाः रत्नपरीक्षा-मुक्ताभस्म-पारदभस्म-बंगभस्मेत्यादीनां परीक्षणविधिः अथर्ववेदे यत्र तत्रोल्लिखितं वर्तते ।

ग. **कार्बनिकं रसायनम् (Organic Chemistry)-** अथर्ववेदे सोमरसस्य सुरायाश्च अनेकत्र वर्णनानि उपलभ्यन्ते । एतेषां निर्माणविधेः वर्णनमपि यत्र तत्र वर्तते । सोमस्य सुरायाश्च विषये अत्र संक्षेपेण प्रस्तूयते-

सोमः- ऋग्वेदस्य नवममण्डलं सोमविषयकमेवास्ति । तत्रेदम् उक्तमस्ति यत् सोमः देवतानां पेयपादार्थविशेषः वर्तते । सोमरसस्य निष्पीडनप्रक्रिया सोमसुतिः सोमसुत्या च कथ्यते । अनया प्रक्रियया निष्पीडनकर्तुः नाम सोमसुत् सोमसुत्वन् च भवति । कार्यमिदम् अतिपवित्रं मन्यते । यथा-

"अश्नवत् सोमसुत्वा ।"[250]

रसायननिर्माणम्- अथर्ववेदस्यैकस्मिन्मन्त्रे वर्णितमस्ति यद् वृष्ट्युदके सोमादीनामासवं मिश्रयित्वा यद्रसायनं निर्मीयते तस्योपयोगेन मनुष्यो दीर्घायुं प्राप्नोति । तद्यथा-

"अपो दिव्या अचायिषं रसेन समपृक्ष्महि ।"[251]

सुरा- अथर्ववेदे बहुत्र सुराया उल्लेखोऽस्ति । द्रव्यमिदं मादकत्वात् मांसभक्षणमिव निन्दनीयमुक्तम् । तदुक्तमथर्ववेदे-

"यथा मांसं यथा सुरा ।"[252]

---

244 अथर्ववेद.१/३५/२

245 अथर्ववेद.६/३३/२

246 अथर्ववेद.१/१६/३

247 अथर्ववेद.१/१६/४

248 अथर्ववेद.७/११५/१

249 गोपथ ब्राह्मण. पू.१/१४

250 ऋग्वेद.१/११३/१८

251 अथर्ववेद.७/८९/१

252 अथर्ववेद.६/७०/१

एतदतिरिक्ता अन्येऽपि बहवो विषयाः अथर्ववेदेषु वर्णिताः सन्ति । यथा- अष्टमहारसाः, त्रिविधाः क्षाराः, रजतशुद्धिः, मुक्तादीनां रत्नानां द्रवीकरणम्, धातुहननम्, अम्लराजनिर्माणम्, लौहभेदाः, क्षारनिर्माणादिकञ्च बहुविधरासायनिकप्रयोगमत्र वर्णितमस्ति ।

सन्दर्भग्रन्थसूची

- Atharva Veda Samhita (Sayan Bhasya)- pt.Ramswaroop Sharma Gour, Choukhamba vidya vhaban, Varanasi 2011
- Gopath Brahman- Rajendra Lal Mitra And H.Vidyabhusan, Kolkatta 1862
- Manusmruti- Shri Hargovind Shastri, Choukhamba Sanskrit Seris, Varanasi 1952
- Nirukta- Pt. Chajuram Shastri, Meharchand Laxmandas, Delhi 1963
- Rigved Samhita (Sayan Bhasya)- Viswabandhu, Visweswara-nanda Vaidik Institu, Hosiyarpur, 1961
- Taitariyopanishad With Shankar Bhasya- Aanandashram Sanskrit Seris, Puna 1929
- Taitiriya Brahman- Harinarayan Aapte, Aanandashram Sanskrit Seris, Puna 1898
- Yajurved- Shri Ram Sharma Aacharya, Sanskruti Sansthan, Bareli 1969
- अथर्ववेद संहिता (सायणभाष्य)- पं.रामस्वरूप शर्मा गौड, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 2011
- ऋग्वेद संहिता (सायणभाष्य)- विश्वबन्धु, विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इन्सिटीट्यूट, होशियारपुर, 1961
- गोपथ ब्राह्मण- राजेन्द्रलाल मित्र एवं एच.विद्याभूषण, कलकत्ता 1862
- तैत्तरीयब्राह्मण- हरिनारायण आप्टे, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना 1898
- तैत्तरीयोपनिषद्- शांकर भाष्य सहित, आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना 1929
- निरुक्त- पं.छज्जूराम शास्त्री, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, दिल्ली 1963
- मनुस्मृति- हिन्दी अनुवादक, श्री हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस 1952
- यजुर्वेद- श्री राम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, बरेली 1969

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

काव्यशास्त्रे प्रयोजनस्वरूपविमर्शः

सोमा प्रामाणिकः

596/19A/1, Parui Das Para Road Nabapally,

P.O.-Sarsuna, Kolkata.

SID- 366146277

Received on- 10/12/2020 10:51:55 | **Accepted on-** 26th January, 2021

Keywords- आचार्यभरतः, आलङ्कारिकाः, काव्यप्रयोजनम्, आचार्यमम्मटः।

शोधसारः

काव्य-शास्त्र-विनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन च मूर्खानां निद्रया कलहेन च [253] ।।

धीमतां वुद्धिमतां मतिमतां जनानां कालः समयः काव्य-शास्त्रविनोदेन कवेः कर्म काव्यं रसात्मकं वाक्यं तदेव शास्त्रं काव्य-शास्त्रं तेन तदालोचनेन यः विनयः आनन्दातिशयः तेन गच्छति अतिवर्तते । परन्तु-मूर्खानां मूढजनानां व्यसनेन व्यस्यते चित्तं कर्तव्य-कार्यात् आक्षिप्यते अनेन इति व्यसनम् । सुरापान-द्युत-क्रीडादिकं तेन तज्जनित-प्रमोदेन तथा निद्रया स्वप्नेन, कलहेन वा विवादेन च कालो गच्छति, निरर्थकं क्षयं यातीत्यर्थः। अस्य श्लोकस्य सन्देशः। अस्मिन् शोधपत्रे काव्यप्रयोजनविषये बालानां तोषाय चर्चा विहिता मया।

ABSTRACT

What is the main goal of poetry? What is the difference between poetry and literature? These aspects have been discussed in this paper. Acharya Bharat and later on Acharya Mammat like several scholars defined the Poetry.

काव्यपाठतः पूर्वं काव्यस्य किमपि उपयोगित्वम् अस्ति न वेति विचारणीयम् । प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते । अर्थात् प्रयोजनं विना किमपि कर्तुं न प्रवर्तते मन्दजनोऽपि वुद्धिमतां का कथा । तत्र प्राचीनेषु अलंकारशास्त्रेषु काव्यं तथा साहित्यमिति पदद्वयं समान-पर्यायम् आरोहति। काव्यप्रकाशः तथा साहित्यदर्पणश्च समजातीयौ ग्रन्थाविति। कवेर्वाङ् निर्मितिरेव काव्यम्। कवयति इति कविः , तस्य कर्म काव्यम् इति विद्याधरः । कौति शब्दायते विमृशति रसभावान् इति कविः तस्य कर्म काव्यम् इति भट्टगोपालः । लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्म काव्यम् इति काव्यप्रकाशकारः । भामहोऽपि-

प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता ।

[253] हितोपदेशीय-मित्रलाभः-श्लोक-38 ।

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

तदनुप्राणनाज्जीवेद्वर्णनानिपुणः कविः[254]।।

तस्य कर्म स्मृतं काव्यम् इति । तदेतत्काव्यशब्दव्युत्पत्तिकथनम् । चारुताशलिशब्दार्थयुगलं काव्यमिति रूढोऽर्थः । कवेः सुनिपुणं कर्मेति कृत्वा शब्दमयस्य शिल्पस्य काव्यमिति नाम सम्पन्नम्। काव्यस्य वर्णनीयं वस्तु यथा तथा वा भवतु, किन्तु सर्वथा इदं पाठकचित्तानां चमत्कृति-विधायकमित्यत्र नास्ति लेशतोऽपि संशयावसरः। तत्र काव्यस्य उपादेयत्वे प्राच्यानां पाश्चात्यानां च विदुषां महती विप्रतिपत्तिः अस्ति। तथाहि केचन प्राच्याः पण्डिताः वदन्ति- यद्यपि असौ काव्यनाटकं श्रृणोति तथापि निरर्थकमेव तच्छ्रवणं तेन सुकृतमार्गज्ञानाभावात् । अतःसत्सु वेदादिशास्त्रेषु पुरुषार्थानु शासकेषु कथं नाम काव्यस्य विरचनं पठनं च सम्भवेदिति। आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यः मन्तव्यः निदिध्यासितव्यः इत्येव उपनिषदः शासनं जागर्ति। न खलु आत्मनः श्रवणं मननं निदिध्यासनं दर्शनं च काव्यपाठात् सम्भवति। अतः काव्यात् पुरुषार्थस्य सिद्धिः कथं जायेत। आत्मदर्शनं तथा मोक्षरूपं परमपुरुषार्थं प्रति काव्यस्य उपयोगाभावेऽपि धर्मज्ञानार्थं तद् अध्ययनम् आवश्यकम्। तत्र धर्मज्ञानार्थं धर्मशास्त्रे विद्यमाने सति इदमपि न उपयोगावहम्। चतुर्वर्गान्तर्गतयोः अर्थ-काम-सपत्त्योरपि अर्थशास्त्र-कामशास्त्रज्ञानाधीनत्वात् काव्यपाठः सर्वथा अकिञ्चित्करः। अपुरुषार्थसाधनमिदं काव्यं सर्वथा हेयम्। तथा च अयम् आभानकः काव्येन हन्यते शास्त्रम्। तथा च काव्यस्य नामोच्चारणमपि न कर्त्तव्यम्। उक्तं च काव्यालापांश्च

वर्जयेत्। न केवलं प्राच्यानां विपश्चिताम् एव अयं विचारः। तत्र पाश्चात्यदेशीयैः प्लेटोप्रमुखैः अपि पण्डितैः काव्यस्य उपादेयत्वमेव संशयितम्। ते एवं कथयन्ति- काव्यं हि नाम केवलं प्रकृतेः अनुकरणमात्रम्। अत्र न किमपि मौलिकं वस्तु विद्यते। काव्यपाठो हि भावप्रवणताम् एकदेशीयतां च सुतरां वर्धयति। अतएव काव्यस्य विरचने तत्पठने च यत्नो न कर्तव्यः। न किमपि श्रेयोऽस्मात् सम्भवति। प्राच्यानां पाश्चात्यानां च विदुषां मतमिदं न विचारसहम्। तत्रभवता मम्मटभट्टेन काव्यप्रकाशे समीचीनया दिशा अस्य मतस्य निराकरणं विहितम्। तन्मते कविसृष्टिः इयं ब्रह्मणः सृष्टेर्विलक्षणा वर्त्तते। कविः न केवलं करोति वस्तुभूतस्य जगतः अनुकरणमात्रम्। नियति-कृतनियमरहिता इयं कविसृष्टिः दैवस्य शक्तिं प्रतिपदं खर्वति। कविः स्वकीयेन एव प्रतिभावलेन वस्तुराशिं शब्दाकारेण परिणमस्य विधातुः सृष्टस्य जगतो बहिर्विचित्रं नवं जगन्निर्मीति। परन्तु काव्यजगद् अलौकिकमनवधिकं च ।इदं तत्त्वतः अनिर्वचनीयम् । तथा चोक्तम् आनन्दवर्धनाचार्य्येण- अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः। यथास्मै रोचेत विश्वं तथेदं परिवर्त्तते। अपि च कविवाङ् निर्मितिः ह्लादैकमयी नव-रसरुचिरा च। ब्रह्मणः सृष्टौ सुखं दुखं च अस्ति, सत्व-रजस्तमसां विलासोऽपि वर्त्तते, किन्तु कविसृष्टिः इयं परमानन्दे एव सदा पर्य्यवस्यति। प्रथितयशसा पाश्चात्यकविना शेलि-महोदयेन उक्तम्- काव्यं हि नाम तत्त्वतः कश्चन दैवो व्यपारः। काव्यमिदं परमानन्द-प्राप्तिहेतुकम् इति कृत्वा सज्जनाः वदन्ति- संसारविषवृक्षस्य द्वे एव रसवत् फले। काव्यामृत-रसास्वादः सङ्गमः सुजनैः सह। इयं पुनः कविसृष्टिः अनन्यपरतन्त्रा। अतः किमपि बाह्यम् उपादानं निमित्तं वा नापेक्षते । प्रजापतेः सृष्टिः कर्मफलाधीना सदैव बाह्यम् उपादानम् अपेक्षते। काव्यपाठेन जातोऽयं लोकोत्तरः काव्यानन्दः अभिनवगुप्तमते परब्रह्मास्वाद-सचिवः विश्वनाथमते च ब्रह्मास्वाद-सहोदरः इत्याख्यां व्रजति।

काव्यस्य उपादेयत्वे सत्यपि कविसृष्टिः इयं सत्या मिथ्या वा इत्यत्र संशयावसरो वर्त्तते। तत्र वाणभट्टादीनां कादम्बरीमहाश्वेता प्रभृतयः कथानायिकाः खलु कल्पनैकनिर्मिताः। अतः कल्पनैकसंश्रयं मिथ्याभूतं काव्यज्ञानमिदं नादरणीयम्। काव्ये तावदानन्दसृष्टिर्वर्त्तते इति सत्यम्। परन्तु सा न सत्या। कविर्मिथ्यानन्दं जनयति सर्वत्र सञ्चारयति च। अतः कविसृष्टिरियं सर्वथा अकल्याणकरी हेया च।

काव्यालापांश्च वर्जयेत् इति मतानुयायिनः प्रति समालोचकप्रवरेण क्रोचे-महोदयेन उक्तम्- काव्ये सत्यासत्ययोर्विरोधः निरर्थकः, यतः काव्यं न प्रमाणशास्त्रम्। किन्तु क्रोचे-वचनमिदम् अश्रद्धेयं प्रतिभाति। शेक्षपीयर-वचनम् अस्मभ्यं बहु रोचते, यतस्तत् सत्यमेवेति प्रतिभातितराम्। तत्रभवता आनन्दवर्धनाचार्य्येण अभिनवगुप्तपादेन चोक्तम्- न्यायशास्त्रस्य प्रमाणपरम्परा काव्ये प्रयोज्या न भवतीति कृत्वा काव्यमिदं सत्यासत्यविवर्जितमिति तु न ।।

काव्यप्रयोजनविषये आभरतात् जगन्नाथं यावत् आलंकारिकाः स्वकीयं मतादर्शनं निगदितवन्तः । नाट्यशास्त्रे आचार्यः भरतः प्रयोजनविषये उक्तवान्-

---

254 काव्यालङ्कारः

धर्मं यशस्यम् आयुष्यं हितं वुद्धिविवर्धनम् ।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति ।।

अन्यच्च- **दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम् ।**
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति ।।

आचार्यः भामहः स्वकीये काव्यलङ्कारग्रन्थे उक्तवान्-

धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च ।
करोति कीर्तिं प्रीतिञ्च साधुकाव्यनिबन्धनम् ।।

तेषु आचार्यस्य ममट्टस्य काव्यप्रयोजनमधिकतया उत्कृष्टम् यतः स आचार्यः समन्वयवादी । समेषां पूर्ववर्तिनाम् आचार्याणां मतं संगृह्य स्वकीये काव्यप्रकाशग्रन्थे निगदितवान् ।

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शवेतरक्षतये ।
सद्यःपरनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे[255] ।। इति ।।

सिद्धार्थं सिद्धसम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्तते ।
शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः ।।

प्रवृत्तिप्रयोजकज्ञानविषयत्वम् अनुबन्धत्वम् । इदं मदिष्टसाधनम् । इदम्- विषयः । इष्टम्- प्रयोजनम् । साधनम्- सम्बन्धः । मत्- अधिकारी । कृतिसाध्यता- इदं मत्कृतिसाध्यम् । इष्टसाधनता- इदं मदिष्टसाधनम् । इष्टसाधनता । कृतिसाध्यता । अनुबध्यते अनेन इति अनुबन्धः अनुबन्धनं वा । अनुबन्धचतुष्टयम्- अधिकारी विषयः सम्बन्धः प्रयोजनं च । अत्र कृत् विद् युज् शब्दा भावे क्विवन्ताः । काव्यं लोकोत्तरवर्णनानिपुणस्य कवेः कर्म लोकोत्तरवर्णमित्यर्थः । इतरफलापेक्षया प्राधानाद् यशसः प्रथममुद्देशः । अर्थकृते द्वितीयपुरुषार्थलाभाय । सम्पदादित्वाद्भावे क्विप् । व्यवहारविदाचारज्ञानम् । राजसदसि कथं वर्तितव्यमित्यादि । शिवादितरदमङ्गलम् । अमङ्गलमरणादिशब्दानामनुचार्यत्वात् स कथाशेषतां यातः समालिङ्ग्य मरुत्सखमितिवत् । श्रीमनन्नायन्नादिस्तुत्यपूर्वद्वाराऽमङ्गलपिरहारो मयूरकवेरिव सूर्यशतकेन । स हि कुष्ठरोगपरिपीडितः पद्यशतकेन सूर्यं स्तुत्वा दिव्यं वपुराप्तवानिति लोके प्रसिद्धिः । सहृदयस्य तु काव्यश्रवणान्तरमेव सकलप्रयोजनेषूत्तमं स्थायिभावास्वादनसमुद्भूतं वेदान्तरसम्पर्कशून्यं रसास्वादरूपमानन्दं सद्यःपरनिर्वृतिं निर्मिमीते । उपदेशयुजे इति राजादिगतपृथिवीपालनादिसमुचिताचारपरिज्ञानं रामादिवद्वर्तनमिष्टसाधनं न तु रावणादिवदित्युपदेशं च सत्कृत्येषु प्रवृत्युपदेशाय दुष्कृत्येषु निवृत्युपदेशाय भवति च । काव्यास्वादनकाले कवेरपि सहृदयान्तःपातितया रसास्वादः । ननु नीतिशास्त्रादेरपि उपदेशपरतया तत्रैव प्रवृत्तिः स्यात् । किमिति काव्ये इत्यत आह- कान्तसम्मिततयेति । तथा हि शब्दस्तावत् त्रिविधः प्रभुसम्मितः , सुहृत्सम्मितः कान्तासम्मितश्च । तत्राद्यो

यथा शब्दप्रधानो वेदः स हि प्रभुरिव त्वमित्थं कुरु इति नः समाज्ञापयति । ततश्च नियुक्तानां सन्धावन्दनादौ प्रवृत्तिर्भवति । सुहृत्सम्मितो यथा पुराणेतिहासादिः । स तु सुहृदिव एवं कृते इष्टं , एवं कृते चानिष्टम् इति सदसन्मार्गमात्रं प्रदर्शयति । न स्वादिशति । तृतीयस्तु ताभ्यां वलक्षणाः काव्यलक्षणः । स हि कान्तेव सरसकोमलैर्वचोभिः स्वाभिमुखीकृत्योपदेशं ग्राहयति । ततश्च सुकुमारमतीनां नीरसशास्त्रेष्वशक्यप्रवेशानां राजकुमाराणां सौकर्येण कृत्याकृत्यप्रवृत्तिनिवृत्युपदेशायास्य उपयोगः । कटुकौषधादिवबालानां शर्करायामिवात्रापि इतरापेक्षया सादरा प्रवृत्तिः स्यादिति सर्वथैव काव्यस्य सफलत्वम् । यदाहुः धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च । करोति प्रीतिं कीर्तिञ्च साधुकाव्यनिषेवणमिति । काव्याद्यशःप्रभृति लभ्यत इति एतद् दृष्टान्तेन दर्शयति- कालिदासादीनामिति । श्रीहर्षादेरपादानात् । धावक इति कविनाम स हि रत्नावलीनाम्नीं नाटिकां श्रीहर्षनाम्ना

---

[255] काव्यप्रकाशः-1/2 ।

प्रणीय बहुधनमवाप्तवानिति लोकवादः । समनन्तरमेवेति सद्यः परस्यार्थः , काव्यश्रवणाव्यवहितोत्तरक्षणे इत्यर्थः । विगलितमपक्रान्तमन्यद्वेद्यं घटादि यस्मिन् आनन्दं चर्वणादिपर्यायम् । प्रभुसम्मितशब्दप्रधान वेदादिशास्त्रेभ्य इत्येतस्य , सुहृत्सम्मितार्थतात्पर्यवत्पुराणेति- हासेभ्यश्चेत्यस्य च विलक्षणमित्यन्नान्वयः । वैलक्षण्ये हेतुमाह शब्दार्थयोरिति । रसस्य शृङ्गारादेरङ्गभूतो व्यापारो व्यञ्जनादि शब्दार्थयोस्तन्निष्पाद्यरसाभिव्यञ्जकमात्र- तयाऽप्रधानत्वाद् गुणाभावेन रसस्यैव प्राधान्यमित्यर्थः । अत एव शब्दार्थ- प्रधानवेदपुराणादिभ्योऽस्य वैलक्षण्यम् । यथायोगमिति-कवेरपि सहृदयान्तर्गतत्वेन रसास्वाद इति भावः । रसस्य तदेकवेद्यत्वात् । शब्दप्रधानेति । अस्य द्वेधा व्याख्यानम् । तथा हि वेदस्याऽपौरुषेयत्वात्तद्गताः शब्दा एव प्रयोजका इति शाब्दीभावना प्रवर्तिकेति वेदस्य शब्दप्रधानत्वम् । यद्वा वेदगतानुपूर्वा- पाठेनैवापूर्वमुत्पद्यते न तु पर्यायशब्दैः यथा अग्निमीळ इत्यत्र न वह्निमीले इति । अतस्तस्य शब्दप्रधानत्वम् । अत्रेदं बोध्यम् । शब्दप्रधानवेदस्य नियतं प्रवर्तकत्वेऽपि नरकादिभयात्सन्ध्यावन्दनादौ प्रवृत्तिः न पुनरुत्साहात् । गुर्वाज्ञाजन्यप्रवृत्तिवत् । पुराणेतिहासानाञ्च सुहृत्सम्मितार्थतात्पर्यवत्वेन प्रवर्तकत्वेऽपि न तेभ्यो नियमेन प्रवृत्तिः , काव्ये तु नियमेन प्रवृत्तिरुत्साहपूर्विका चेति विशेषः । न तु केषाञ्चित् काव्येऽपि प्रवृत्तिर्न दृश्यते तत्कथमिति चेन्न । रसास्वादे वासनायाः कारणात्वात्तदुक्तम् निर्वासनास्तु रङ्गान्तः काष्ठकुड्यासमसन्निभाः इति ।

आचार्यविश्वनाथमते स्वकीये साहित्यदर्पणग्रन्थे काव्यप्रयोजनविषये उक्तिरस्ति-

चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि ।
काव्यादेव यतस्तेन तत्स्वरूपं निरूप्यते[256] ।।

अधुना के नाम तत्वनिर्णयाय व्याप्रियन्ते । दार्शनिकाः कवयश्च लोके तत्ववदर्शित्वेन सुविदिताः । तेषां वैज्ञानिका दार्शनिकाश्च प्रत्यज्ञादिप्रमाणमवलम्ब्य तत्वनिर्णियाय प्रयतन्ते । अस्य फलस्वरूपं पुनर्यत् सुखं तैर्लभ्यते, तत्तु निरवच्छिन्नं सुखं न भवति। परन्तु कविः अपरोक्षानुभूत्या सहृदयसाधनं परमानन्दं सदैव उपभुङ्क्ते । एकमेवाद्वितीयं सत्यं सत्ताज्ञानानन्दरूपेण त्रिविधं प्रतिकविः अपरोक्षानुभूत्या सहृदयसाधनं परमानन्दं सदैव उपभुङ्क्ते । एकमेवाद्वितीयं सत्यं सत्ताज्ञानानन्दरूपेण त्रिविधं प्रतिभाति । तत्राद्यं द्वयं दार्शनिक-वैज्ञानिकगवेषणयोःप्रतिपाद्यं वस्तु। अन्तिममानन्दरूपं हि कवेः केवलं प्रत्यक्षसिद्धम्। आनन्दो हि सत्यस्य यथार्थं स्वरूपम् । अविद्याच्छन्नैर्मनुष्यैरस्य प्रकृतं रूपं समुद्घाटयितुं न शक्यते। काव्यं हि नाम केवलं पुरुषार्थं न सम्पादयति मानवानां निरतिशयं कल्याणं विदधाति च । अतो दुःखपूर्णेऽस्मिन् संसारे लोकोत्तराह्लादजनकं काव्यानुशीलनं सर्वथा उपयोगावहम् ।

सन्दर्भग्रन्थसूची

(१) काव्यप्रकाशः, आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावलिः, नागोजीभट्टविरचितोद्द्योतयुत- गोविन्दठक्करविरचित प्रदीपसमेतः, (सम्पा.) विनायक गणेश आपटे, 1929 ई
(२) काव्यप्रकाशः, आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावलिः, श्रीमाणिक्य चन्द्र विरचितसंकेतसमेतः (सम्पा.) विनायक गणेश आपटे, 1921 ई.
(३) काव्यप्रकाशः, संस्कृत कोलेज, कलिकाता. सान्धिविग्रहिकश्रीधरकृतटीकया समेतः, (सम्पा.) शिवप्रसाद भट्टाचार्यः, 1881 तमे शकवत्सरे .
(४) काव्यप्रकाश-रहस्यम्- सीतारामजयरामजोशी , चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, सं0 2016.
(५) भारविः,किरातार्जुनीयम्,(सम्पा.) श्रीअशोककुमारवन्द्योपाध्यायः, कलिकाताः संस्कृतपुस्तकभाण्डारः, १४०५ बङ्गाब्दः।
(६) साहित्यदर्पणः, संस्कृत बुक् डिपो कलिकाता-6,(सम्पा.) उदय वन्द्योपाध्यायः, 1998 ई.

[256] साहित्यदर्पणः-1/2 ।

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

संस्कृतसाहित्य में नारियों की स्थिति

डॉ० विवेकशर्मा
सहायकाचार्यः, संस्कृतविभागः
हिमाचलप्रदेशकेन्द्रीयविश्वविद्यालयः: , धर्मशाला, जिला कांगड़ा, हिमाचलप्रदेश

SID- 316849376

Received on-10/13/2020 18:01:19 | **Accepted on-** 26th January, 2021

प्रमुख शब्द- जननी, स्त्री, कौशल्या, तारा, सीता, संस्कृति, भगवती शक्ति, शिव, शव, पूजनीया स्त्री , भ्रूण हत्या , पत्नी, कन्योत्पत्ति, व्यवहार, परम पवित्र, हीन दृष्टि, पण्डिता, सुभद्रा, रुक्मणी, कुन्ती, गान्धारी, सत्यभामा, गृहणी, शकुन्तला, संवेदनशीलता, अत्याचार, हिन्दू

शोध-सार

जननी रूप में विराजमान स्त्री का हिन्दु समाज में विशेष महत्त्व है । हमारी संस्कृति में शिव को भी शक्ति के हीन होने पर शव मात्र बतलाया गया है । सौन्दर्यलहरी में आदि शङ्कराचार्य कहते हैं भगवती शक्ति से युक्त होकर ही शिव सृष्टि कार्य में संलग्न होते हैं, उनके बिना तो शिव स्पन्दन भी नहीं कर सकते[257] । रामायण महाभारत काल में भी विविध दृष्टि से स्त्रियों की दशा विकासोन्मुखी प्रतीत होती है । रामायण में कौशल्या और तारा को मन्त्रविद् कहा गया है[258] । साथ ही सन्ध्या करती हुई सीता का वर्णन भी उल्लेखनीय है[259] । हमारी संस्कृति में कन्या को अत्यन्त शुभ माना गया है, रामायण में वर्णित है कि जब श्री राम वनवास से सीता सहित अयोध्या लौटते हैं तो उनके स्वागतार्थ जो विशिष्ट जन बुलाये गये थे उनमें कन्यायें प्रमुख थीं[260] ।महाभारत के पद पद में स्त्रियों का महिमा गान गाया गया है, जहाँ वह धनलक्ष्मी के रूप में स्वीकृत है । भारत की संस्कृति में कभी भ्रूण हत्या नहीं होती अपितु यज्ञ द्वारा पुत्री की उत्पत्ति की याचना प्रभु से की जाती थी जैसे कि श्रीमद्भावत पुराण में मनु की पत्नी ने कन्योत्पत्ति की याचना की[261] ।

ABSTRACT

A woman's role as a mother has special importance in Hindu society. In our culture, *Shiva* has also been viewed/considered as a dead Godly being without the accompanying power of female. During the *Ramayana* and the *Mahabharata* periods also, the condition of women was progress- oriented. In our culture, a girl has been considered very auspicious. It is our duty to protect the revered woman. The *Smritikar* says that if a woman is not happy in a house, nothing positive happens in such a house. And if a woman of the house is glad and contented enough, the whole house is filled with a happy ambience, instructing thus, the *Smritikar* has preached to the

---

257 सौन्दर्यलहरी

258 रामायण, ८ / ६८

259 रामायण, ५ / १५ / ४८

260 अक्षतं जातरूपञ्च गावः कन्याः सहद्विजः ।
नरा मोदकहस्ताश्च रामस्य पुरतो ययुः ॥ रामायण, ६ / १२ / ८३८

261 तत्रश्रद्धा मनोः पत्नी होतारं समयाचत् । दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य प्रयोवता ॥ श्रीमद्भागवतपुराणम्, ९/१/१४

upcoming society that no work or behavior should ever be done in the family, which causes a woman of the house to feel sad. In this way, women have been given due respect and dignity since times immemorial and it is clearly evident in our ancient literature.

जननी रूप में विराजमान स्त्री का हिन्दु समाज में विशेष महत्त्व है । हमारी संस्कृति में शिव को भी शक्ति के हीन होने पर शव मात्र बतलाया गया है । सौन्दर्यलहरी में आदि शङ्कराचार्य कहते हैं भगवती शक्ति से युक्त होकर ही शिव सृष्टि कार्य में संलग्न होते हैं, उनके बिना तो शिव स्पन्दन भी नहीं कर सकते[262] । रामायण महाभारत काल में भी विविध दृष्टि से स्त्रियों की दशा विकासोन्मुखी प्रतीत होती है । रामायण में कौशल्या और तारा को मन्त्रविद् कहा गया है[263] । साथ ही सन्ध्या करती हुई सीता का वर्णन भी उल्लेखनीय है[264] । हमारी संस्कृति में कन्या को अत्यन्त शुभ माना गया है, रामायण में वर्णित है कि जब श्री राम वनवास से सीता सहित अयोध्या लौटते हैं तो उनके स्वागतार्थ जो विशिष्ट जन बुलाये गये थे उनमें कन्यायें प्रमुख थीं[265] ।

महाभारत के पद पद में स्त्रियों का महिमा गान गाया गया है, जहाँ वह धनलक्ष्मी के रूप में स्वीकृत है । भारत की संस्कृति में कभी भ्रूण हत्या नहीं होती अपितु यज्ञ द्वारा पुत्री की उत्पत्ति की याचना प्रभु से की जाती थी जैसे कि श्रीमद्भावत पुराण में मनु की पत्नी ने कन्योत्पत्ति की याचना की[266] । ऐसी पूजनीया स्त्री की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है –

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः प्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद् रक्ष्या विशेषतः[267] ॥

ऐसा ही निर्देश मनु ने भी किया है कि हमें स्त्री की रक्षा में प्रत्येक क्षण तत्पर रहना है –

पिता रक्षति कौमारेभर्ता रक्षति यौवने । ,
रक्षन्ति स्थविरे पुत्राः न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति[268] ।।

स्मृति ग्रन्थों में भी स्त्रियों का उल्लेख अतीव सम्मानपूर्वक किया गया है । मनुस्मृति में प्रतिपादित स्त्रियों का वर्णन अत्युत्कृष्ट है । यहाँ स्त्री के विना पुरुष को अर्ध मात्र माना गया है –

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषो भवेत् ।
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः[269] ॥

मनु के इस तथ्य की पुष्टि व्यास संहिता में भी हुई है[270] । आगे मनु कहते हैं कि जहाँ स्त्रियों का आदर है वहीं की सभी क्रियाये सफलता को प्राप्त होती हैं । अन्यथा स्त्री के सम्मान न होने पर उस घर में की जाने वाली सब क्रियायें निष्फल हैं । यहाँ पूजनीया का अर्थ है कि वह परिवार में सर्वोत्कृष्ट मानी जाती थी ।

---

262 सौन्दर्यलहरी
263 रामायण, ८ / ६८
264 रामायण, ५ / १५ / ४८
265 अक्षतं जातरूपञ्च गावः कन्याः सहद्विजः ।
नरा मोदकहस्ताश्च रामस्य पुरतो ययुः ॥ रामायण, ६ / १२ / ८३८
266 तत्रश्रद्धा मनोः पत्नी होतारं समयाचत्। दुहितॄर्थमुपागम्य प्रणिपत्य प्रयोवता ॥ श्रीमद्भागवतपुराणम्, ९/१/१४
267 महाभारत, उद्योगपर्व, ३८ / ११
268 मनुस्मृतिः, ९३/
269 मनुस्मृतिः, १ / ३२
270 यावन्त विन्दते जाया तावदर्धोभवेत् पुमान् ।

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः[271] **॥**

आगे स्मृतिकार कहते हैं कि घर में यदि स्त्री प्रसन्न नहीं है तो उस घर में कुछ भी अच्छा नहीं लगता है । और यदि घर की स्त्री प्रसन्न है तो पूरा घर प्रसन्न है, ऐसा कहकर स्मृतिकार ने आगामी समाज को निर्देश दिया है कि परिवार में कभी भी कोई ऐसा कार्य या व्यवहार न किया जाये जिससे घर की स्त्री को दुःख हो -

स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद् रोचते कुलम् ।
तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते[272] **॥**

जन्मदात्री माता की महिमा का गान गाते हुये मनु ने अत्यन्त मार्मिकता से मातृ समाज के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करते हुये कहा है कि सन्तानोत्पत्ति में जो कष्ट माता ने सहा है उस ऋण को सौ वर्षों में भी चुकाया नहीं जा सकता है[273] । मनु ने तो यहाँ तक कहा है कि सुन्दर सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों के द्वारा अपनी पत्नी का सम्मान करना चाहिये[274] । इसके अतिरिक्त मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, पाराशरस्मृति-कौटिल्यार्थशास्त्र में स्त्री धन एवं स्त्रियों के उत्तराधिकार सम्बन्धी विस्तृत विवेचन किया गया है । जिसका अनुसरण वर्तमान में न्याय व्यवस्था में भी दृष्टिगोचर होता है । यद्यपि प्राचीन शास्त्रों में स्त्री की रक्षा करना दायित्व बताया गया है, लेकिन इसके साथ ही उसे सशक्त बनाने का भी दृष्टिकोण हमारी हिन्दु संस्कृति में रहा है । रामायण में कैकेयी के युद्धविद्या में निष्णात् होने की बात कही गई है, जो युद्ध में दशरथ की सहायता करती है । महाभारत में यह घोषणा की गई है कि स्त्री रत्न चाहे किसी वंश की भी हो उससे विवाह किया जा सकता है, क्योंकि नारी सर्वदा परम पवित्र ही है । भारतीय परम्परा में स्त्री को कभी हीन दृष्टि से नहीं देखा गया और न ही कभी उसे अपवित्र माना गया है । हमारी सनातन परम्परा में तो स्त्री को शाश्वत पवित्र एवं उत्कृष्ट माना गया है, यथा -

स्त्रियः पवित्रमतुलमेतद्[275] **॥**
स्त्रीरत्नं दुष्कुलाच्चापि विषादप्यमृतं पिबेत् ।
अपुष्या हि स्त्रियो सनमाप इत्येव धर्यतः[276] **॥**

महाभारत में कहा गया है कि नारी के बिना किसी भी पति का धार्मिक कार्य अपूर्ण है –

नास्ति भार्या समो लोके सहायो धर्मसङ्ग्रहे[277] **॥**
श्रुत्वा दम्पती धर्म वै सहधर्म कृतं शुभम्[278] **॥**

---

271 मनुस्मृतिः, ३ / ५६
272 मनुस्मृतिः, ३ / ६२
273 यं मातापितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम् ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि ॥ मनुस्मृतिः, २ / २२७
274 तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ॥ मनुस्मृतिः, ३ / ५९
275 महाभारत, आदिपर्व, ७४ / १११
276 महाभारत, शान्तपर्व, १६५ / ३२
277 महाभारत, शान्तिपर्व, १४४ / ३९
278 महाभारत, अनुशासनपर्व, १४६ / ३९

CONTACT US- JAHNAVISANSKRITJOURNAL@GMAIL.COM WEBSITE-JAHNAVISANSKRITEJOURNAL.IN

महाभारत में द्रौपदी को "पण्डिता" कहा गया है । यहाँ स्त्रीयों को संगीत नृत्यादि कला के शिक्षण प्रदान करने का वर्णन है । अर्जुन अपने अज्ञात वास के समय बृहन्नला बनकर उत्तरा को उसके घर पर संगीत एवं नृत्य सिखाता है । इसके अतिरिक्त सुभद्रा, रुक्मणी, कुन्ती, गान्धारी, सत्यभामा इत्यादि आदर्श मूर्त नारियों का चित्रण महाभारत में किया गया है ।

संस्कार एवं संस्कृति की बात करें तो पूरे संसार में भारत की अपनी एक विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान है । जिस संस्कृति का महत्त्वपूर्ण अङ्ग परिवार संस्था है । भारत की उत्कृष्ट पारिवारिक व्यवस्था ही है जो हमारी संस्कृति को उच्चादर्शों का प्रतिरूप बनाती है । एक परिवार की गृहणी महत्त्वपूर्ण अंग है, उसके बिना परिवार की कल्पना भी नहीं की जा सकती । अत एव शास्त्रों में कहा गया है – **न गृहं गृहमित्याहुः गृहणी गृहमुच्यते** । वैदिक वाङ्मय में तो स्त्री को गार्हपत्याग्नि बतलाया गया है[279] ।

स्त्री को पवित्र और शुद्ध हमारी हिन्दु संस्कृति ने माना है । उत्तररामचरित में श्री राम माता सीता के विषय में कहते हैं कि सीता उसी तरह पवित्र है जैसे कोई तीर्थ का जल या अग्नि पवित्र होती है –

उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः ।
तीर्थोदकञ्च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः[280] ॥

स्त्री की सर्वगुणसम्पन्नता को प्रकाशित करते हुये कालिदास रघुवंश के अजविलाप प्रसङ्ग में वर्णित करते हैं कि इन्दुमती उसके लिये गृहणी, सचिव, सखी, प्रिया, शिष्या इत्यादि सब थी –

गृहणी सचिवः सखी मिथ प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।
करुणा विमुखेन मृत्युना हरता त्वां वद किं न मे हतम्[281] ॥

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में स्त्री सम्मान को प्रकाशित करते हुये दुष्यन्त कहते हैं कि साधारण से वस्त्र पहनकर क्षीण होकर सामान्य जीवन जीते हुये शकुन्तला ने मुझ जैसे निष्ठुर के लिये व्रत पालन किया[282] । यद्यपि दुष्यन्त विशाल साम्राज्य का साधन एवं सम्पत्ति सम्पन्न चक्रवर्ती राजा था तथापि शकुन्तला के प्रति उन्होंने अपनी श्रद्धा प्रकट कर स्त्री सम्मान को सर्वोपरि सिद्ध किया । अभिज्ञानशाकुन्तलम् के इस सन्दर्भ में दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला के त्याग के प्रति सम्मान दिखलाया गया है । हिन्दू संस्कृति में एक बेटी अपने पिता को कितनी प्रिय है इसका प्रतिपादन कई शास्त्रों में दृष्टिगोचर होता है । अत्यन्त सुन्दर ढंग से अभिज्ञानशाकुन्तलम् में शकुन्तला के पति गृह जाने के प्रसङ्ग में महर्षि कण्व की मनोस्थिति का बहुत ही मार्मिक चित्रण करते हुये कहा गया है कि कण्व को शकुन्तला के जाने पर दुःख तो होता है पर साथ ही उसे सन्तोष प्रदायक सुख का अनुभव भी हो रहा है । किन्तु इस सुख-दुःख की उहापोह कि स्थिति में एक गम्भीर दुःख की अनुभूति भी कण्व को सतायी जा रही है –

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः ।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा[283] ॥

---

279 जाया गार्हपत्यः । ऐतरेयब्राह्मणम्, ८/२४
280 उत्तररामचरितम्, १ / १३
281 रघुवंशम्, ८ / ६८
282 वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः ।
अतिनिष्करुणस्य शुद्धशीला मम दीर्घं विरहव्रतं बिभर्ति ॥ अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ७ / २१
283 अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४ / २१

इसी प्रसङ्ग में स्त्री की संवेदनशीलता को कालिदास प्रतिपादित करते हुये कहते हैं कि हे वृक्षों आज उसी शकुन्तला की विदाई हो रही है जो आपको जल प्रदान किये बिना जल एवं भोजन तक ग्रहण नहीं करती थी । और आपका पुष्प प्रसूति का काल उस के लिये कोई उत्सव से कम नहीं था । यद्यपि उसे आपके पल्लव अत्यन्त प्रिय थे लेकिन आपको कष्ट न हो इसलिये वह तोडती तक भी नहीं थी –

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या ।
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ॥
आद्ये वः कुसुमप्रसूति समये यस्या भवत्युत्सवः ।
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्[284] ॥

कई लोगों को यह संशय है कि दाम्पत्य की व्यवस्था जो भारत वर्ष में प्रचलित है उसमें पत्नी को पर्याप्त सम्मान नहीं है । इस प्रवाद का निवारण करते हुये महाकवि भारवि उत्तररामचरितम् में दाम्पत्य की रमणीय एवं अलौकिक व्याख्या करते हुये शिक्षा देते हैं कि आजीवन पत्नी के साथ समान भाव से प्रेम पूर्वक रहना चाहिये । किसी भी स्थिति में स्नेह कम नहीं हो अर्थात् सभी अवस्थाओं में अनुकूल हो । यहाँ तक कि वृद्धावस्था में भी यह स्नेह कम नहीं होना चाहिये । ऐसे ही दुर्लभ स्नेहात्मक सम्बन्ध की प्रार्थना करनी चाहिये, जो श्रेष्ठ मानवों को ही प्राप्त होता है –

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्वस्थासु यद् ।
विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः ।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं ।
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत् प्रार्थ्यते[285] ॥

उक्त विवेचन से यह तो सिद्ध ही है कि प्राचीन भारतीय संस्कृति स्त्री विरोधी कदापि नहीं है । यहाँ पर स्त्री पर अत्याचार की कठोर निन्दा की गई है[286] । यह तो वह परम्परा है जिसका मानना है कि “कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति[287]” । इस तरह हिन्दु संस्कृति के द्योतक प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य के दृष्टिकोण में नरियाँ निःसन्देह सम्मानीया ही हैं । जिसका अनुसरण हमें आदर्श हिन्दु समाज में दिखता ।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. **मनुस्मृतिः,** रामेश्वरभट्टः, चौखम्बासंस्कृतप्रतिष्ठानम्, २०११
2. **रघुवंशम्,** ब्रह्मशङ्करमिश्र, चौखम्बा सुरभारती आफिस, बनारस १
3. **रामायण,** गीताप्रेस गोरखपुर
4. **लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास,** कृष्णप्रसादखण्डेलवालः, परिमलपब्लिकेशनप्रकाशनम्, दिल्ली, २००९
5. **श्रीमद्भागवतम्** प० रामतेजपाण्डेयः चौखम्बासंस्कृतप्रतिष्ठानम्, दिल्ली, पुनर्मुद्रित १९९६

284 अभिज्ञानशाकुन्तलम्, ४ / ८
285 उत्तररामचरितम्, १ / ३९
286 न वै स्त्रियं हनन्ति । शतपथब्राह्मणम्, ११/४/३/२
287 देव्यपराधक्षमापनलस्तोत्रम्

आधुनिक सन्दर्भ में मानव-जीवन संरक्षण हेतु संस्कृत साहित्य की उपादेयता

डा. गायत्री गिरीश मिश्रा
Campus of BRD BD Girls Degree College,
Nandana Ward(west),Barahaj, Deoria, UP,PIN 274601

SID- 350888202

Received on--9/1/2020 20:54:38 | **Accepted on-** 26th January, 2021

प्रमुख शब्द-मानव, स्वास्थ्य, आर्युवेद, योगा-थेरेपी, अथर्वेद, ऋग्वेद, पर्यावरण ।

शोध-सार

संस्कृत वाङ्मय में आधिदैविक, आधि भौतिक और आध्यात्मिक दुःखत्रय को दूर करने के उपाय बताये गये हैं। योग-दर्शन, आयुर्वेद व अन्य ऐसे प्राचीन ग्रंथ हैं जिनमें मानवीय स्वास्थ्य एवं उनकी देख-रेख से सम्बन्धित कुछ मूलभूत सिद्धांत व विचार प्रस्तुत हैं। 'योगाथेरेपी' संस्कृत साहित्य की अनन्य देन है जिसमें हर एक मर्ज का निवारण सन्निहित है। महर्षि व्यासदेव एवं पतंजलि महोदय ने राग-द्वेष तथा अघृणा अथवा घृणा ना करने के उपाय की खोज की है जो कि सामाजिक वैमनस्य, हिंसा, अपराध व अन्य साम्प्रदायिक-अन्तर्विरोध जैसे विंदुओं पर भी रोक लगाता है। यह आज की आवश्यकता है। चिकित्सा शास्त्र में आज आयुर्वेद अन्य विधाओं के साथ प्रतिष्ठित है। वर्तमान चिकित्साशास्त्र अथर्वेद, चरक-संहिता, सुश्रुत व अन्य वैदिक शास्त्रों में अनेक चुनौतीपूर्ण समाधान तलाश सकता है। संस्कृत वाङ्मय मानव को पर्यावरण के सभी घटकों की शुद्धि के प्रति जागरूक रहने का भी संदेश देता है। इस प्रकार, मानवीय स्वास्थ, चिकित्सा, एवं स्वस्थ परिवेश हेतु संस्कृत वाङ्मय में अनेकानेक सैद्धान्तिक विचार प्रतिष्ठित हैं।

ABSTRACT

In Sanskrit vangmaya, many measures are discussed to cure the trinity of sorrows, adhi-devic, adhi-bhautic and aadhyatmic. The philosophy of yoga, Ayurveda and other ancient granthas are as wherein fundamental principles and ideas relating to human being as well as taking care of their health are incorporated. 'Yoga-therapy' is the exclusive gift of Sanskrit vangmaya in which all most all health measures are enshrined. Maharishi Vyas Dev and Maharishi Patanjali have propounded the measures of raaga-dvesha and sacrifice of disgust respectively. These concepts are applied to prevent the issues like social grudge, violence, crimes and communal inter-conflicts among the society. It is crucial neccesity for the present days to maintain social harmony. Ayurveda is now popularly stand along with other disciplines of medical sciences. Presently the medical science can search for many challenge full solutions in Atharvaved, Shrimadbhagwadgita, Charka-sutram, Sushrut and other vedic literature. Sanskrit vangmaya has also passed signals to aware human being about the purity of all aspects of atmosphere. Thus, many fundamental principles and ideas about the health, hospitality and healthy atmosphere of human being are incorporated in Sanskrit vangmaya.)

आमुख-

आधुनिक सन्दर्भ में मानव जीवन संरक्षण हेतु प्रमुख रूप से उत्तरदायी पक्ष हैं मानवीय एवं सामाजिक स्वास्थ्य, मानवीय चिकित्सा, जलवायु, वातावरणीय स्वस्थ परिवेश तथा सांस्कृतिक जीवन मूल्य। संस्कृत वाङ्मय प्रत्येक घटकों के बारे में कमो-बेस सैद्धान्तिक विचार रखता है। संस्कृत विषय के अध्ययन की व्यापकता साहित्य-सृजन, दर्शन, संस्कृति, जीवन-मूल्य, विश्वास, परम्पराओं एवं धार्मिक गतिविधियों को समाहित तो करता ही है; मानव जीवन के संरक्षण से जुड़े सिद्धांत व विचार भी प्रतिस्थापित करता है। यथा- मानव के शारीरिक एवं मानसिक रोगों से बचाव व उपचार के उपाय, पर्यावरणीय घटकों की स्वच्छता व शुद्धि, ज्ञान-यज्ञ विज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, जीवविज्ञान, कृषि विज्ञान, वास्तु विज्ञान तथा आर्युविज्ञान, आदि सभी का मूलाधार संस्कृत साहित्य ही है। **'वेदात् सर्वं प्रसिद्धयति'**, अर्थात् वेद से ही सब विकसित हुआ है अथवा **'वेदे सर्वं प्रतिष्ठितम्'** अर्थात् वेद में ही सम्पूर्ण ज्ञान प्रतिष्ठित हैं। मानव जीवन से जुड़ा ऐसा कोई पहलू नहीं है जिसकी चर्चा संस्कृत वाङ्मय में न की गई हो। अन्तर्वैषयिक दृष्टि से अध्ययन से ज्ञात होता है कि संस्कृत साहित्य में प्राचीन संस्कृत परम्पराओं के रूप में मानव मात्र के सकारात्मक दैहिक व भौतिक स्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य चेतना के बारे में महत्वपूर्ण व लाभ प्रद उपागमों के विशेष निर्देश भी व्यवहृत हैं। योगदर्शन, आयुर्वेद व अन्य ऐसे प्राचीन ग्रंथ हैं जिनमें मानव स्वास्थ्य की देख-रेख से सम्बन्धित कुछ मूल भूत सिद्धांत व व्यवहार-विचार प्रस्तुत हैं। संस्कृत वाङ्मय में निहित उपर्युक्त सिद्धांत चाहे शारीरिक व मानसिक रूप से मानव मात्र के लिए उपयोगी हों अथवा सम्पूर्ण समाज के लिए; ये वर्तमान में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की प्रमुख संकल्पनाओं के रुप में प्रचलन में हैं। संस्कृत वाङ्मय में जहाँ एक ओर स्वर्ग प्राप्ति के उपाय" **ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामों यजेत्**"[288]कहे गये हैं, वहीं पर आधि दैविक, आधि भौतिक और आध्यात्मिक दु:खत्रय को दूर करने के उपाय भी बताये गये हैं।[289]स्वस्थ शरीर से ही सम्पूर्ण क्रिया-कलाप सम्भव है यथा- **शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।** [290]अर्थात् शरीर धर्म पालन का पहला साधन है। इसी आधार पर हमारे ऋषियों ने सौ वर्ष पर्यन्त आयु की कामना की है।

मानव मात्र के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य के लाभ के दृष्टिकोण से 'स्वास्थ्य' शब्द की वर्तमान चिकित्सीय शास्त्र में निम्नवत् परिभाषा दी जा सकती है- "स्वास्थ्य भौतिक, मानसिक और सामाजिक बेहतरी आदि की सम्पूर्णता की ऐसी स्थिति है जिसमें मात्र निरोग होना ही सम्मिलित नहीं है।[291]संस्कृत के ग्रंथों व सिद्धान्तों में निहित निर्देशों के अन्तर्गत मानसिक एवं शारीरिक तथा सामाजिक स्वास्थ्य की देख-रेख के तथ्यों पर ही आधारित उक्त परिभाषा दी गयी है। संस्कृत साहित्य में मानवीय स्वास्थ्य व आम जीवन से जुड़े तथ्यों की खोज हेतु हमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण की जरुरत होती है जो चिकित्सा शास्त्र के विभिन्न आयामों एवं अन्य उपयोगी विचारों को ग्रंथों में निहित तथ्यों

---

288 अर्थसंग्रह (लौगाक्षि भाष्कर) मीमांसा दर्शन (अ-2 पा-3 सू-8.1)।

289 दु:खत्रयाभिघाताज्जिज्ञसा तद्विघातके हेतौ।
दुष्टे सापार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोभावात् (साख्यतत्त्व कौमुदी: वाचस्पति मिश्र, श्लोक-2)

290 कुमारसम्भवम्: महाकावि कालिदास, (सूक्ति 5.33)।

291 वर्ल्ड हेल्थ ऑरगनाइजेशन (1978), हेल्थ फॉर ऑल, सीरियल नं.1।

के गहन अध्ययन एवं मानवीय समाज के कल्याण के प्रयोजन से निर्गत होते हैं। उदाहरणार्थ, निम्नलिखित कुछ संस्कृत ग्रथों से सम्बन्धित मानव स्वास्थ्य के देख-रेख के वैज्ञानिक तरीके (तंत्र) निर्गत व प्रचलन में हैं जिन्हें आधुनिक चिकित्साशास्त्र ने भी मान्यता दे रखी है क्योंकि कुछ चीजों में चिकित्साशास्त्र भी उपाय व समाधान रहित साबित होता है।

शारीरिक दर्द को प्रत्यक्ष रूप से चिकित्सा शास्त्र शल्य चिकित्सा व औषधि देकर दूर कर देता है किन्तु आज भी कुछ गूढ रोग यथा- एड्स, कैन्सर, मानसिक-तनाव, एवं अन्य समरूप रोगों में चिकित्सा विज्ञान चिकित्सीय उपाय करने में असफल प्रयास करता है। इसी प्रकार, मानसिक व सामाजिक विचलन से सम्बन्धित समस्याओं के चिकित्सीय उपाय भी अनुपलब्ध हैं। वर्तमान वैश्विक महामारी कोविद-19 के महाप्रकोप का, जिससे लाखों-लाख लोग काल के गाल में समाते जा रहे हैं, सिवाय अपनी प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने, साफ-सफाई का ध्यान रखने तथा संक्रमित होने से बचाव हेतु युक्तियुक्त सुरक्षित दूरी बनाने के, कोई और तात्कालिक चिकित्सीय उपाय नहीं हैं। ये सभी उपलब्ध उपाय संस्कृत वाङ्मय के भाग हैं जिन्हें आज अपनाया जा रहा है। 'योगा-थेरेपी' संस्कृत साहित्य की अनन्य देन है जिसमे हर एक मर्ज का निवारण निहित है। यह वर्तमान में एक सम्पूर्ण शास्त्र के रूप में विकसित हो चुका है। इसे आज सम्पूर्ण चिकित्सा विज्ञान माना जाने लगा है।[292]इस विधा में मानव व मानवीय समाज के शारीरिक एवं मानसिक, प्रत्येक रोगों व विचलन से सम्बन्धित उपयुक्त समाधान हैं जो सम्पूर्ण निवारण के उपाय के रूप में प्रयुक्त हो रहा है।[293]योगा-थेरेपी में रोगों की रोक-थाम के उपाय के रुप में प्राणायाम, ध्यान व अन्य पद्धतियाँ आधुनिक चिकित्सा शास्त्र से भी ईतर मानवीय स्वास्थ्य के देख-रेख हेतु अनुभव की जाने लगी हैं।[294]कुछ चिकित्सीय तकनीकियों का सम्बन्धित संस्कृत सूक्तियों के आधार पर भी विश्लेषण किया जा सकता है जो मानव जीवन के संरक्षण हेतु अत्यंत उपयोगी साबित हो रही हैं। ऐसा लगता है कि मानसिक तनाव के मौलिक कारण एवं मनोवैज्ञानिक प्रयोग के आधार पर महर्षि व्यासदेव ने मानसिक डिस-आर्डर' के कारण व निवारण के सम्बन्ध में नकारात्मक सोच, नाराजगी एवं गुस्सा, उत्तेजना एवं मानसिक दबाव तथा उदासीनता आदि का नुकसानदायी प्रतिकियात्मक परीक्षण किया होगा, तब कहीं जाकर मानसिक तनाव के मौलिक कारण एवं इसके उपाय हेतु अपनी व्याख्या प्रस्तुत की होगी। कुरूक्षेत्र में युद्ध के दौरान अर्जुन की उदासीनता व नकारात्मकता को आधार बनाकर महर्षि व्यासदेव ने ऐसा सोचा होगा कि अर्जुन उस समय कैसी विपरीत युद्धागत् परिस्थितियों से गुजर रहे होंगे जब अपने समक्ष सगे संम्बन्धियों को ही युद्ध में देखे होंगे।[295]जीव व चिकित्सा विज्ञान के अनुसार मानव शरीर की सबसे छोटी ईकाई कोशिका होती है। यही कोशिका

---

292 ब्रिटिस मेडिकल जरनल (1987) व इंडियन ऑफ मेडिकल रिसर्च (1982)।

293 तत्रैव

294 यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान व समाधि, 'महर्षि पतंजलि के अष्टांग यौगिक नियम'।

295 दृष्टवेमान स्वजनान कृष्ण युयुतसून समवस्थितान।
सौदन्ति मम् गावाणि मुखञ्च परिशुष्यति।।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते।
गांडीव स्रंसते हस्तात त्वक चैव परिदह्यते।।

उत्तक में बदलकर श्वास लेने, भोजन पचाने, ऊर्जा उत्पादित करने व पचे हुए भोज्य पदार्थों को उत्सर्जित करने का कार्य करती है। उक्त शारीरिक प्रक्रियाओं में किसी प्रकार का विचलन मानव शरीर के भीतर रोग को आमंत्रित करता है। शरीर में रोगाणुओं का प्रवेश न हो सके इस सम्बन्ध में वर्तमान एवं आधुनिक चिकित्साशास्त्र असमर्थ सा दिखता है जो कि उसके समक्ष एक बड़ी चुनौती है। 'योगा-थेरेपी' ही ऐसी स्थिति में एक सर्व सुलभ उपाय है जो योग के विधियों का बार-बार अभ्यास करके एवं योगा-थेरेपी के अन्य विधियों को अपनाकर प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करके कोरोना जैसी महामारी के विषाणुओं से भी रोक-थाम कर सकता है। प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करके एड्स जैसे गम्भीर विषाणु जनित रोग से भी बचाव किया जा सकता है। इस रोग में शरीर के इम्यून शक्ति को ही इसका एच.आई.वी. विषाणु पूरी तरह नष्ट कर देता है।[296] प्राचीन भारतीय चिंतन के अनुसार अनियंत्रित इच्छा अथवा संवेगी आवेगों की संन्तुष्टि (इन्द्रीय शक्ति) एवं द्वेष शारीरिक रोगों का एक प्रमुख स्त्रोत माना जाता है।[297] इनके उपाय के तौर पर 'रोक व नियंत्रण' की तकनीक 'निराशक्ति' (नॉन एटैचमेंट) को ही सुझाया गया है जो कि विभिन्न प्राचीन संस्कृत व्याख्याओं में अंकित है। आज कोरोना काल में भी बचाव का यही सर्वोत्तम उपाय माना जाता है। महर्षि व्यास के अनुसार राग एवं द्वेष से स्वतत्र कोई व्यक्ति स्वास्थ्य के सकारात्मक पहलुओं को नियंत्रित व आनंदित रूप में जी सकता है।[298]हमेशा प्रसन्नचित् रहने के लिए महर्षि पतंजलि ने अघृणा अथवा घृणा न करने के उपाय की खोज की जो कि सामाजिक वैमनस्य, हिंसा, अपराध व अन्य साम्प्रदायिक अन्तर्विरोध जैसे विन्दुओं पर भी रोक लगाता है।[299]सामाजिक सद्भाव हेतु भी यह अत्यन्त लाभप्रद एवं कारगर उपाय है। इस चमत्कारिक उपाय का चिकित्साजगत् में भी कोई जवाब नहीं। घृणात्मक प्रवृत्ति से दूर होते रहने के अभ्यास में ही इसका मूल तथ्य निहित है। यह एक भावात्मक तकनीक है जिसके प्रयोग से मानसिक तनाव में काफी मदद मिल सकती है। आत्मनियंत्रण व आत्म-प्रसन्नता इसका रामबाण उपाय महर्षि व्यास ने भी बताया है।[300]हमारे वैदिक मनीषी, ईश्वर से इसलिए प्रार्थना करते हैं कि रोष, घृणा व अन्य नकारात्मक सोच से मन को दूर रखें ताकि उनसे जुड़े सामाजिक सम्बन्धों पर किसी प्रकार का नकारात्मक प्रभाव न

न च शक्नोम्यवस्भात,भमतीव च मे मनः।
निमित्तानि च पश्यामि विपरितानि केशव।। (श्रीमद्भगवद्गीता 1/28-30)
296 https://aidsinfo(glossary), भ्रमण दि. 20.08.2020, 20.56बजे।
297 क्रोधाद्धवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणयस्ति।।(श्रीमद्भगवद्गीता 2/63)।
अविद्या स्मिता राग द्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः।(पा. यो. द. सा. पा.3)।
लौकिकः नाश्र मन्त्येते गुणा मोहराजः श्रितम्।
तन्मूला वह्वो यान्ति ऐगाः शरीर मानसाः।(चरक सूत्रम 28/38)।
298रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवैश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधि गच्छति।। (श्रीमदभगवद्गीता 2/64) ।
299 मैत्री करुना मुदितोपेक्षणां सुख दुखपुण्या पुण्यविषयाणां भावनाश्चित्त प्रसादतम्।(प. यो. द. सा. पा.33)।
300 आपूर्यमाणमचल प्रतिष्ठं समुद्रमापःप्रविशन्तियद्वत्।
तद्वत्कामा यंप्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न काम कामी।। (श्रीमद्भगवतगीता 2/70)।

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

पड़े।[301]चिकित्साशास्त्र ने आयुर्वेद को बहुत पहले ही अन्य विधाओं के साथ अनन्य स्थान दे रखा है जो संस्कृत वाङ्मय के ही अंश रूप में प्रतिष्ठित है। आज विश्व जगत् को यह अपनी अहम् सेवा दे रहा है। चिकित्साशास्त्र की अनेक चुनौतियों के समाधान अथर्ववेद, चरक-संहिता, सुश्रुत व अन्य वैदिक साहित्य में खोजे जा द सकते हैं, ऐसा अनेक विद्वजनों का परामर्श है।

'वेदात् सर्वं प्रसिद्धयति' अर्थात् वेद से ही सब विकसित हुआ है अथवा **'वेदे सर्वं प्रतिष्ठितम्'** अर्थात् वेद में ही सम्पूर्ण ज्ञान प्रतिष्ठित है। वह ज्ञान यज्ञविज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, सृष्टि विज्ञान हो, या प्राणि विज्ञान, जीव या वनस्पति विज्ञान हो अथवा गणित, वास्तु विज्ञान, कृषि विज्ञान, आर्युविज्ञान अथवा पर्यावरण विज्ञान हो, सभी का मूलाधार संस्कृत वाङ्मय में विशेषत: वेद में निहित है। मानव जीवन से जुड़े ऐसे कोई पहलू नहीं है जिनकी चर्चा वेदों में पत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से न की गयी हो। 'पर्यावरण' भी उनमें एक है जो मानव जीवन के संरक्षण हेतु अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक है। संस्कृत साहित्य में आधिदैविक, आधिभौतिक व आध्यात्मिक दुःखत्रय को दूर करने के उपाय भी बताये गये हैं।[302] यथा-शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्।[303]अर्थात् स्वस्थ शरीर से ही सम्पूर्ण क्रिया-कलाप सम्भव है। यही कारण है कि हमारे ऋषियों ने सौ वर्ष पर्यन्त आयु की कामना की है।[304]इसी प्रकार, स्वस्थ शरीर के लिए स्वस्थ पर्यावरण का होना आवश्यक है जिससे जुड़े तथ्य विकसित रुप में संस्कृत साहित्य में उपलब्ध हैं। प्राकृतिक पर्यावरण अथवा भौतिक पर्यावरण (मानव निर्मित पर्यावरण), दोनों ही प्रकार के पर्यावरण से समूचे स्वस्थ मानवीय वातावरण का निर्माण होता है। जहाँ प्राथमिक वातावरण के घटक यथा-ताप, पृथ्वी की निरन्तर गतिशीलता, गुरुत्वीय शक्ति, चन्द्रमा की भ्रमण गति, ज्वालामुखी व ज्वारभाटा क्रियायें मानव जीवन संरक्षण हेतु स्वस्थ जलवायु का निर्माण करते हैं वहीं, भौतिक वातावरण में अपनी अनुकूलता के अनुसार मनुष्य प्राविधिक व तकनीकी सहायता से परिस्थितिजन्य परिवर्तन करता रहता है। यथा-खेती एवं पशुपालन करना, नहरें, सड़कें व रेल मार्ग बनाना, कलकारखाने लगाना, आदि इसमें शामिल हैं जिससे विभिन्न जीवन शैली, रहन-सहन के स्तर का निर्माण होता है। यही कारण है कि इसे सांस्कृतिक अथवा मानव निर्मित-प्राविधिक वातावरण भी कहते हैं। भौतिक पर्यावरणीय घटकों वायु, जल, पेड़, पौधे, भूमि आकाश सूर्य, आदि सभी का संस्कृत साहित्य में 'देव' नाम से जिक्र मिलता है। ये सभी घटक अपने दिव्यगुणों के द्वारा पर्यावरण को शुद्ध करते रहते हैं क्योंकि 'देव-गुणम्, दिव्य-गुणम्-समन्वितम्'। पर्यावरण का सर्व प्रमुख घटक वायु, प्राण-शक्ति है जिसके बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती है। ऋग्वेद के अनुसार स्वच्छ वायु प्राणियों हेतु अत्यन्त

---

301 ऊँ विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परा सुव
यद् भद्रं तन्न आसुव।।(यजुर्वेद30/3)।

302 दु:खत्रयाभिघाताज् जिज्ञासा तद्पाघातके हेतौ।
दुष्टे सापार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोआभावात्।। (साख्य तत्व कौमुदी: वाचस्पतिमिश्र, श्लोक-2)

303 कुमारसम्भवम्: महाकवि कालिदास, (सूक्ति-5.33)।

304 कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समा:।
एवं त्वयि नान्यथेतो अस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।(यजु.40.2)।

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

श्रेयस्कर है।[305]अर्थात् अपेक्षित है कि वायु हमें ऐसी औषधि प्रदान करे जो हमारे हृदय के लिए शान्तिकर एवं आरोग्यकर हो तथा वायु हमारी आयु को बढाये। शुद्ध व स्वच्छ वायु से हमारे श्वास-क्रिया का किस प्रकार संचलन होता है इसका वर्णन वेदों में निम्नवत् मिलता है-

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।

दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद् रपः।।(ऋग्वेद10.137.2-3)

त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।।(अथर्व वेद 4.132.2-3)

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः।[306]

इनमें पान व अपान दोनों वायुओं का जिक्र करते हुये विचार किया गया है। इनमें प्राण वायु को शरीर में बल भेजने और अपान वायु को शारीरिक मलों को बाहर निकालने के तौर पर बताया गया है। अर्थात् श्वास नि:श्वास रूप में दो वायु चलती हैं, एक बाहर से समुद्र तक, दूसरी समुद्र से बाहर के वायु मण्डल तक। इस प्रकार उपर्युक्त मंत्रों में ऐसी सद् इच्छा की गई है कि "हे! मनुष्य यह पहली वायु तुझे बल प्राप्त कराये और दूसरी तेरे शारीरिक दोष को अपने साथ बाहर ले जाये। हे! शुद्ध वायु तू अपने साथ औषधि को ला। हे! वायु, शरीर में जो मल है, उसे बाहर निकाल। तुम सब रोगों की दवा है, तुम देवों का दूत होकर विचरता है।" यहाँ समुद्र का अर्थ फेफडों के रक्त समुद्र से है और वायुमंडल का अभिप्राय फेफड़ों से बाहर के वायुमंडल से है।

जल प्रदूषण न होने देने व प्रदूषित जल के शुद्धीकरण के उपाय स्वरूप ऋग्वेद में कहा गया है कि वे दिव्य जल हमारे लिए सुख दायक हों जिसमें वरूण विश्वे देव तथा वैश्वानर अग्नि प्रविष्ट हैं।[307]यहाँ शुद्ध वायु या जल शोधक कोई गैस हो सकती है। सोम, चन्द्रमा, सोमलता, विश्वेदेवाः सूर्य किरणें तथा वैश्वानर, अग्नि सामान्य आग अथवा विद्युत हो सकती हैं। अर्थात् प्रदूषित जल शुद्ध किया जा सकता है से यहाँ तात्पर्य है। इसी तरह-

सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।[308] का उल्लेख मिलता है। **"माता भूमिःपुत्रोअहं पृथिव्याः"**[309] कहकर वेद ने भूमि को माता स्वीकार किया है जिसे महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश' महाकाव्य में एवं बाण भट्ट ने 'कादम्बरी' उपन्यास में, साथ ही अन्य कवियों ने भी स्वीकार किया है कि यह भूमि विश्व का पालन करने वाली है, धनों की खान है, सोने की छाती वाली है और प्रतिष्ठा देने

---

305 वातु आ वातु भेषजं शंभु मयोभु ना हृदे।
प्राण आयुषि तारिषत्।। (ऋग्वेद. 10. 186)।

306 विश्वारा, प्राच्य शोध पत्रिका, लेख-संस्कृत वांङ्मय में पर्यावरण चेतना, वंदना, पृष्ठ 37-41 ।

307 यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वेदेवा या सूर्जमदन्ति।
वैश्वानरो याश्वग्निःप्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मवन्तु।। (ऋग्वेद 7.49)।

308 तत्रैव।

309 अथर्वेद(12.1.12)।

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

वाली है। भूमि को संस्कृत साहित्य में इस प्रकार अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसी प्रकार अग्नि अथवा शोधक को पावक, अमीवचातन, पावक-शोचित, सपलदम्भन आदि विशेषणों से उनकी शोधकता प्रदर्शित की गयी हैं।[310]

निष्कर्षतः संस्कृत वांङ्मय में मानव-जीवन के संरक्षण से सम्बन्धित कारकों यथा- स्वास्थ्य, चिकित्सा, उच्च आदर्श जीवन-शैली, रहन-सहन तथा चौतरफे पर्यावरणीय घटकों के रख-रखाव, आदि सभी से सम्बन्धित आदर्श विचार व सिद्धांत व्यवस्थित हैं। वर्तमान चिकित्सीय चुनौतियों से सम्बन्धित ऐसे अनूठे किस्म के समाधानों व उपायों का भी इनमें जिक्र मिलता है जिस पर चिकित्साशास्त्र भी समाधानहीन लगता है। आज विश्व प्रचलित 'योगा-थेरेपी' रूपी आश्चर्यजनक उपाय संस्कृत साहित्य एवं भारतीय योग दर्शन का ही भाग है जिनमें अधिकांश रोगों के रोक-थाम एवं निवारण के उपाय सन्निहित है। 'पर्यावरण' एक समूची संस्कृति है तथा मनुष्य प्रकृति की संम्पूर्णता का ही एक हिस्सा है। मनुष्य को प्रकृति की व्यवस्था का सर्व श्रेष्ठ प्राणी होने के कारण ही उसके जीवन-आदर्शों, आचार-विचार- व्यवहार तथा उसके संरक्षण को केन्द्रिभूत कर हमारे संस्कृत ग्रंथों में आधि दैविक, आधि भौतिक व आध्यात्मिक दुःखत्रय की बात कही गयी है। 'भूमि' को माता मानते हुए इसे जगत् का पालनहार स्थापित किया गया है। मनुष्य को वायु, जल भूमि, वनस्पति, अन्नादि पर्यावरण के इन घटकों की शुद्धि के प्रति जागरूक रहने का संदेश भी इन्हीं संस्कृत ग्रंथों के गर्भ में समाहित है। इस प्रकार मानव जीवन संरक्षण हेतु संस्कृत साहित्य में व्यवस्थित विभिन्न सिद्धांत एवं आदर्श विचार अपनी उपयोगिता स्वतः सिद्ध करते हैं।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. अर्थसंग्रहः (लौगाक्षि भाष्कर) मीमांसा दर्शन, (विकारो वाप्रकरणात्) (ई.बुक सोर्स, epustakalay.com, भ्रमण दि. 20.08.2020)

10. श्रीमद्भगवद्गीता: गोरखपुर, गीताप्रेस, 2017, पातंजलि योग दर्शन (साधन पाद-3) व चरक सूत्रम (28/38) क्रमशः ।

11. श्रीमद्भगवद्गीता: गोरखपुर, गीताप्रेस, 2017 ।

12. महर्षि पतञ्जलिकृत योग-दर्शन: गीता प्रेस गोरखपुर, 2015

13. श्रीमद्भगवद्गीता: गोरखपुर, गीताप्रेस, 2017 ।

14. यजुर्वेद: सम्पूर्ण भाषा भाष्य,भाष्यकार प्रकाशक, महर्षि दयानंद सरस्वती ।

15. सांख्य तत्त्व कौमुदी: वाचस्पति मिश्र कृत तत्त्व कौमुदी की हिन्दी व्याख्या, डॉ. आद्या प्रसाद मिश्र, सत्य प्रकाशन मन्दिर, प्रयाग ।

16. कविता संग्रह, महाकवि कालिदास कृत कुमार सम्भवम्: मूल चन्द पाठक, प्रकाशक विद्या विहार, 2008 ।

17. यजुर्वेद: सम्पूर्ण भाषा भाष्य, भाष्यकार प्रकाशक, महर्षि दयानंद सरस्वती (ईषावास्योपनिषद)।

18. ऋग्वेद: ब्रह्मवर्चस् शांतिकुञ्जम्, हरिद्वारम्, सं2054 ।

[310] ऋग्वेद (1.19.18-19), अथर्वेद (19.58.1), ऋग्वेद(3.9.8), यजु.(3.19)क्रमशः ।

19. विश्वारा: प्राच्य विद्या शोध पत्रिका, षठमासिक, लेख- 'संस्कृत वांङ्मय में पर्यावरण चेतना', वंदना, पद्मजा प्रकाशन, प्रथम अंक, इलाहाबाद, 2018, पृष्ठ 37-41 ।

2. सांख्यतत्त्वकौमुदी: वाचस्पतिमिश्र कृत तत्त्व कौमुदी की हिन्दी व्याख्या, डॉ. आद्या प्रसाद मिश्र, सत्य प्रकाशन मन्दिर, प्रयाग, प्रथम संस्करण,1956 (ई.बुक सोर्स,epustakalay.com, भ्रमण दि.20.08.2020)

20. ऋग्वेद: ब्रह्मवर्चस् शांतिकुञ्जम्, हरिद्वारम्, सं.2054 ।

21. तत्रैव ।

22. अथर्वेद संहिता भाग-1, संपादक, श्रीराम शर्मा आचार्य, शांतिकुञ्ज, हरिद्वारम्, सं.2054 ।

23. ऋग्वेद: ब्रह्मवर्चस्शांति कुञ्जम्, हरिद्वारम्; अथर्वेद संहिता भाग-2, संपादक, श्रीराम शर्मा आचार्य, शांतिकुञ्ज, हरिद्वार; यजुर्वेद: सम्पूर्ण भाषा भाष्य, भाष्यकार प्रकाशक, महर्षि दयानन्द सरस्वती, क्रमशः ।

3. कविता संग्रह, महाकवि कालिदास कृत कुमारसम्भवम्: मूलचन्द्र पाठक, प्रकाशक, विद्या विहार, 2008 ।

4. वर्ल्ड हेल्थ आर्गेनाइजेशन व यूनाइटेड नेशन्स चील्ड्रेन फंड के संयुक्त तत्वाधान में आयोजित अन्तर-राष्ट्रीय सम्मेलन: प्राथमिक हेल्थ केयर, (सितम्बर 6-12,1978)

5. ब्रिटिस मेडिकल जरनल(1987) व इंडियंस ऑफ मेडिकल रिसर्च(1982), उद्धृत विश्वारा: प्राच्य शोध पत्रिका, षठमासिक लेख-'संस्कृत एण्ड कन्टेम्परारी चैलेन्ज टू मेडिकल सांइन्स':खागेन्द्र पात्रा, पद्मजाप्रकाशन, इलाहाबाद, अंक-प्रथम (जुलाई से दिसम्बर), 2018 ।

6. तत्रैव ।

7. पातञ्जल योग प्रदीप: महर्षि पतंजलि के अष्टांग योग नियम, गोरखपुर, गीताप्रेस, उन्नविसवां संस्करण सं. 2057, पृष्ठ132

8. श्रीमद्भगवद्गीता: गोरखपुर, गीताप्रेस,2017 ।

9. एड्स इंफो ग्लोसरी, (https://aidsinfo(glossary) भ्रमण दि. 20.08.2020)।

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

महाभारते युद्धविज्ञानस्य समुन्नतस्वरूपं प्रतिपादितम्

डॉ. प्रसूनकुमारमिश्रः
लोकसभा-दूरदर्शनम्, नवदेहली

SID- 382292617

Received on-11/29/2020 14:14:29 | **Accepted on-** 26th January, 2021

प्रमुखशब्दाः-युद्धविज्ञानम्, अक्षौहिणी, अनीकिनी, अश्वशक्तिः, शतघ्नी, बलिष्ठगात्रयुक्तः।

शोधसारः

महाभारते बहुविधाः विषयाः वर्णिताः सन्ति तथैव युद्धविज्ञानम् (War Technology) वर्णितम् अस्ति। एतस्मिन् विषये विस्तृतोल्लेखः अस्ति। शास्त्रस्य वर्णनम् अस्ति तु शस्त्रस्य वर्णनमपि अस्ति, व्यूढानां वर्णनानि सन्ति, दिव्यास्त्राणां वर्णनानि सन्ति। सैन्यव्यवस्थायाः वर्णनम् अपि अस्ति।कौरवाः बृहस्पतिवचनमुद्धन्तः निगदन्ति यत् यदि शत्रोः सैन्यबलं त्रिगुणतो न्यूनं वा अल्पमपि अस्ति तु निश्चयेन युद्धं कुर्यात्। परन्तु आस्माकं तु चत्वारः अक्षौहिण्याः सैन्यबलं अधिकम् अस्ति, अतः युद्धं निश्चितम्। कुरुक्षेत्रे सर्वमाहत्य अष्टादश अक्षौहिण्याः सेनाः आसन्।

एषः आलेखः, महाभारतयुद्धविज्ञानाधारितः अस्ति। युद्धविज्ञानं न केवलं युद्धस्य विवरणम् अपितु अत्र युद्धस्य कृते सज्जीकरणं, सैन्यः, अन्य कार्यार्थे जनानां प्रशिक्षणं, रथानाम् अश्वानांच व्यवस्थाविषये विवृणोति। सारथीनां प्रशिक्षणम् अपि एकं महत् कार्यम् आसीत्। वयं यथा जानीमः हॉर्स पावर इति पदं अष्टादशशताब्दौ आगतम्। महाभारते च अन्ये ग्रन्थे अश्वशक्तिपदस्य प्रयोगः प्रचलितः आसीत्। इदानीमपि सैन्यव्यस्थायाः कृते 'सेक्शन, प्लाटून, रायफल, कम्पनी, बटालियन इत्यादि सन्ति। महाभारते गुल्मः, वाहिनी, पृतना, चमू, अनीकनी इत्यादयः सैनिकानां समूहस्य संरचनायाः च वर्णनम् अस्ति।

ABSTRACT

Mahabharata is also known as the name of Mahayuddha. There are so many topics described in the Mahabharatata, as well as war technology. A detail description of arms is in Mahabharata as well as the descriptions of ethology and study. Vyus i.e. Vyoha i.e., ground strategy and Divyastra i.e., special type of weapons are also demonstrated in the Mahabharata. Camps and march of army and its troops are also depicted in the Mahabharata. Example – Kaurvas says – according ot Brihaspati, if the strength and enemy is one third or less, then and only then one should attack of fight the battle. But my army fur Akshauhini more than Pandavas. In toto, the strength of each army was eighteen Akshauhini. So, war is decided and inevitable. This article is base on the war technology described in the Mahabharata. War technology does means ground battle, but also describing the preparations, arms, training, chariot and horses. Training of Sarthi plays vital role as we got stories is Mahabharata. We know the Horse Power, which is come in use during 18th century, but it was also in use during Mahabharata period as Ashwa Shakti. Now a days there are arrangements in the army like, section, platoon, rifle, company, battalion etc, same as we see in Mahabharata, Gulma, Vahini, Pritna, Chamu, Anikani etc.

महाभारते बहुविधा: विषया: वर्णिता: सन्ति तथैव युद्धविज्ञानम् (War Technology) वर्णितम् अस्ति। एतस्मिन् विषये विस्तृतोल्लेख: अस्ति। शास्त्रस्य वर्णनम् अस्ति तु शस्त्रस्य वर्णनमपि अस्ति, व्यूढानां वर्णनानि सन्ति, दिव्यास्त्राणां वर्णनानि सन्ति। सैन्यव्यवस्थाया: वर्णनम् अपि अस्ति।कौरवाः बृहस्पतिवचनमुद्धन्तः निगदन्ति यत् यदि शत्रो: सैन्यबलं त्रिगुणतो न्यूनं वा अल्पमपि अस्ति तु निश्चयेन युद्धं कुर्यात्। परन्तु आस्माकं तु चत्वार: अक्षौहिण्या: सैन्यबलं अधिकम् अस्ति, अत: युद्धं निश्चितम्। कुरुक्षेत्रे सर्वमाहत्य अष्टादश अक्षौहिण्या: सेनाः आसन्।

बलं त्रिगुणतो हीनं योध्यं प्राह बृह्स्पति:।
परेभ्यस्त्रिगुणा चेयं मम राजन्ननीकिनी।। [311]

सारथि-शिक्षणम्

द्रोणाचार्यस्य मृत्यो: अनन्तरं कर्ण: कौरवपक्षस्य सेनापतिरूपेण अभिषिक्त:। शल्य: कर्णस्य सारथि: अभवत्। रथसंचालनस्य ज्ञानं तु आवश्यकं किन्तु इतोSपि सारथीनां कीदृशं ज्ञानम् आवश्यकम्? समं विषमं च अवस्थाया: ज्ञानं, रथिनस्य प्राबल्यं-दौर्बल्यं च, रथिना सह अश्वानामपि श्रमं कष्टं च, रथे अस्त्रादे: उपलब्धतां, जय-पराजयसूचकपशुपक्षीनां रुतम्, भार: अतिभार: च, शल्य-चिकित्सा, अस्त्रप्रयोग:, शुभाशुभ-निमित्त आकलनम् इति। एतावत् सर्वं ज्ञानं आवश्यकं सारथे: कृते। अत्र शल्य-चिकित्साज्ञानस्य अपि उल्लेख: आगत:। सारथीनां कृते शल्य-चिकित्साया: ज्ञानम् आवश्यकम् आसीत्। अर्थात् एतादृशं प्रगत- प्रशिक्षणं सर्वेषांकृते व्यापकरूपेण व्यवहारे आसन्।

समं च विषमं चैव रथिनश्च बलाबलम्।
श्रमः खेदश्च सततं हयानां रथिना सह।।
आयुधस्य परिज्ञानं रुतं च मृगपक्षिणाम्।
भारश्चाप्यतिभारश्च शल्यानां च प्रतिक्रिया।।
अस्त्रयोगश्च युद्धं च निमित्तानि तथैव च।
सर्वमेतन्मया ज्ञेयं रथस्यास्य कुटुम्बिना।।
अतस्त्वां कथये कर्ण निदर्शनमिदं पुनः।[312]

युद्धकौशलम्

महाभारतं तु महायुद्धस्य पर्यायवाची रूपेण जना: स्मरन्ति वदन्ति च। अष्टादशदिनानि यावत् महासंग्रामे अष्टादश अक्षौहिणी सैनिका: हता:। संग्रामक्षेत्रे अर्थात् धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे सेनयो: विविध व्यूहरचना महाभारते वर्णिता अस्ति सा युद्धकौशलस्य अद्भुतमुदाहरणम् अस्ति।

अद्यत्वे अपि सेनाया: संरचना भवति। अधिकारीगणानां सैनिकानां च भिन्न-भिन्न समूहा: वर्तन्ते। तेषां भिन्न-भिन्न पदानां नामानि भवन्ति। उदाहरणार्थ – “'सेक्शन, प्लाटून, रायफल, कम्पनी, बटालियन अथवा रेजीमेंट, ब्रिगेड, डिविजन, आर्मीकॉर्प्स, आर्मी कमांड ” इत्यादय:।

महाभारते सैनिकानां समूहस्य संरचनाया: च वर्णनम् अस्ति। एक पत्ते: अन्तर्गत: एक: रथ:, एक: गज:, पञ्च पदातय:, त्रय: अश्वा: च भवन्ति स्म। अनन्तरं पत्तित्रयं योजयित्वा एकं सेनामुखं भवति स्म। पुनश्च गुल्म:, वाहिनी, पृतना, चमू, अनीकिनी इत्यादय: अक्षौहिणी पर्यन्तं गण्यन्ते।

---

[311] उद्योग अध्याय-55, श्लो56

[312] कर्ण अ.41, श्लो.7-9

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

एको रथो गजश्चैको नरा: पञ्च पदातय:
त्रयश्च तुरगास्तेज्ञै: पत्तिरित्यभिधीयते।। [313]
पत्तिं तु त्रिगणमेतामाहु: सेना मुखं बुधा:
त्रीणि सेनामुखान्येको गुल्म इत्यभिधीयते।।
त्रयो गुल्मा: गणो नाम वाहिनी तु गाणस्त्रय:
स्मृतास्तिस्रस्तु वाहिन्य: पृतनेति विचक्षणै:।।
चमूस्तु पृतनास्तिस्रतिस्रश्चम्बस्त्वनीकिनी
अनीकिनीं दशगुणां प्राहुरक्षौहिणीं बुधा:।।
अक्षौहिण्या: प्रसंख्याता रखानां द्विजसत्तमा:।
संख्या गणिततत्वज्ञै: सहस्राण्येकविंशति:।।
शतान्युपरि चैवाष्टौ तथा भूयश्च सप्तति:।
गजानां च परीमाणमेतदेव विनिर्दिशेत्।।
ज्ञेयं शतसहस्रं तु हरस्राणि नवैव तु।
नराणामपि पञ्चाशच्छतानि त्रीणि चानघा:।।
पञ्चषष्टिसहस्राणि तथाश्वानां शतानि च।
दशोत्तराणि षट् प्राहुर्यथावदिह सख्यया।।
एतया संख्यया ह्यासन् कुरूपाण्डवसेनयो:
अक्षौहिण्यो द्विजश्रेष्ठा: पिण्डिताष्टादशैव तु।।[314]

पुनश्च,

कुरूक्षेत्रे अष्टादश अक्षौहिण्य: आसन्। सैन्यवर्गीकरणस्य उल्लेख: कृत: अस्ति। अत्र सेनाया: प्रकारस्य वर्गीकरणमपि लभ्यते। महाभारतस्य युद्धे सेनाया: प्राकाराणां चर्चा कुर्म: चेत् तत्र द्वाविंशति सेना: आसन्।

दु:शासन रथास्तूर्णं युज्यन्तां भीष्मरक्षिण: ।
द्वाविंशतिमनीकानि सर्वाण्येवाभिचोदय ।। [315]

शतघ्नी

शतघ्नी एकं भीमकायं आग्नेयास्त्रम् आसीत्। शतघ्नी चक्रेणयुक्तं आग्नेयास्त्रम् इति। शतघ्ने: संचरना कथम् अस्ति इति अत्र दृश्यते। लघुशतघ्नी द्वयो: चक्रिकयो: युक्तम् आग्नेयास्त्रं, वृहतकाय शतघ्नी चतुर्चक्रिकाभि: विनिर्मितम् आग्नेयास्त्रम्।

चतुश्चक्रा द्विचक्राश्च शतघ्नो बहुला गदा:।
चक्राणि च क्षुरान्तानि मण्डलानीव भास्वत:।। [316]

पुनश्च,

---

[313] आदि. 2.19

[314] आदि. अ.2, श्लो.19-28.

[315] भीष्म. अ.98,श्लो. 31.

[316] द्रोण. अ.199, श्लो.19.

घटोत्कच: शतघ्न्या: संधानं कृतवान्। स शतघ्नी चक्रयुक्ता आसीत्। शतघ्नी चक्रेनाधारिता आसीत्।

तेनोत्सृष्टा चक्रयुक्ता शतघ्नी
समं सर्वांश्चतुरोऽश्वाञ्जघान।
ते जानुभिर्जगतीमन्वपद्यन्
गतासवो निर्दशनाक्षिजिह्वाः।।[317]

अशनि अपि एकं आग्नेयास्त्रमिव प्रतीयते। घटोत्कच: अशनिम् अश्वस्थामारथं लक्ष्यं कृत्वा क्षिप्तवान्। अश्वस्थामा तम् अशनिं गृहीत्वा पुन: घटोत्कचमालक्ष्य एव क्षिप्तवान्। प्रकाशवत् अशनि घटोत्कचस्य रथं सारथिम् अश्वान् च भस्मीभूतं कृत्वा पृथिव्यां प्रवृष्टम्।

साश्वसूतध्वजं यानं भस्म कृत्वा महाप्रभा।
विवेश वसुधां भित्त्वा सुरास्तत्र विसिस्मयु:।।[318]

सौभ विमानस्य द्वारे शतघ्नी नामक आग्नेयास्त्रं वा युद्धास्त्रं संलग्नम् आसीत्।

अयं सौभं योधयामास स्वस्थं
विभीषणं मायया शाल्वराजम्।
सौभद्वारि प्रत्यगृह्णाच्छतघ्नीं
दोर्भ्यां क एनं विषहेत मर्त्य:।। [319]

महाभारते रामायणस्य आगते प्रसंगे शतघ्न्या: वर्णनम् लभ्यते। श्रीरामस्य सेना वानराणां यूथ: लंकाविजयस्य कृते आक्रमणं कृतवान्, तदा ते वानरा: सैनिका: तत्र मणिनिर्मितस्तंभान् च कर्णाट्टशिखराणि च भग्नं कर्तुम् आरब्धवन्त:। तस्य यन्त्राणि सर्वाणि नष्टानि कृतवन्त:। तत्र शतघ्नी अपि आसीत्। तत् आग्नेयास्त्रमपि नष्टं कृतवन्त:। महाभारते चक्रयुक्तशतघ्न्या: वर्णनं लभ्यते। रामायणे अपि चक्रयुक्तशतघ्न्या: वर्णनं लभ्यते, तत: एषा: अंशा: महाभारते उद्धृता:।

बिभिदुस्ते मणिस्तम्भान् कर्णाट्टशिखराणि च।
भग्नोन्मथितश्रृङ्गाणि यन्त्राणि च विचिक्षिपु:।। [320]

चक्रयुक्तशतघ्नीम् अपि वानर सैनिका: भग्नं कृतवन्त: क्षिप्तवन्त: च।

परिगृह्य शतघ्नीश्च सचक्रा: सहुडोपला:।
चिक्षिपुर्भुजवेगेन लङ्कामध्ये महास्वना:।। [321]

---

[317] द्रोण 179.46

[318] द्रोण 175.99

[319] उद्योग.अ.4,श्लो.79.

[320] वन.अ.284,श्लो.30.

[321] तत्रैव अ.284,श्लो.31.

अश्वशक्तिः

रथः अश्वेन चलति। अश्वाः वहन्ति रथम्। विष्णोः रथे सप्ताः अश्वाः आसन्। अर्जुनस्य रथे अश्वानां संख्या शतम् आसीत् इति वर्णितम्।

श्वेतास्तस्मिन् वातवेगाः सदश्वा
दिव्या युक्ताश्चित्ररथेन दत्ताः।
भुव्यन्तरिक्षे दिवि वा नरेन्द्र
येषां गतिर्हीयते नात्र सर्वा।।
शतं यत् यत् पूर्यते नित्यकालं
हतं हतं दत्तवरं पुरस्तात्।।[322]

अस्तु, अश्वानां संख्या एव रथस्य गतिर्निर्धारणं कर्तुं समर्था। यस्य रथे अश्वानां संख्या यावत्, सः रथः तदनुसारेण गतिमाप्नोति। अश्वस्य शक्तिः एव अश्वशक्तिः। अद्यापि 'शक्ति' एतस्य इकाई अश्वशक्तिः एव अस्ति। अश्वशक्ति (HOURSE POWER), 'हॉर्सपॉवर' शब्दस्यः प्रयोगः अष्टादशे शताब्दौ स्कॉटलैंडदेशस्य एकः अभियन्ता जेम्सवाटमहोदयेन कृतः। सः 'वाष्प-इंजन' एतेन उत्पन्नस्य शक्त्याः तुलना अश्वेन सह कृतवान्। अत्र अर्जुनस्य रथः बहु तीव्रगामी आसीत्। शतं अश्वशक्तिः परिमाणं नीहितम् आसीत्।

नगरसुरक्षा

नगरसुरक्षार्थे महती परिमाणे लौहपाशाः आसन्। श्रीकृष्ण षट् सहस्राणि लौहमयपाशानां निर्मोचनं कृतवान्। एतावत् परिमाणे लोहपाशस्य उत्पादनस्य व्यवस्थापि स्यात्। अत्र लोहपाशस्य इदृशं वर्णनम् अस्ति येन प्रतीयते यत् अन्यत्र दुर्गे नगरे च एतादृशा व्यवस्था निश्चयेन स्यात्।

निर्मोचने षट् सहस्राणि हत्वा
संच्छिद्य पाशान् सहसाक्षुरान्तान्।
मुरं हत्वा विनीहत्यौघरक्षो
निर्मोचनं चापि जगाम वीरः।।[323]

श्रीकृष्णः निर्मोचननगरस्य समीपं गत्वा षट् सहस्रं लौह पाशं संच्छिद्यवान्।

युद्धनीतिः

महाभारते वर्णनम् अस्ति यत् युद्धकाले राजानः कीदृशः व्यवहारः करणीयः इति।
सैनिकेभ्यः अग्रिमवृत्तिः दीयताम्। राजानौः पियवादिनः भवेयुः, तर्हि ते सैनिकाः अपि राजभ्यः सम्यक् रूपेण कार्याणि करिष्यन्ति।

तेषामग्रप्रदायी स्याः कल्योत्थायी प्रियंवदः।

---

[322] उद्योग..अ.56,श्लो.13.
[323] तत्रैव.अ.48,श्लो.83.

ते त्वां प्रियं करिष्यन्ति पुरो धास्यन्ति च ध्रुवम्।। [324]

योग्यसैनिक:

ना अति वृद्धः, ना अति बाल:, ना अति कृश:, ना अति स्थूल: भवेत् सैनिक:। स्वस्थ:, अनारोग्य:, लघुवृत्तायत:, बलिष्ठगात्रयुक्त: इत्यादि उत्तमानां सैनिकानां लक्षणम्।

नातिवृद्धमबालं च नाकृशं नातिपीवरम्।
लघुवृत्तायतप्रायं सारगात्रमनामयम्।। [325]

संदर्भग्रन्थसूची

- Dharmpal, *Indian Science and Technology in the Eighteenth Century*, Impex India Delhi.
- Kangle R.P., *Kautilya Arthashashtram*, Motilal Banarsi Dass Publishers Pvt Ltd.
- *Mahabharata*, Bhandarkar Oriental Research Institute, Pune.
- *Mahabharata*, Gita Press, Gorakhpur, Samvata-2067, 15th Reprint.
- Sbbuarayappa B V, *A Concise History of Science of India*, India National Science Academy, Delhi.
- Shashtri Ambikadutta., Sushruta Sanhita, Sushruta, Chaukhambha Sanskrit Series, Varansi.
- Soni Suresh, *Bharat men Vigyan ki UjjwalParampara*, Archana Prakashan, 17 Bhapal
- Vriksayurveda of Parashara

[324] तत्रैव अ.135,श्लो.35.

[325] द्रोण 114.3

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

तर्कसंग्रहभाषापरिच्छेदग्रन्थानुसारं कारणस्वरूपविमर्शणम्

(An Analysis According to the Tarkasaṃgraha and the Bhāṣāpariccheda on the Cause)

Pranabesh Bhattacharya
Ph. D. Scholar,
Bankura University, Bankura, West Bengal.

SID-344535972

Received on-11/29/2020 14:14:29 | **Accepted on-** 26th January, 2021

प्रमुखशब्दाः- कारणम्, कारणतावच्छेदकसम्बन्धः, पूर्ववृत्तिः, अन्यथासिद्धः, नियत

शोधसारः

भारतीयदर्शने कार्यकारणसम्बन्धविषयमाधारीकृत्य सर्वैः दार्शनिकसम्प्रदायैः भिन्नानि अभिमतानि उपस्थापितानि। तेषु अभिमतेषु अत्र न्यायवैशेषिकदर्शनसम्मतानि अभिमतानि अङ्गीकृतानि। अतः तर्कसंग्रहग्रन्थानुसारं भाषापरिच्छेदग्रन्थानुसारं च कारणस्वरूपमत्र विचार्य्यते मया। अयमेव शोधनिबन्धस्यास्य विषयः। अस्मिन् विषये केचित् सन्देहाः दृष्टाः। यथा कारणस्य विभागः न साक्षात् सम्भवति, परन्तु कथं तत्कृतमस्ति तर्कसंग्रहग्रन्थे ? इत्यादि। अतः सन्देहदूरीकरणपूर्वकं पूर्वोक्तविषयस्य विश्लेषणमेव शोधनिबन्धस्यास्य प्रयोजनम्। अत्र विश्लेषणात्मकगवेषणापद्धतिः अनुसृता।

ABSTRACT

Each community of Indian philosophy has expressed their opinions in different ways on the relationship between cause and effect. In this research paper only the opinion of *Nyāya-Vaiśeṣika* Philosophy has been adopted among them. So I have analyzed the nature of causes according to the *Tarkasaṃgraha* and the *Bhāṣāpariccheda*, which is the main topic of this research paper. I have found some doubts in this regard. So I have analysed and resolved those doubts in this research paper. For example, the division of causes is not possible in a direct way, but why is it discussed directly in the *Tarkasaṃgraha*? etc. Therefore, the main requirement of this research paper is to remove the doubts and make a proper analysis of the above topic. This research paper follows analytical research methodology.

भारतीयदर्शने कार्यकारणसम्बन्धविषयमाधारीकृत्य सर्वैः दार्शनिकसम्प्रदायैः भिन्नानि अभिमतानि उपस्थापितानि। तेषु अभिमतेषु अत्र न्यायवैशेषिकदर्शनसम्मतानि अभिमतानि अङ्गीकृतानि। अतः तर्कसंग्रहग्रन्थानुसारं भाषापरिच्छेदग्रन्थानुसारं च कारणस्वरूपमत्र विचार्य्यते मया। अयमेव शोधनिबन्धस्यास्य विषयः। अस्मिन् विषये केचित्

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

सन्देहाः दृष्टाः। यथा कारणस्य विभागः न साक्षात् सम्भवति, परन्तु कथं तत्कृतमस्ति तर्कसंग्रहग्रन्थे ? इत्यादि। अतः सन्देहदूरीकरणपूर्वकं पूर्वोक्तविषयस्य विश्लेषणमेव शोधनिबन्धस्यास्य प्रयोजनम्। अत्र विश्लेषणात्मकगवेषणापद्धतिः अनुसृता।

➢ **भूमिका**

क्रियते साध्यते जन्यते अनेनेति कार्योत्पादकं कारणम्। तच्च कार्योत्पादकं व्याप्तिसम्बन्धज्ञानसापेक्षम्। तदभावात् न तु कस्यचित् पदार्थस्य कारणता सिध्यति। यथा यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वह्निः इत्यत्र सकलधूमसमानाधिकरणेषु वह्निवृत्तित्वात् धूमस्य वह्निव्याप्यत्वं सिध्यति। अतः जन्यधूमकार्यं प्रति वह्निमात्रस्य कारणता शास्त्रसिद्धा, न तु जलादीनां व्याप्तिसम्बन्धाभावादित्यभिप्रेतः। अत्र कारणस्य स्वरूपं कारणस्वरूपमिति षष्ठीतत्पुरुषसमासः, अथवा कारणगतं स्वरूपमिति कर्मधारयसमासः। तस्य च कारणस्वरूपस्य विमर्शणं नाम संक्षेपेण विश्लेषणम्। तादृशविश्लेषणं तावत् तर्कसंग्रहभाषापरिच्छेदग्रन्थोक्तमतनिरूपितम्। तेन कारणविषये यादृशानि विवृतिकरणानि तर्कसंग्रहग्रन्थे भाषापरिच्छेदग्रन्थे च प्रतिपादितानि तेषां विश्लेषणं, तथा च विभिन्नविषयसंयुक्तसंशयाः, तन्निराकरणञ्चास्माभिः प्रतिपाद्यरूपेणाङ्गीकृतमत्र। सत्यमेत् न हि सर्वेषु विषयेषु संशयः परिदृश्यते। अतः ज्ञायमानसंशयानां विचारः यथामति क्रियतेऽत्र। ते च संशयाः यथा साक्षात् कारणभेदासम्भवात् तर्कसंग्रहग्रन्थोक्तं कारणभेदनिरूपणं कथङ्कारं तावत् संगच्छते? भाषापरिच्छेदे ग्रन्थकारेण कारणत्वविभागनिर्वचने कारणत्वं हेतुत्वञ्चेति द्विविधपदाध्याहारस्य का युक्तिः? इत्यादयः। अस्मदध्याहृतग्रन्ययोः सम्यक् मतविश्लेषणार्थं प्रसङ्गानुसारं तत्तद्ग्रन्थयोः टीकाग्रन्थानामपि यथामति अध्ययनं क्रियते।

प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तत इत्यार्षवाक्यानुसारमिदानीमस्य निबन्धस्य प्रयोजनमुद्यते। वस्तुतः प्रयोजनरहितं शास्त्रं न केषामपि अध्ययनप्रवृत्तेः विषयः भवति। अतः कारणविषयमाधारीकृत्य तर्कसंग्रहभाषापरिच्छेदग्रन्थोक्तमतानां संशयनिराकरणपूर्वकं यथार्थविषयविश्लेषणमुपस्थाप्यतेऽत्र यथामति, तदेव निबन्धस्यास्य प्रयोजनम्। अनेन विषयस्य बोधसारल्यं वर्द्धेतेति विश्वासः।

उक्तविषयप्रतिपादनात् निबन्धेनानेन समं प्रतिपाद्यविषयस्य प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसम्बन्धः। अपि च निबन्धस्यास्याध्यनेन न्यायवैशेषिकतत्रस्यैकं विशेषज्ञानं जायते। तादृशज्ञानानुसन्धिनां समीपे निबन्धोऽयं साधनं, जायमानं ज्ञानञ्च साध्यमित्यत्र साध्यसाधनसम्बन्धोऽपि सिध्यति।

न्यायवैशेषिकदर्शनस्य विशेषज्ञानानुसन्धी निबन्धस्याधिकारी। सत्येपि सामान्यज्ञाने लोके विशेषं प्रत्यनुवर्तत इति यावत्। निबन्धेऽस्मिन् विश्लेषणात्मकगवेषणापद्धतिः अनुश्रियते।

➢ **दर्शनसाहित्ये कारणम्**

पुरा भारतीयदर्शनसाहित्ये प्रत्येकदर्शनसम्प्रदायः कार्यकारणसम्बन्धविषये स्वस्वमतानि प्रकटितानि। तस्मात् भारतीयदर्शने सर्वत्र हेतुहेतुमद्भावो व्याख्यातः। कार्यकारणसम्बन्धविषये भारतीयदर्शनशास्त्रे चतुर्विधः मतभेदः दृश्यते। तत्र प्रथमस्तावदसतः सज्जायत इति सौगताः संगिरन्ते। द्वितीयस्तु वेदान्तिनां विवर्तवादः। तन्मते कार्यजातं वस्तु न सदिति। तृतीतस्तु सांख्यामते सत्कार्यवादः। सतो सज्जायत इति। शेषस्तावत् न्यायमते असत्कार्यवादः। तच्छरूपं यथा सतोऽसज्जायत इति। तत्र सौगतानामसतः सज्जायत इति न प्रामाणिकपक्षः, असतो निरूपाख्यस्य शशविषाणवत् कारणत्वानुपपत्तेः। अद्वैतमते जगत्प्रपञ्चपऽयं मिथ्याभूतः। किन्तु बाधकाभावात् प्रपञ्चप्रत्ययस्य भ्रमता न युक्ता। सांख्यास्तु सत्कार्यवादिनः। ते

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

कार्यकारणयो: तादात्म्यमङ्गीकुर्वन्ति। परन्तु असत्कार्यवादिनां नैयायिकानां नये तादात्म्येन कार्यकारणयोरभिन्नत्वेन वा कारणत्वहानिप्रसङ्ग:, कारणस्य कार्यनियतपूर्ववृत्तित्वनियमात्। अपि च कार्यकारणयोरभिन्नत्वनियमेन घटकपालयोरभिन्नत्वे स्वीकृते घटोत्पत्ते: कारणव्यापारभङ्गप्रसङ्ग:। तेन च सिद्धं कारणं सदपि कार्यमसत्। तच्च कारणं किं स्वरूपकमिति तर्कसंग्रहभाषापरिच्छेदग्रन्थोक्तमतप्रतिपादनपुर:सरं संक्षेपेण प्रस्तुयते विचारोऽत्र।

- **कारणलक्षणविमर्श:** तर्कसंग्रहकारेण श्रीमदन्नंभट्टोपाध्यायेन कारणलक्षणमुक्तम् 'कार्यनियतपूर्ववृत्ति कारणम्' [326] - इति। कार्यं प्रति नियतत्वे सति पूर्ववृत्तित्वमिति तदर्थ:। यथा पटकार्यं प्रति तन्त्वादीनां नियतपूर्ववृत्तित्वात् कारणत्वम्। तथा चेत् सति पटं प्रति तन्तूनां कारणत्वेन सह तन्तुरूपेऽपि कारणत्वापत्ति:, पटं प्रति नियतपूर्ववृत्तित्वादिति। जन्यपटं प्रति तन्तुरूपाकाशादिपदार्थानां नियतपूर्ववृत्तित्वं तावल्लौकिकम्। अत: तेषां नियतपूर्ववृत्तित्वावच्छिन्नं ज्ञानं सिध्यतीति पूर्वपक्ष:। परन्तु शास्त्रविरुद्धत्वात् तन्न सिद्ध:। तस्मात् पूर्वपक्षस्य तन्तुरूपादावन्यथासिद्धविषये कारणलक्षणस्यातिव्याप्तिपरिहाराय तत्रभवता तर्कदीपिकायां पुनरुक्तम् 'अनन्यथासिद्धनियतपूर्ववृत्तित्वं कारणत्वम्'[327] - इति। इदानीमनन्यथासिद्धपदाध्याहारात् कारणलक्षणस्यापगता पूर्वोक्तापत्ति:। कारणलक्षणनिर्वचने भाषापरिच्छेदकारेण श्रीविश्वनाथपञ्चाननभट्टाचार्येनाप्युक्तम् -

'अन्यथासिद्धिशून्यस्य नियता पूर्ववर्तिता।
कारणत्वं भवेत् तस्य त्रैविध्यं परिकीर्तितम्।।'[328] - इति।

कार्योत्पत्त्यव्यवहितपूर्वक्षणावच्छेदकावच्छिन्ने कार्याधिकरणे यदन्यथासिद्धविरहविशिष्टजन्यपदार्थव्यापकीभूतपदार्थ: कार्यतावच्छेदकसम्बन्धेन समवायेन वर्तते तत्कारणमित्युच्यते। कार्यपदार्थस्य स्वकारणवृत्तिसम्बन्ध एव कार्यतावच्छेदकसम्बन्ध:। अन्यथासिद्धिशून्य इति पदप्रयुक्ताभावात् पूर्ववृत्तित्वाच्च घटकार्यं प्रति रासभादिषु कारणलक्षणस्यातिव्याप्त्यापत्ति:। नियत इति पदस्यार्थ: व्याप्तिरिति। व्याप्यव्यापकयो: सहचारसम्बन्ध: व्याप्ति:। (यत्र यत्र कार्यत्वं तत्र तत्र कारणत्वमिति व्याप्ति:)।

पूर्वं वृत्तिरिति पूर्ववृत्ति:। पूर्वशब्दस्य सापेक्षत्वात् कस्मात् पूर्वमिति चेदुच्यते, कार्योत्पत्ते: पूर्वमिति। अत्र पूर्वत्वञ्चाव्यवहितपूर्वकालत्वमित्वेव ग्रहनीयं, न तु पूर्वकालसामान्यत्वम्। अन्यथा अद्यतनीयपटकार्यं प्रति ह्यस्तनीयपटकार्यस्य कारणानां कारणत्वमापद्येत, तेषामन्यथासिद्धत्वे सति नियतपूर्ववृत्तित्वात्। अर्थात् कार्योत्पत्त्यव्यवहितपूर्वक्षणवृत्तित्वमेव पूर्ववृत्तित्वपदार्थ इत्यङ्गीकरणीय:। तेन ह्यस्तनीयपटकार्यस्य कारणानामव्यवहितपूर्वक्षणवृत्तित्वाभावादद्यतनीयपटकार्यं प्रति न कारणत्वम्। वृत्तिश्चाधिकरणसापेक्षा। ननु कुत्र वृत्तिरिति चेदुच्यते यस्मिन्नधिकरणे समवायेन कार्यमुत्पद्यते तदधिकरणवृत्ति:। कार्योत्पत्त्यव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन कार्याधिकरणवृत्तित्वं पूर्ववृत्तित्वमिति यावत्।

नियतत्वं नियमयुक्तत्वं सहचारसम्बन्धावच्छिन्नत्वम्। स च सम्बन्ध: व्याप्यव्यापकनिरूपिता व्याप्तिरित्यर्थ:। हेतुसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्यसामानाधिकरण्यं व्याप्तिरिति। यथा पर्वत: वह्निमान् धूमादित्यत्र हेतो: धूमस्य समानाधिकरणानि महानसादिस्थानानि। (वह्निधूमयो: साहचार्यवृत्तित्वात् तेषां समानाधिकरणसंज्ञा)। सत्येपि सकलद्रव्यानामत्यन्ताभावे वह्नेरत्यन्ताभाव: न विद्यते महानसादौ । महानसादौ सदैवात्यन्ताभावस्याप्रतियोगित्वेन वह्नि:

---

[326] त.सं. पृ०सं० 90.
[327] त.सं. पृ०सं० 90.
[328] कारि. पृ०सं० 108.

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

(साध्यम्) सिध्यति। अर्थात् धूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिघटादिद्रव्यभिन्नेन साध्येन वह्निना सह धूमस्य सामानाधिकरण्यं महानसादिवृत्तित्वात् लक्षणसमन्वयः। वस्तुतः व्याप्त्याश्रयः व्याप्यः, व्याप्तिनिरूपकः व्यापकः। तत्र व्याप्तिनिरूपकत्वात् नियतत्वं नाम व्यापकत्वम्। तच्च कार्याधिकणवृत्यन्ताभावाप्रतियोगित्वम्। तेनान्यथासिद्धिशून्तत्वे सति कार्योत्पत्त्यव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन कार्याधिकरणवृत्त्यत्यन्ताभावाप्रतियोगितावच्छेदकधर्मवत्वं कारणत्वमिति।

अनियतरासभादावतिव्याप्तिवारणाय नियतेति पदस्याध्याहारः। यत्किञ्चित् घटं प्रति मृदाद्यानयनद्वारा रासभस्य कारणतासम्भवेऽपि घटत्वावच्छिन्नं प्रति कारणत्वं नास्ति, यतो यादृशघटादिकार्ये या मृत्तिका रासभेन नानीता तादृशघटवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वस्य रासभे सत्त्वात् रासभो न नियतपूर्ववृत्तिः।

अतोऽन्यथासिद्धशून्यत्वे सति कार्योत्पत्त्यव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन कार्याधिकरण-वृत्त्यत्यन्ताभावाप्रतियोगितावच्छेदकधर्मवत्वं कारणत्वमिति फलितार्थः। नन्वेवमप्यव्याप्तिर्दृश्यते। तथाहि क-नामकपटकार्याव्यवहितप्राक्क्षणे यदि ख-नामकपटकार्यसामग्री स्थानान्तरे उपतिष्ठते, तर्हि ख-नामकपटकार्यस्य तन्त्वादीनां कारणानां क-नामकपटकार्यं प्रति कारणत्वमापद्येत इति चेन्न, कार्याधिकरणस्य कार्यतावच्छेदकसम्बन्धेनैव विवक्षितत्वात्। कार्यस्य तदधिकरणवृत्तिनिरूपकसम्बन्ध एव कार्यतावच्छेदकसम्बन्धः। अत्र पटकार्यं तदधिकरणे तन्तौ समवायेनावतिष्ठते, तस्मादत्र समवायः कार्यतावच्छेदकसम्बन्धः। यद्यपि कार्यतावच्छेदकसमवायसम्बन्धेन ख-नामकपटकार्यस्य कारणभूतानां तन्तूनां क-नामकपटकार्यस्याधिकरणत्वं नास्ति, तथापि कालिकसम्बन्धेन क-नामकपटकार्यस्याधिकरणं ख-नामकपटकार्यस्य कारणभूतः तन्तुः। तेन च क-नामकपटकार्योत्पत्त्यव्तवहितप्राक्क्षणे कालिकसम्बन्धेन क-नामकपटकार्याधिकरणे ख-नामकपटकार्यस्य कारणभूतस्य तन्तोः क-नामकपटकार्यस्य समवायिकारणत्वमापद्येत। अतः कार्याधिकरणं येन केनापि सम्बन्धेन न विवक्षितम्। अत्र च कार्यतावच्छेदकसमवायसम्बन्धेन क-नामकपटकार्यस्य समवायिकारणं तन्तुरेव तस्यादिकरणं स्यात्, न तु ख-नामकपटकार्यस्य समवायिकारणं तन्तुः। तस्मात् नाव्याप्तिः। एवञ्चात्रान्यथासिद्धिशून्यत्वे सति कार्याव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन कार्यातावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नकार्याधिकरणवृत्त्यत्यन्ताभावा-प्रतियोगितावच्छेदकधर्मवत्वं कारणत्वमिति फलितम्

परन्तु तथाप्यव्याप्तमिदं लक्षणम्। तथाहि क-नामकपटकार्योत्पत्त्यवव्यवहितपूर्वक्षणे कार्यतावच्छेदकसमवाय-सम्बन्धेन क-नामकपटकार्याधिकरणे तन्तौ ख-नामकपटकार्यस्य कारणभूततन्तोः कालिकसम्बन्धेन विद्यमानत्वात् क-नामकपटकार्यं प्रति ख-नामकपटकार्यस्य कारणभूतस्य तन्तोः कारणत्वापत्तिः। अतः कार्याधिकरणवृत्तित्वं हि कारणतावच्छेदकसम्बन्धेन बोध्यम्। कारणस्य कार्याधिकरणवृत्तिसम्बन्ध एव कारणतावच्छेदकसम्बन्धः, तेनैव सम्बन्धेन कारणं कार्यमुत्पादयति। तस्मात् कारणभेदात् कारणतावच्छेदकसम्बन्धोऽपि भिद्यत इति सुलभबोध्यः। यथा पटकार्याधिकरणे तन्तौ तन्तुः तादात्म्येनावतिष्ठते। अतः पटकार्यं प्रति यदि तन्तोः कारणत्वमङ्गीक्रियते तर्हि तत्र कारणतावच्छदकसम्बन्धो हि तादात्म्यमिति। एवं तन्तुसंयोगस्य कारणत्वमुच्यते तर्हि तत्र समवाय एव कारणतावच्छदकसम्बन्धः, पटकार्याधिकरणे तन्तौ समवायेन तन्तुसंयोगस्य विद्यमानत्वात्। तुरीवेमादीनां यदि कारणत्वमुच्यते तर्हि पटकार्याधिकरणे तन्तौ स्वप्रयोज्यविजातीयतन्तुसंयोगसम्बन्धेन तेषां विद्यमानत्वात् तत्र कारणतावच्छेदकसम्बन्धः स्वप्रयोज्यविजातीयतन्तुसंयोगः। पटकार्यं प्रति तन्तोः कारणत्वस्वीकृते क-नामकपटकार्याधिकरणे तन्तौ कारणतावच्छेदकेन तादात्म्यसम्बन्धेन क-नामकपटकार्यस्य कारणं तन्तुमात्रमेव विद्यते। तस्मात् येन केनापि सम्बन्धेन न कार्याधिकरणवृत्तित्वमपि तु कारणतावच्छेदकसम्बन्धेनैव। तेन नाव्याप्तिः। एवञ्चान्यथासिद्धिशून्यत्वे सति कार्याव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन कार्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नकार्याधिकरण-वृत्तिकारणतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नात्यन्ताभावाप्रतियोगितावच्छेदकधर्मवत्त्वं कारणत्वमिति।

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

- **अन्यथासिद्धय:**

जन्यपदार्थं प्रति नियतत्वावच्छिन्नानां पूर्ववृत्तित्वावच्छिन्नानाञ्च पदार्थसमूहानामुपस्थिति: परिलक्ष्यते। यथा घटकार्यस्य कपाल:, तच्छमवेतरूपं, कपलद्वयसंयोग:, चक्रं, दण्ड:, आकाश:, कुलाल:, तज्जनक: इत्यादय:। परन्तु न तेषां सर्वेषां कारणत्वं सिध्यति घटकार्यं प्रति। कार्यनियतपूर्ववृत्तित्वमात्रं चेत् कारणलक्षणं तेन तेषां कारणत्वप्रसक्ति:। तथा चेत् सति कारणलक्षणस्यातिव्याप्त्यापत्ति:। यथा कपालरूपे घटनियतपूर्ववृत्तित्वज्ञानं घटसमवायिकारणकपालेनैव सिध्यति। अयमाशय: कपालरूपस्य कपालेतरपदार्थवृत्तित्वाभावात् कपालनिरूपितं तावत् तस्य पूर्ववृत्तित्वमिति। न ह्यत्र घटस्य प्रसक्ति:। एवं जन्यपदार्थं प्रति तेषां पदार्थानां पृथक् संज्ञा प्रदत्ता न्यायवैशेषिकाचार्यै:। यथा अन्यथासिद्ध: इति। अन्यरूपेण भिन्नभावेन सिद्ध इति तदर्थ:। न तेषां कारणत्वं विवक्षितकार्यं प्रति सिध्यतीति यावत्। भाषापरिच्छेदे पञ्चविधा:, तर्कसंग्रहे त्रिविधाश्चान्यथासिद्धय: प्रतिपादिता:।

- **विश्वनाथमते प्रथमान्यथासिद्ध:**

भाषापरिच्छेदकारमते प्रथमान्यथासिद्धस्तावत् कारणतावच्छदकधर्म:। यत्कार्यं प्रति कारणस्य पूर्ववर्तिता येन धर्मपुरस्कारेण ज्ञायते, तत्कार्यं प्रति तद् धर्म: अन्यथासिद्ध:। यद्धर्मावच्छिन्नं कार्यं प्रति कारणस्य पूर्ववर्तिता यद्रूपावच्छेदेन गृह्यते, तद्धर्मावच्छिन्नं कार्यं प्रति तद्रूपमन्यथासिद्धमित्यभिप्राय:। यथा घटकार्यं प्रति दण्ड: कारणम्। दण्डत्वस्यापि दण्डवत् घटपूर्ववृत्तित्वादपि नास्ति तस्य कारणता। अत्र घटत्वावच्छिन्नघटकार्यं प्रति दण्डरूपकारणस्य पूर्ववर्तिता दण्डत्वरूपावच्छेदेनैव संगृह्यते। सामान्यत्वात् दण्डत्वस्य समवायेन दण्डमात्रवृत्ति: सिध्यति। तस्मात् तस्य घटपूर्ववृत्तित्वं दण्डेणैव ज्ञायमानत्वात् घटत्वधर्मावच्छिन्नं घटकार्यं प्रति दण्डत्वमन्यथासिद्धम्। 'येन सह पूर्वभाव:' - इत्यनेन प्रतिपादितं प्रथमान्यथासिद्धं विश्वनाथोपाध्यायेन।

- **विश्वनाथमते द्वितीयान्यथासिद्ध:**

विश्वनाथमते कारणपदार्थसमवेतविशेषगुण: हि द्वितीयान्यथासिद्ध:। तथोक्तं तेन 'कारणमादाय वा यस्य' इति। यस्य स्वातन्त्रेण कारणनिरपेक्षेण अन्वयव्यतिरेकनियम: नास्ति, परन्तु स्वकारणापेक्षेण तच्छिध्यति स च पदार्थ: द्वितीयान्यथासिद्ध इत्यर्थ:। तत्र स्वाधिकरणे कार्यसत्त्वमन्यय:, स्वाभावाधिकरणे कार्याभावो व्यतिरेक:। तथाहि घटकार्यं प्रति दण्ड: कारणं, नियतपूर्ववृत्तित्वात्। परन्तु घटकार्यं प्रति दण्डगतरूपस्यापि नियतपूर्ववृत्तित्वेऽपि न कारणता सिद्धा। दण्डगतरूपस्य नियतपूर्वभावित्वज्ञानस्य दण्डाधीनत्वात्। दण्डरूपं हि स्वाश्रयभूतदण्डेण नियतपूर्वभावित्वमाप्नोति। तेन च दण्डरूपसत्वे घटसत्त्वं, तदभावे च घटाभाव इत्यन्वयव्यतिरेकनियम: दण्डकारणनिरपेक्षेण न सम्भवति कदापि। किन्तु दण्डकारणमादायैव तस्यान्वयव्यतिरेकौ गृह्यते। तस्मात् घटं प्रति दण्डरूपमन्यथासिद्धम्। एवं पटं प्रति तन्तुरूपमपि पूर्ववत्।

- **अन्नंभट्टमते प्रथमान्यथासिद्ध:**

विश्वनाथप्रणीतं पूर्वोक्तं मतद्वयमेकत्रेण अन्नंभट्टेन प्रथमान्यथासिद्धरूपेण प्रतिपादितं तर्कदीपिकायाम्। तेन प्रोक्तम् 'येन सहैव यस्य यं प्रति पूर्ववृत्तित्वमवगम्यते, तत्तेनान्यथासिद्धम्। यथा तन्तुना तन्तुरूपं तन्तुत्वञ्च पटं प्रति'[329] - इति। अत्र तन्तुरूपमित्यनेन कारणपदार्थसमवेतविशेषगुण:, तन्तुत्वमित्यनेन कारणतावच्छदकधर्मश्च प्रतिपाद्यते ग्रन्थकारेण। ननु

[329] त.सं. पृ0सं0 90.

भिन्नपदार्थत्वात् कथं तयो: समूहेन प्रथमान्यथासिद्धरूपेणोपन्यस्तम्? वस्तुत: उभयो: तादृशभिन्नत्वेऽपि कारणपदार्थसमवेतत्वात् तयो: साजात्यमत्र स्वीकरणीयमिति भवितुमर्हति।

- **विश्वनाथमते तृतीयान्यथासिद्ध:**

आकाश: तृतीयान्यथासिद्धरूपेण परिगण्यते भाषापरिच्छेदकारेण। विशिष्टज्ञानं प्रति विशेषणज्ञानस्य कारणत्वात् आकाशविशेषणीभूताकाशत्वज्ञानाभावात् तद्विशिष्टमाकाशज्ञानं न सम्भवति। न्यायनये रूपाभावादाकाशप्रत्ययं न भवति। अत: शब्दसमवायिकारणत्वेन आकाशस्तावदनुमेयपदार्थ:। तेन आकाश: शब्दजनकत्वमात्रेण शब्दसमवायिकारणत्वमात्रेण वा सिध्यति। आकाशस्य तादृशज्ञानान्तरमेव तत्र घटादिकार्यपूर्ववर्तित्वात् घटादिकार्यं प्रति आकाश: अन्यथासिद्ध:। 'अन्यं प्रति पूर्वभावे ज्ञाते यत्पूर्वभावविज्ञानम्' - इत्यनेन तृतीयान्यथासिद्धमाह ग्रन्थकार:। अन्यं प्रति पूर्ववृत्तित्वं गृहीत्वैव यस्य यत्कार्यं प्रति पूर्ववृत्तित्वं गृह्यते, तस्य तत्कार्यं प्रत्यन्यथासिद्धत्वमित्यर्थ:। ननु विभुद्रव्यत्वात् सकलमूर्तपदार्थसंयोगरूपकार्यं प्रत्याकाशस्य कारणता कथङ्कारं सिध्यति? यत: संयोगस्तत्र द्विष्ठवृत्तित्वात् आकाशे समवायेन तिष्ठति। न तत्र शब्दसमवायिकारणत्वप्रसक्ति:। उच्यते तत्र आकाशस्य कारणता द्रव्यत्वेन सिध्यति। तेन आकाशद्रव्यवृत्ति: सकलमूर्तपदार्थनिरूपितसंयोग:। अत: दूरीभूत: संशय:।

कारणता किञ्चिर्मावच्छिन्ना - इति शास्त्रानुरोधं शब्दं प्रत्याकाशस्य कारणतावच्छेदकधर्ममपि वक्तव्यम्। आकाशस्य कारणावच्छेदकधर्मास्वीकारात् तस्य कारणत्वहानिप्रसङ्ग: निरवच्छिन्नकारणतासिद्धत्वात्। अत: इदानीमाकाशस्य कारणत्वस्वीकृते सति तदवच्छेदकधर्ममपि वक्तव्यम्। अत्रैवमुच्यते क-कारादिध्वन्यात्मकवर्णानाम् आकाशवृत्तित्वात् आकाशं कवत्त्वादिति कारणतावच्छिन्नम्। एतेन क-कारादीनामनेकसंख्यकत्वात् गौरवदोषापत्ति:, अपि च तेषाम् अनित्यत्वात् सार्वकालिकत्वहानिप्रसङ्ग:। तस्मात् आकाशसमवेतपरममहत्परिमाणवत्त्वं तदेकत्वं (संख्याविशेष:) वा विशेषपदार्थ: आकाशस्य कारणतावचदछेदकधर्मत्वेन स्वीकरणीयमिति विश्वनाथमतम्।

- **विश्वनाथमते चतुर्थान्यथासिद्ध:**

विवक्षितकार्यं प्रति जनकस्य जनकं अन्यथासिद्धमिति। यथा घटकार्यस्य कुलालपितृत्वेन कुलालपिता अन्यथासिद्ध: कुलालपूर्ववर्तित्वात्। अत: यत्र कार्यजनकस्य पूर्ववर्तित्वज्ञानान्तरमेव कार्यस्य पूर्ववर्तित्वज्ञानं भवति तदन्यथासिद्ध:। परन्तु तादृशघटकार्यं प्रति कुलालपितु: कुलालत्वमात्रेण कारणत्वं सिध्यति। घटपूर्ववर्तित्वात्। उक्तञ्च ग्रन्थकारेण 'जनकं प्रति पूर्ववर्त्तितामपरिज्ञाय न यस्य गृह्यते' - इति। कार्यजनकं प्रति गृहीतपूर्ववृत्तिर्यस्तत्कार्यं प्रति पूर्ववर्तितया ज्ञायते कारणकारणं तच्चतुर्थमन्यथासिद्धमिति यावत्। तस्य हि कुलालपितृत्वेन पूर्ववर्तित्वात् कार्यजनकं कुलालं प्रति कारणत्वं, कुलालस्य च घटं प्रति पूर्ववर्तित्वात् कारणत्वम्। तस्मात् कुलालपितुरपि परम्परया घटकार्यं प्रति पूर्ववर्तित्वं गृह्यते। तेन हि कारणकारणस्य कुलालपितुर्घटकार्यं प्रत्यन्यथासिद्धत्वम्।

ननु कारणकारणस्यान्यथासिद्धत्वे स्वर्गं प्रति यागस्यान्यथासिद्धत्वमापद्येत, तस्य स्वजन्यस्वर्गजनकापूर्वं प्रति कारणत्वादिति चेन्न, दर्शपौर्णमासाभ्यां स्वर्गकामो यजेत - इति श्रुत्वा स्वर्गं प्रति यागस्य पूर्ववर्तित्वे प्रथममवगते पश्चादपूर्वं प्रति पूर्ववर्तित्वग्रहात्। अत एव व्यापारेण व्यापारिणो नान्यथासिद्धत्वमिति नियम:।

- **अन्नंभट्टमते द्वितीयान्यथासिद्ध:**

विश्वनाथप्रणीतं पूर्वोक्तं मतद्वयमेकत्रेण अन्नंभट्टेन द्वितीयान्यथासिद्धरूपेण प्रतिपादितं तर्कदीपिकायाम्। तेन प्रोक्तम् 'अन्यं प्रति पूर्ववृत्तित्वे ज्ञात एव यस्य यं प्रति पूर्ववृत्तित्वमवगम्यते तं प्रति तदन्यथासिद्धम्। यथा शब्दं प्रति पूर्ववृत्तित्वे ज्ञाते एव पटं प्रति आकाशस्य'[330] - इति। तच्च पूर्ववृत्तित्वमाकाशज्ञाननिरूपितम्। परन्तु पूर्ववृत्तित्वं पुन: कुलालपितापि भवितुमर्हति घटकार्यं प्रति कुलालपितृत्वमात्रावच्छिन्नत्वेन। अत: यद्यपि ग्रन्थकारेण आकाशमात्रस्य पूर्ववृत्तित्वपदाध्याहारेण निर्वचनं स्वीकृतम्; परन्तु तत्र कुलालपितुरपि संग्रहणं सिध्यति तादृशधर्मवत्त्वादिति।

- **पञ्चमान्यथासिद्ध:**

पञ्चमान्यथासिद्धनिर्वचने अन्नंभट्टविश्वनाथयोरुभयो: मतसादृश्यं परिलक्ष्यते। अत: तयो: ग्रन्थकारयो: मतमेकत्रेणोपस्थाप्यते। यथा अवश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्तिभिन्ना: सर्वे अन्यथासिद्धा:। तेन कार्यविशेषं प्रति लघुनियतपूर्ववृत्तिभिन्नानामन्यथासिद्धसंज्ञेति। अन्नंभट्टमते 'अन्यत्र क्लृप्तनियतपूर्ववृत्तिनैव कार्य्यसम्भवे तत्सहभूतमन्यथासिद्धम्'[331] - इति। स्वीकृतञ्च विश्वनाथेनापि अन्नंभट्टाभिमतं प्राय: सिद्धान्तमुक्तावल्याम्। लघुनियतपूर्ववर्तित्वरूपमवश्यक्लृप्तत्वमिह बोध्यम्। तेन कार्योत्पत्तौ लघुनियतपूर्ववृत्तित्वस्यैव कारणत्वं, तद्भिन्नानां चान्यथासिद्धत्वम्। तथा यद् घटव्यक्तिं प्रति रासभस्य नियतपूर्ववृत्तित्वमस्ति तद् घटजातीयं प्रति लघुनियतपूर्ववर्तिभि: दण्डादिभिरेव घटोत्पत्तिसम्भवे रासभोऽन्यथासिद्ध:, रासभस्य कारणत्वाङ्गीकारे गौरवात्। एवं पाकजस्थले गन्धोत्पत्तिकाले गन्धं प्रति रूपप्रागभावस्यापि नियतपूर्ववृत्तित्वेऽपि गन्धं प्रति रूपप्रागभावस्य कारणत्वं नास्ति, गन्धाभावापेक्षया रूपप्रागभावस्य प्रतियोगिज्ञानस्य गौरवेणोपस्थिते:। लघुत्वं तावत् त्रिविधम्। यथा शरीरकृतम्, उपस्थितिकृतं, सम्बन्धकृतञ्च। तत्र घटादिद्रव्यप्रत्यक्षं प्रत्यनेकद्रव्यसमवेतत्वापेक्षया महत्त्वस्य कारणतायां शरीरकृतं लाघवम्। गन्धोपपत्तौ गन्धप्रागभाव एव उपस्थितिकृतं लाघवमित्युक्तं पूर्वम्। स्वजन्यचक्रभ्रमणवत्त्वेन घटोत्पत्तौ दण्ड एव कारणं, न तु दण्डत्वादि, सम्बन्धकृतलघुत्वात्। तेषामन्यथासिद्धसंज्ञा, स्वाश्रयजन्यचक्रभ्रमणवत्त्वेन युक्तत्वात्।

एतेषु पञ्चसंख्यकेष्वन्यथासिद्धेष्वन्तिम: आवश्यकोऽन्येषां चरितार्थत्वात्। तथा हि दण्डादिभि: अवश्यक्लृप्तनियतपूर्ववर्तिभिरेव कार्यसम्भवे दण्डत्वादिकमन्यथाद्धम्। न च वैपरीत्वे किं विनिगमनकमिति वाच्यं, दण्डत्वस्य कारणत्वे दण्डघटितपरम्परया: सम्बन्धकल्पने गौरवात्। एवमन्येषामप्यनेनैव चरितार्थत्वं सम्भवति। एवञ्चान्यथाासिद्धिशून्यत्वे सति कार्याव्यवहित-प्राक्क्षणावच्छेदेन कार्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नकार्याधिकरणवृत्तिकारणतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्ना-त्यन्ताभावाप्रतियोगितावच्छेदकधर्मवत्त्वं कारणत्वमिति यावल्लक्षणम्।

- **कारणभेदनिरूपणम्**

श्रीमान् विश्वनाथपञ्चाननभट्टाचार्य: कारणभेदनिरूपणार्थं भाषापरिच्छेदे प्रत्यक्षखण्डे लिलेख --

'समवायिकारणत्वं ज्ञेयमथाप्यसमवायिहेतुत्वम्।
एवं न्यायनयज्ञैस्तृतीयमुक्तं निमित्तहेतुत्वम्।।'[332] - इति

---

[330] त.सं. पृ0सं0 90.

[331] त.सं. पृ0सं0 90.

[332] कारि. पृ0सं0 113.

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

कारणलक्षणनिर्वचने तत्रभवता कारणत्वमिति पदाध्याहारं कृतम्। अत: तन्मते कारणत्वमेव विभाज्यमिति सुस्पष्टम्। ननु ग्रन्थान्तरेषु कारणमेव विभाज्यत्वेन सिध्यति। अत: कारणस्यैव भेदप्रतिपादनं दृश्यते। यथा अन्नंभट्टोपाध्यायमते 'कारणं त्रिविधम् समवाय्यसमवायिनिमित्तभेदात्' - इति। तर्हि कथमस्य व्यतिरेकोऽत्र? ननु कारणस्य विभागेन का हानि:? अथ संशयस्य विमर्शणम्। ज्ञातव्यमिदं कारणस्य त्रिविध: विभाग: न सम्भवति। ननु किं तावत् विभागस्वरूपम्? सामान्यधर्मावच्छिन्नत्वे सति साक्षात् तादृशसामान्यधर्मव्याप्यत्वे सति स्वस्वविरूद्धधर्मावच्छिन्नत्वं विभागत्वमिति। सामान्यधर्मावच्छिन्नानां साक्षाद्व्याप्यपरस्परविरूद्धधर्मावच्छेदकावच्छिन्नानां धर्मिणां प्रतिपादनमित्यभिप्रेत:। स च परस्परविरूद्धधर्म: विभाजकधर्म:। यथा रूपादिचतुर्विंशतिसंख्यकगुणविभागे गुणं विभाज्यं, तदवच्छेदकधर्मस्तावत् गुणत्वम्। तच्च समवायेन रूपादिसकलगुणपदार्थवृत्तित्वात् सामान्यधर्म:। तस्मादत्र साक्षात् गुणत्वव्याप्यपरस्परविरूद्धधर्म एव विभाजकधर्म:। यथा रूपत्वरसत्वादिधर्मा:। तेषामेकाधिकरणवृत्तित्वाभावात् परस्परविरूद्धधर्मवत्त्वं सिध्यतीति। विभाज्यं कारणं, विभाज्यतावच्छेदकधर्म: कारणत्वमिति। विभाजकधर्मा: यथा समवायिकारणत्वम्, असमवायिकारणत्वम्, निमित्वकारणत्वञ्चेति। एते धर्मा: कारणत्वस्य साक्षाद्व्याप्यत्वेऽपि परस्पराविरूद्धा:, एकाधिकरणवृत्तित्वात्। यथा घटसमवायिकारणकपालप्रत्यक्षे तद्विषयकजन्यज्ञानस्य समवायिकारणमात्मा, चक्षुर्कपालसंयोग: असमवायिकारणं, कपालस्तु निमित्तकारणमिति। एवं घटस्या समवायिकारणं कपालद्वयसंयोग: प्रत्यक्षं प्रति निमित्तकारणं भवति। तथा च ज्ञानसमवायिकारणमात्मा ईश्वर: वा जन्यपदार्थानां सामान्यकारणत्वेन प्रतिभाति सदैव। ननु प्रत्येककार्यस्य पृथक् विशेषकारणविभागनिर्धारणेन संशयनिराकरणमिति चेत्, न समवायिकारणादीनामनन्तप्रसङ्गात्। तच्च विशेषकारणविभागनिर्धारणं यथा घटकार्यमात्रस्य कपालं समवायिकारणं, कपालद्वयसंयोग: असमवायिकारणं सिद्धम्। नैतस्य व्यतिरेक: कदापि सिध्यतीति। एवं प्रत्येककार्यस्य अध्याहारप्रसङ्ग:। अत: लाघवात् कारणसामान्यज्ञानमेव स्वीकरणीयम्। नात्र जातिवाचकत्वेन सामान्यपदाध्याहार:। कारणविषयकसार्वत्रिकज्ञानमत्र विवक्षितम्। तस्मात् कारणता कारणत्वं वा विभाज्यं, तदवच्छेदकधर्म: कारणतात्वमिति। तेन समवायिकारणतात्वम्, असमवायिकारणतात्वम्, निमित्वकारणतात्वञ्च विभाजकधर्मा:। अनेन पूर्वोक्तं विभागस्वरूपं संगच्छतेऽत्र। समवायिकारणतात्वावच्छिन्नेन समवायिकारणतामात्रस्य संग्रहणात् नात्र घटादिपदार्थसकलानामन्तर्भावापत्ति:। अयमाशय: सामान्यत्वात् समवायिकारणता समवायिकारणत्वं वा कपालादिसमवायिकारणेषु वर्तते। तेन समवायिकारणत्वादीनाम् एकाधिकरणवृत्तित्वप्रसङ्ग: न सिध्यति। तस्मात् भाषापरिच्छेदकारस्य समवायिकारणत्वमिति पदस्यार्थ: समवायिकारणतात्वावच्छिन्नेन ग्रहणीयम्। एवमितरयोरपि बोध्यव्यम्। न्यायनयज्ञैरेव एतत्सर्वमवगन्तव्यम्। ननु तर्कसंग्रहादिग्रन्थोक्तं कारणभेदनिर्वचनं व्यर्थं साक्षात् कारणस्य विभागवचनादिति चेत्, न। तत्रापि कारणभेद: पूर्वोक्तशास्त्रानुरोधमेव कृत: ग्रन्थकारेण। परन्तु साक्षात् पदाध्याहारेण नोक्तम्। वस्तुत: बालानां सुखबोधाय लिलेख तर्कसंग्रहमन्नंभट्टोपाध्याय:। कारणस्योपर्य्युक्तं विश्लेषणं बालानां सुखबोधान्तराय:, अत: तन्नोक्तमिति ग्रन्थकार: मन्ये।

ननु कारणत्वविभागनिर्वचने विश्वनाथोपाध्यायेन कारणत्वं हेतुत्वमिति भिन्नपदद्वयाध्याहारे का युक्ति:? यत: प्रथमपदमात्रेण कार्यसिद्धत्वात् किमर्थं द्वियीयस्य संग्रह:? इत्यस्मिन् विषये महादेवभट्टेन रामरूद्रभट्टाचार्येण च किमपि नोक्तम्। वस्तुत: सर्वत्र कारणत्वपदस्यैव व्यवहार: परिलक्ष्यते। विश्वनाथोपाध्यायेन स्वयमपि सिद्धान्तमुक्तावल्यां कारणत्वपदमध्याहृतम्। तस्मादेवं भवितुमर्हति। यथा उक्तपदयो: अर्थाध्ययनादस्माभिर्ज्ञायते कारणत्वं नाम कार्योत्पादकत्वमिति। ननु तादृशसामर्थविशिष्टत्वादसमवायिकारणस्यापि तच्छंज्ञालाभप्रसक्ति:। तस्मादुत्पादकत्वञ्चात्र कारणतावच्छेदकसम्बन्धनिरूपितम्। तेन कार्याधिकरणे तादृशसम्बन्धवृत्तित्वेन विवक्षितकार्यपदार्थं प्रति मुख्यं कारणं तावत्

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 Since 2010

समवायिकारणम्। समवायिकारणसापेक्षं तावदसमवायिकारणं तत्कारणप्रत्यासन्नत्वात्। इदानीं हेतुत्वपदार्थविमर्शः। उक्तपदस्यात्र द्विविधोऽर्थः ग्रहणीयः। आद्यस्तत्र साधकतममिति। यथा पटकार्यस्य तन्तुसंयोगः। न तु पटसमवायिकारणविच्छिन्नतन्तसमूहेन तुरीवेमादिनिमित्तकारणसमूहेन च पटोत्पत्तिर्सम्भवेत्। यतः विच्छिन्नतन्तुतः पटं न जन्यत इति। तादृशतन्तूनां विशेषक्रमेण संयोगेन पटोत्पत्तिर्भवति। अतः सकलभावकार्याणाम् असमवायिकारणमेव साधकतममित्यभिप्रायः। अभावस्य समवायिकारणाभावात् न तु तस्य असमवायिप्रसङ्गः। शब्दशास्त्रे सामान्येप्सितमात्रे ईप्सितपदार्थे सम्प्रदानकारकं संयुज्यते। परन्तु तस्यैव पदार्थस्य ईप्सिततमत्वेन कर्मसंज्ञा सिध्यति। अत्रैवं बोध्यव्यम्। साधकं समवायिकारणं, साधकतममसमवायिकारणमिति यावत्। हेतुत्वपदस्य शेषः अर्थः ज्ञापकमिति। तेन घटादिकार्याणां तत्तन्निमित्तकारणानि सिध्यन्ति सामर्थ्यविशिष्टत्वात्। यथा न तु कदापि घटकार्यं प्रति तुरीतन्तुवायादीनां निमित्तकारणता सम्भवेत् सामर्थ्याभावात्। एवं सर्वत्र बोध्यव्यम्।

- **समवायिकारणम्**

तर्कसंग्रहकारेण अन्नंभट्टोपाध्यायेन कारणलक्षणनिरूपणावसरे प्रोक्तम् 'यत्समवेतं कार्यमुत्पद्यते तत्समवायिकारणम्'[333] - इति। यस्मिन्नधिकरणे जन्यपदार्थः समवायसम्बन्धेन जायते तदधिकरणं समवायिकारणमिति वाक्यसामान्यार्थः सुस्पष्टः। अतः वचनस्यास्य यथार्थगूढार्थबोधार्थं गोवर्धनमिश्रेण न्यायबोधिन्यामुक्तम् 'समवायसम्बन्धावच्छिन्नकार्यतानिरूपिततादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नकारणत्वं समवायिकारणत्वम्'[334] इति। कार्यपदार्थस्य कारणपदार्थवृत्तिसम्बन्धः समवायः कार्यतावच्छेदकसम्बन्धः, कारणपदार्थस्य कार्याधिकरणवृत्तिससम्बन्धः तादात्म्यं कारणतावच्छेदकसम्बन्धश्चेति। भाषापरिच्छेदकारमते 'यत्समवेतं कार्यं भवति ज्ञेयन्तु समवायिजनकं तत्' - इति। यत्र समवेतं सत्कार्यमुपपद्यते तत्कार्याधिकरणं समवायिकारणमिति। कार्याधिकरणवृत्तिश्च कारणतावच्छेदकसम्बन्धेन ग्रहनीयम्। स च सम्बन्धः विभिन्नाः। तथा च स्वकारणतावच्छेदकयद्धर्मविशिष्टे यद्धर्मविशिष्टं कार्यं समवायेनोपपद्यते तद्धर्मावच्छिन्नं प्रति तद्धर्मावच्छिन्नं समवायिकारणमित्यर्थः। यथा तन्तवः पटस्य समवायिकारणम्। पटः कार्यमवयवी; तन्तवोऽवयवाः। तस्मात् तयोः सम्बन्धः समवायः। तन्तुषु तन्तवस्तादात्म्येन वर्तन्ते। अतस्तन्तुनिष्ठा कारणता तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्ना, पटनिष्ठा कार्यता समवायसम्बन्धावच्छिन्ना। पटत्वावच्छिन्नं कार्यं पटः पटकारणतावच्छेदकतन्तुत्वावच्छिन्ने तन्तुषु समवायसम्बन्धेनोत्पद्यन्त इति पटत्वावच्छिन्नं प्रति तन्तुत्वावच्छिन्नं समवायिकारणम्।

समवायसम्बन्धेन घटाधिकरणे कपालादौ कपालादेस्तादात्म्यसम्बन्धेनैव सत्त्वात् समवायसम्बन्धाावच्छिन्नघटत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपिततादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नकपालत्वावच्छिन्नकारणतायाः कपालादौ सत्त्वाल्लक्षणसमन्वयः। किं बहुना समवायेन जन्यभावत्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्यसम्बन्धेन द्रव्यस्यैव कारणत्वाज्जन्यभावेषु द्रव्यगुणकर्मसु द्रव्यमेव समवायिकारणं भवति। अयमाशयः समवायेन गुणकर्मादिषु घटादिजन्यद्रव्यानां वृत्तित्वाभावात् शास्त्रासिद्धाच्च गुणकर्मादीनां समवायिकारणत्वापत्तिः। अतः जन्यद्रव्ये तत्तद्रव्यावयवाः समवायिकारणस्वरूपाः भवन्तीति न्यायसिद्धान्तः। तथोक्तं विश्वनाथेन 'समवायिकारणत्वं द्रव्यस्यैवेति विज्ञेयम्' - इति।

ननु पटादयो यदैव जायन्ते तदैव तद्गतरूपादयोऽपि जायन्ते, तस्मात् तयोः कार्यकारणसम्बन्धः नास्तेव, समकालीनत्वेन पौर्वापर्याभावादिति चेत्, न। गुणगुणिनोः समकालीनोपपत्तिप्रसङ्गापत्तेः। न च तयोरेककालीनत्वं शास्त्रसिद्धम्। यथा द्रव्यं

---

333 त.सं. पृ०सं० 98.

334 तर्क.न्याय. पृ०सं० 44.

CONTACT US- JAHNAVISANSKRITJOURNAL@GMAIL.COM WEBSITE-JAHNAVISANSKRITEJOURNAL.IN

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

निर्गुणमेव प्रथममुत्पद्यते, अनन्तरं तत्र गुणादयः उत्पद्यन्ते। समकालोत्पत्तौ गुणगुणिनोः अभेदप्रसङ्गः। अपि च तेन तयोः कारणसाजात्यप्रसङ्गः। शास्त्रविरुद्धत्वात् तत् असम्भवः। तस्मात् गुणेभ्यः पूर्वभावित्वाद् द्रव्यं हि गुणादीनां समवायिकारणम्। न च प्रथमे क्षणे गुणाश्रयत्वाभावाद् द्रव्यत्वापत्तिरिति वाच्यम्, गुणाश्रययोग्यत्वं द्रव्यत्वमिति द्रव्यलक्षणात्। योग्यता च गुणानामत्यन्ताभावाभावः। अर्थात् प्रतियोगिव्यधिकरण-गुणाभावाभावो हि गुणाश्रययोग्यता। तेन यद्यपि उत्पत्तिक्षणे जन्यद्रव्ये गुणाभावो विद्यते, तथपि द्वितीयक्षणे गुणाभावस्य प्रतियोगिनः गुणस्योदयात् गुणाभावः प्रतियोगिव्यधिकरणो न भवति। तेन प्रतियोगिसमानाधिकरणगुणाभावस्य जन्यद्रव्ये विद्यमानत्वात् गुणाश्रयत्वं द्रव्यत्वमिति द्रव्यलक्षणं प्रथमे क्षणे जन्यद्रव्ये समन्वितम्। तस्मान्नाव्याप्तिः।

- **असमवायिकारणम्**

असमवायिकारणशब्दस्य यथाश्रुतार्थस्तावत् समवायिकारणभिन्नजातीयः समवायसम्बन्धावृत्तिपदार्थविशेषः। परन्तु अनेन असमवायिकारणनिर्वचनेन निमित्तकारणे विवक्षितलक्षणस्यातिव्याप्तिप्रसक्तिः। यथा घटोत्पत्तौ समवायिकारणकपालभिन्नजातीयस्य कुम्भकारस्य समवायेन कपालावृत्तित्वात् तस्यासमवायिकारणापत्तिः। असिद्धः हि तत्। अतः न समवायिकारणमसमवायिकारणमिति नञ्तत्पुरुषसमासनिष्पन्नेन तदर्थं ग्रहणीयम्। नन्वत्र नञः कोऽर्थः? यतः नञः षड्विधार्थाः शब्दशास्त्रप्रसिद्धाः। न चात्र नञोऽभावरूपार्थो विवक्षितः। तेन निमित्तकारणे तुरीवेमादावतिव्याप्तिप्रसङ्गः, समवायिकारणभिन्नत्वात्। अतोऽत्र नञः सादृश्यरूपार्थ एव विवक्षितः। यथा समवायिकारणभिन्नत्वे सति समवायिकारणसादृश्यत्वमसमवायिकारणत्वमित्यर्थः। ननु किं तावत् सादृश्यम्? समवायिकारणवत् असमवायिकारणमपि कार्यपूर्ववृत्ति कार्यकालवृत्ति च भवेत्। तथा चासमवायिकारणनाशे समवायिकारणनाशवत् भावकार्यनाशः सम्भवेदित्युभयोः सादृश्यम्। विश्वनाथपञ्चाननेन सिद्धान्तमुक्तावल्यामुक्तम् 'समवायिकारणे आसन्नं प्रत्यासन्नं कारणं द्वितीयमसमवायिकारणम्'[335] - इति। समवायिकारणप्रत्यासन्नत्वे सति कार्योत्पादनसामर्थावच्छिन्नत्वमसमवायिकारणत्वम्। प्रत्यासन्नत्वं समवायेन समवायिकारणवृत्तित्वम्। यथा तन्तुसंयोगः पटस्यासमवायिकारम्। गुणपदार्थत्वात् तन्तुसंयोगः पटसमवायिकारणे तन्तुषु समवायेन विद्यमानः सन् पटमुत्पादयति। न हि विच्छिन्नतन्तुतः पटोत्पत्तिर्सम्भवेत् संयोगाभावात्। कार्यैकार्थप्रत्यासत्तिकारणैकार्थप्रत्यासत्तिभेदात् असमवायिकारणस्य समवायिकारणप्रत्यासन्नत्वं द्विविधम्। तर्कसंग्रहकारेण अन्नंभट्टेनोक्तम् 'कार्येण कारणेन वा सहैकस्मिन्नर्थे समवेतत्वे सति यत् कारणं तदसमवायिकारणम्' - इति। तत्र कार्येण पटेन सहैकस्मिन्नर्थे तन्तौ समवेतत्वात् तन्तुसंयोगः कार्यस्य पटस्यासमवायिकारणमिति कार्यैकार्थप्रत्यासत्तिः। पटसमवायिकारणेन तन्तुना सहैकस्मिन्नर्थे तन्तौ समवेतत्वात् तन्तुरूपं पटरूपस्यासमवायिकारणम्।

ननु किमर्थमिदं भेदनिरूपणम्? वस्तुतः असमवायिकारणं साक्षात्सम्बन्धेन (समवायेन) परम्परासम्बन्धेन (स्वसमवायिसमवायेन) च सम्भवति। कार्येण - इत्यत्र पटस्यासमवायिकारणं (तन्तुसंयोगः) गुणपदार्थत्वात् पटसमवायिकारणे (तन्तौ) साक्षात् समवायसम्बन्धमात्रवृत्तित्वेन पटमुत्पादयति। पटसमवायिकारणेन - इत्यत्र गुणपदार्थत्वात् तन्तुरूपं (स्व-) पटसमवायिकारणे तन्तौ (समवायि-) समवायसम्बन्धमात्रवृत्तित्वेन पटसमवेतपटरूपं (समवायः) उत्पादयति। अतः स्वसमवायिसमवायसम्बन्धत्वेन तन्तुरूपं पटरूपस्यासमवायिकारणम्। भावजन्यपदार्थानाम-समवायिकारणं सदैव गुणकर्ममात्रं भवत्येव। भाषापरिच्छेदकारमतानुसारं 'गुणकर्ममात्रवृत्ति ज्ञेयमथाप्यसमवायि हेतुत्वम्' - इति। अतः

---

[335] कारि. पृ०सं० 114.

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

समवायस्वसमवायिसमवेतत्वान्यतरसम्बन्धेन समवायिकारणे प्रत्यासन्नत्वे सत्यात्मविशेषगुणान्यत्वे सति कारणत्वमसमवायिकारणत्वमिति।

- **निमित्तकारणम्**

अन्नंभट्टमहाभागेन निमित्तकारणलक्षणनिर्वचने प्रोक्तम् 'तदुभयभिन्नं कारणं निमित्तकारणम्'[336] - इति। विश्वनाथमहाभागेन 'आभ्यां परं तृतीयं स्यात्'[337] - इति। अत्र तदुभय, आभ्याम् - इति पदद्वयं समवाय्यसमवायिकारणद्वयोपलक्षकम्। तेन च समवाय्यसमवायिकारणभिन्नं शेषः कारणं निमित्तकारणमित्यर्थः। ननु समवायिकारणासमवायिकारणभिन्नत्वमात्रोक्तौ प्रतियोगिनोः भिन्नं भिन्नं कार्यं प्रति भेदसत्त्वात् निखिलकार्यजातस्य अतिदुर्विज्ञेयतया तत्प्रतियोगिरूपेण समवाय्यसमवायिकारणद्वयस्याविज्ञानात् न तद्भिन्नत्वेन लक्षणं वाच्यमिति चेदुच्यते समवायिकारणत्वासमवायिकारणत्वाभ्यामित्यर्थः तदुभय, आभ्याम् - इति पदद्वयेन बोध्यः। भावप्रधाननिर्देशात् सर्वेषां समवायिकारणानां तथासमवायिकारणानाञ्च निर्देशो भवेत्।

निमित्तकारणभेदात् कारणतावच्छेदकसम्बन्धोऽपि विभिन्नो भवति। तदुदाहरणं तथा घटं प्रति दण्डः स्वजन्यभ्रिमजन्यभ्रिममत्वसम्बन्धेन निमित्तकारणम्। अतः कार्यतावच्छेदकसम्बन्धेन घटाधिकरणे कारणतावच्छेदक-स्वजन्यभ्रिमजन्यभ्रिममत्वसम्बन्धेन योऽभावः तस्याप्रतियोगी दण्डः। तेन दण्डे निमित्तकारणलक्षणसमन्वयः। एवं तुरीवेमादिकं पटस्य निमित्तकारणम्।

तच्च निमित्तकारणं साधारणासाधारणभेदात् द्विविधम्। तत्र कार्यसामान्यं प्रति साधारणनिमित्तकारणानि अष्टविधानि। यथा ईश्वरः, तज्ज्ञानेच्छाप्रयत्नाः, दिक्कालावदृष्टं, तत्तत्कार्याणां प्रागभावश्चेति। प्रतिबन्धकसंसर्गाभावस्तु नवमं साधारणनिमित्तकारणमिति प्राचीननैयायिकाः। असाधारणनिमित्तकारणानि तु कार्यभेदेनानेकविधानि।

- **उपसंहारः**

एवं विचार्य वक्तुं शक्यते यत् यद्यपि जगतो विश्लेषणार्थं कारणविषये सर्वेषु दर्शनेशास्त्रेषु समृद्धालोचना सुष्पष्टा तथापि समवायसम्बन्धमङ्गीकुर्वतां न्यायवैशेषिकाणामभिसम्मतं कारणलक्षणं निर्दुष्टम्। अर्थात् मुण्डे मुण्डे मतेर्भिन्नत्वाद् यद्यपि कार्यकारणसम्बन्धविषये सर्वेषां मतिर्भिद्यते, तथापि नैयायिकमतिरेवाग्रगण्या। यद्वा भवतु कारणविषये शास्त्रेष्वतिविवेचनात् तस्य प्राधान्यत्वं प्रतिष्ठते। पूर्वोक्तविश्लेषणेन अवगम्यते अन्नंभट्टोपाध्यायः बालानां सुखबोधायः तर्कसंग्रहः लिलेख। तेषाञ्च बालानां स्वरूपं तावत् ग्रहणधारणपटुत्वमिति। व्याकरणादिशास्त्रपरिज्ञाते सति न्यायशास्त्रज्ञानरहितः बालः। अतः तादृशबालानां समीपे प्रथमन्यायपाठः कथङ्कारं सुलभबोधकः भवेदिति विचिन्त्य अन्नंभट्टोपाध्यायेन तर्कसंग्रहः विरचितः। परन्तु न तादृशबालानां बोधगम्यः स्वल्पायाससिद्धः किल भाषापरिच्छेदः। नव्यन्यायानुगामिना विश्वनाथपञ्चाननेन प्रियशिष्यस्य पौत्रस्य वा राजीवस्य कृते न्यायवैशेषिकतन्त्रसिद्धविषयाः विषदीक्रियन्ते भाषापरिच्छेदे। परन्तु ग्रन्थस्य विषयोपन्यासरीतिः, पारिभाषिकपदसंग्रह इत्यादिविषयविवेचनात् ज्ञायते नासीत् ग्रन्थस्याधिकारी राजीवः बालः। वस्तुतः अभिन्नेऽपि प्रतिपाद्ये प्रतिपादनरीतिर्भिन्ना उक्तग्रन्थयोः। अतः यथार्थज्ञानवतां समीपे सामान्यतः विषयसंशयः न परिदृश्यते।

---

336 त.सं. पृ०सं० 98.

337 कारि. पृ०सं० 114.

CONTACT US- JAHNAVISANSKRITJOURNAL@GMAIL.COM WEBSITE-JAHNAVISANSKRITEJOURNAL.IN

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

BIBLIOGRAPHY

1. Bhārgava, Dayānanda. Edit. Tarkasaṃgrahaḥ. Motīlāla Banārasīdāsa. Delhi – 110 028. 2001.
2. Ṇyāyācārya, Srī Ānandā Jhā. Edit. Tarkasaṃgraha-Nyāyabodhinī. Sīta Sāhitya Sadana. Kasi.
3. Śarmā, Ātmārāma, Edit. Kārikāvalī. Raṣtrīya Saṃskrita Saṃsthāna, Delhi – 110 058. 2002.
4. Swāmī, Mādhavānanda. Edit. Bhāṣā-Pariccheda. Advaita Ashrama. Calcutta -13. 1954.
5. Tarkāchārya, Kālipada. Edit. Navyanyāyabhāṣāpradīpaḥ. Sanskrit College. Calcutta. 1973.
6. Sastry, Gourinath. Edit. Tarkabhāṣā. Chaukhamba Orientlia. Delhi – 110 007. 1979.
7. Śāstrī, Gaṅgādhara. Edit. Nyāyasūtras. Vol-IX. E. J. Lazarus & Co, Benares.

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

Revisiting Old Values in Indian Education System

Dr. Deepika Pandey
Asst. Professor (Sanskrit),
Govt. Degree College, Shitlakhet, Almora,Uttrakhand

SID- 348808376

Received on- 8/27/2020 17:47:45 | **Accepted on-** 26th January, 2021

Keywords- Aparavidya, Pavidya,Dharma,Spirituality,Ataman Jyana.

ABSTRACT

The present system of education has come out with several new ideologies and methodologies to make a student more knowledgeable more equipped with modern technology and compatible with the rest of the world. This system of education teaches knowledge at only one level i. e. about the things concerning the world of senses which comprises of almost all known in ancient Indian scripture is known as "Apara Vidya''. This termed as lower knowledge with which physical happiness, material gains, sense pleasures are achieved. In *Bhagvat Geeta* "Aahar, Nidra, Bhaya And Methuna" means eat, sleep, fear and sexual pleasure are termed common to all creatures.The real knowledge or in vedic system higher knowledge "Para Vidya" helps a man to realize the self. 'Atma Jyana' real knowledge is that which helps us to control our senses. Vedanta treats "Para Vidya''as the channel for the spiritual energy hidden in every human being to flow out into life as "Dharma" or the science of values. Vedic system tells that the combination of "Apara Vidaya" and "Para Vidya" only can give perfect education.

Introduction*:*

"I cannot teach anybody anything; I can only make them think"- SOCRATES

Education is the process of facilitating learning or acquiring knowledge, skill, values, beliefs and habits that aim at bringing a desired change in the learner. The value education is emphasized from time immemorial be it the age old Gurukula in India, the academy of education in the form of Nalanda and Taxila University of old India and academic excellence of ancient world. Formal education happens in a structural environment in which students train with certified teachers in system defined by goals, objectives, curriculum, teaching –learning and assessment methods, and in inbuilt or external mechanism for accreditation and program evaluation. The other aspects of informal education is inculcating values among students such as self-reliance, fearlessness, compassion and a spirit of survive. Education means

transformation of life from instinctual to intellectual to intuitional level[338]. This paper analyses the problem of present education and at the same time revisits the old values in Indian education system. This paper also tries to find out how education and social values are correlated with each other.

Education and Social Values: Religion and values are two words which every nation believes to be necessary but when it comes to working them out the merely stay s an idea and remain there. The proof is present state of world culture that prevails over the nations, including India, where one sees only materialistic pursuits as the main necessity and possibly the only goal of life. However, we Indian ought to know that India is the only country where supreme necessity and all other goals such as wealth, name and fame, desire are pursued only to attain the highest goal that is GOD or 'Sa Vidya ya vimkatya[339]'. It is experienced time and again that survival of any nation or culture needs strong value system with morals and ethics. There are certain basic values which are 'eternal' and known as well as understood from ages around the globe with passing of time many new developments and growth in every walk of life in each and every nation and culture have considerably expanded the scope of value more than ever before. As well as we all knows values are eternal. They cannot be changed. Only the expression, application and modes of action keep changing. So, it will not be out of context to retreat them in present situation. India has to walk along with other nation in technology and politics but it has also to know where the road leads to. To show the path and destination, great Rishis like **Shankara, Buddha, Mahaveera, Dayananda and Swami Vivekananda** emerged at various critical juncture. Today we are at such a critical juncture where the entire face of India and the world is undergoing a scientific, political and social reformation. To give our education a humanitarian face we have to emphasize on-Man Making and National Building education system envisioned by Swami Vivekananda. human life better not only through economic upliftment of invid Education should aim at making ual but also through social, moral and spiritual strengthening. This will not only improve human life but also help to realize the 'Higher Truth', i.e '**Tamsoma jyotirgamaya**[340]'

From darkness to light. This education is not only a way of earning it also help to develop human personality with skills, values and morals etc.So, education is vital means for the personalities of human beings to emerge in a positive direction so that a man can live in a society with full dignity.Values and morals are inbuilt in human beings and educaton should help in the improvement if human character and recognition of their inner purity. So, the essential part of the education system should emphasize the values and morals with other development .

EDUCATION SYSTEM PRESENT AND PAST: The education system formulated by Macaulay in 1836 was more to enslave the Indian mind. To make them obedient servant and workers to serve the British Raj. This way the Indians were alienated from Vedic culture and education. The western system of education took the place of Vedantic system / Gurukul system

338 The essence of upnishada by Shri Aurobindo, Edited by Aurobindo ashram trust PP.168
339 Practical Vedanta The new management philosophy of Swamvivekananda ,Edited by Swami Jitanmananda PP 267-268
340 The complete works of swami Vivekananda by Advaita ashram Kolkata P-192

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

of education[341].The English language slowly weaned off our educated mass from Sanskrit language. This intern took the Indians away from their classical heritage, spiritual knowledge, cultural and social originality and political traditions because all of these was treasured in Sanskrit language. so, the introduction of western system of education started the process of erosion of indigenousness in all walks of life. Since education plays a very crucial and key role in forming the character of the society and of the whole nation, this erosion has become one of the important causes giving rise to the present scenario and chaotic condition of the nation.
The present system of education teaches knowledge at only one level i.e., about the things concerning the world of senses, which comprises of almost all known science, humanities, art and craft of the time, technology and engineering etc. This is only the lower knowledge as 'Apara Vidya' in Indian scripture[342]. It provides knowledge about the outside world i.e. the world outside the 'SELF'.t This knowledge gives control over nature, with which physical happiness, material gains, sense pleasure are achieved.
The Vedic system i.e., ancient system of education on other hand included all of the above. In addition to "Apara-Vidya" it also included the higher knowledge called "Para-Vidya". It provides knowledge about the inner self i.e. The world "WITHIN the SELF". The former gives knowledge of the physical science while the latter gives the knowledge of science of spirituality. The control system in a man which can make him apply his knowledge only to useful purpose and never otherwise. What can be called his character and this is acquired through "para-vidya". The 'buddhi 'the discriminative faculty in the human beings when it is truly used, it is not under thralldom to sensory system, it is something unique; Vedanta treats it as the channel for spiritual energy hidden in every human being to flow out into life as 'dharma' or science of values. Para –vidya gives knowledge to develop this channel to manifest spiritual energy in life.The combination of 'Para-vidya' and 'Apara-vidya 'only can give perfect education.

The Science of values: The Sanskrit for values is 'Dharma' or 'Sadachara'. Dharma as described in Indian scripture is 'the set of values that sustain creation without which the very existence of it would be threatened'. Sankaracharya defined Dharma as the value that sustain human beings and helps them to enjoy happiness both in this world as well as in the spiritual world[343].

With the advent of industrialization and westernization, too much stress put on technological, industrial, scientific and physical advancement but very little stress was put on science of values i. e. Dharma consisting of ethical, moral and humanistic attitude and action. As a result, the absence of the moral and humanistic value sense is prevailing in every walk of life.

One who does not understand and experience the science of values cannot look beyond one's own profit and pleasure, cannot discriminate between right and wrong. As a result, whatever concludes to one's own profit and pleasure, that alone is good; without Hinduism or Vedanta, the end portion of the Vedas, the accumulated treasury of the knowledge that has been revealed to saints and Gurus shows us right path. Hinduism or Vedanta is is the synthesis of all faiths of the world. It excludes none, but harmonizes all, sympathizes with all. It shows the ways to material, moral, intellectual and spiritual advancement. These were stored in sacred spiritual

[341] Source of Indian traditions Written by Bury, W.T. ,Macmillan press pp-27-29
[342] Philosophical values written by DR.S Radhakrishnan, Oxford PressLlondon,P-189-190
[343] Value of education Written by B Sailaja, Published in types of India 2011 P-56

scriptures. As time went by these scriptures remained with only few RISHIS, seers of spiritual revelations (highly, advanced spiritual giants) and scholars. The essence of Hindu Philosophy was confined to hermitages and monasteries. In course of time and in the wake of India's contact with the west and in the process of westernization, the rich cultural and traditional heritage moved far away from the common man. Swami Vivekananda, the Indian monk of the Modern era tried to bring back this hidden wealth into the life of the common man through "Practical Vedanta". Vivekananda brought a marvelous orientation to the predominantly intellectual Vedanta and coined the phrase "Practical Vedanta" [344]. For the first time he infused onto much misunderstood "religion" a dynamic power and altruistic action with the spirit of service to God not only in temples or churches or mosques but also in all living beings, especially the "have nots" With the ideal of Practical Vedanta, Vivekananda brought a new meaning and spirit of work, for providing excellence in all spheres of national life.

Conclusion: The Present system of education in variety of fields merely helps acquiring information and job skills. The real education whether it is dealing with children, adults managers administrators' technocrats etc. is the pursuit of knowledge with a humanistic impulse. In the absence of human concern, tax-evasion, smuggling, lack of citizenship virtues like duty, personality, honest work for the remuneration one gets, and public spirit. The types, varieties and range of social malpractices that people indulge into are unprecedented, not only in our own history but in all human history. Along with the physical malnutrition of millions, the spiritual malnutrition of the educated and well-fed classes of the world today is writ large in every field of activity. The history of great nations had proven time and again that no nation, no culture can survive without the strong value system morals and ethics. For example, the great Greek culture in spite of developing external perfection in arts and science degenerated and finally dies due to lack of moral and ethical culture. The Roman civilization despite its perfection in law and administration slowly degenerated and collapsed because of its neglect of moral and ethics. In India on the contrary, spirituality was practiced at the cost of material culture. As a result, this Hindu spirituality ended in 'Impracticality', leading to poverty and alien domination for centuries. The need of the hour is, as foreseen by the great patriot saint, Swami Vivekananda one hundred and fifty years ago, "the birth of a new civilization with combination of Greek perfection in external life minus its 'Immortality', Roman perfection in administration minus its 'cruelty', and the Hindu perfection in spiritual Sciences minus its 'Impracticality'." The process is definitely not as simple as it would seem, but at the same time not impossible either. With patience and perseverance, it can be achieved. In the world of Swami Vivekannda, the great prophet and uncommon monk of our time; " Arise, Awake and stop not till the goal is reached".

The declining of the ethical values in education system will rise to unskilled professionals and undisciplined students. This trend needed to be addressed if India has to survive as a nation and acquired its due place in the world.

[344] Swami Vivekanada in the west. Written by Mary Lewis Berkey. Published by Advaita Ashram Kolkata.P-267-269

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

BIBLIOGRAPHY

- Dr. Khalifa Abdul Hakim “The Prophet and His Message” published by institute of Islamic culture, Lahore.
- Practical Vedanta the New Management Philosophy of Swami Vivekananda a lecture given by Swami Jitatmananda in Japan.
- Radhakrishna S. philosophical values, Oxford Press London.
- Ritimoni Baradolio (2011): Challenges in Elementary Education in India
- Sailaja B, Value education in times of India Date.Nov18,2011.
- Sri Aurobindo “The Upanishads” published by Sri Aurobindo Ashram Trust, Pondicherry 1992.
- Swami Vivekananda The Complete Works of Swami Vivekananda.vol.4 pp no. 490 published by Advaita Ashram, Calcutta,1987

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021

Since 2010

Relevance of Yogashastra in Preservation of Human Life

Mrs. Soma Dey
University of North Bengal,
Raja Rammohanpur, Siliguri, West Bengal, 734014, India

SID- 374008121

Received on- 1/20/2021 10:13:29 | **Accepted on-** 26th January, 2021

Keywords- Yogashastra, Ashtanga Yoga, Hatha Yoga, Natural medicine, Human life, Health awareness.

ABSTRACT

At the present time, that is, standing in a scattered state of machine civilization, physically, the mental fragility is increasing. The distance between man and nature is increasing day by day, people are becoming machine dependent. The need for Yoga is increasing for the peace of both physical and mental. Although Maharshi Patanjali's 'Yogashastra' emerged in ancient India, Yoga is now widespread throughout the world. 'Yogashastra' is an invaluable resource in the ancient traditions of India. Yoga is the physical and mental control for the purpose of acquiring spiritual knowledge. The 'Yoga practice' is the natural treatment for staying physically and mentally healthy. Patanjali's 'Yogashastra' is known as 'Ashtanga yoga' or 'Rajyoga' or 'Patanjal yoga'. The need for Yoga has been recognized in the 'Vedas', 'Upanishads', 'Puranas', 'Srimadvagbadgita', 'Shivasamhita' and 'Hathayoga Pradipika'. Swami vivekananda delivered Yoga to the whole world through his historical lectures at the Chicago Religious Conference. At a time when the whole world is fighting COVID-19 pandemic, Yoga is becoming more important. Yoga improves immunity, helps fight COVID-19. Thus the relevance of 'Yogashastra' is undeniable for the preservation of human life. Through the brief discussion above, I have tried to discuss the relevance of 'Yogashastra' in this issue in my research paper.

Yoga is now very popular name all over the world. The great poet Kalidasa says that "Sariramadayama khalu dharmasadhanam" that is, if the body is not healthy, no pursuit can be done properly. So the key to staying physically and mentally healthy is the science of Yoga which is called natural medicine. Yoga is a technology; anyone can use this technology. In the 'Srimatbhagbatgita', lord krishna says "Yogah karmasu kausalanam"that is, Yoga is the name of acquiring skill in any work. But the Yoga practice we do now is probably very different from the Yoga of the early period, but this Yoga practice is based on Patanjali's 'Yogashastra'. Patanjali of the 2nd century BC was the pioneer of the Indian Yoga philosophy, philosopher, grammarian and scientist. The antiquity of Yoga history is at least five thousand years or more. It is said that before Patanjali Yajnavalkya sages composed 'Yogashastra'. Maharshi Patanjali disciplined it and later introduced the Yoga discipline, hence it is now known as "Yoga". The word "yoga" is derived from the Sanskrit word 'yuj', which means to add(addition), such as 2+2=4, it's Yoga, but where the word Yoga is derived from the 'yunj' dhatu, Yunj+Ghan='Yoga' means unification, that is unity, coordination. Such a living soul becomes one with the paramatman. The Sanskrit word 'Yoga' is called YOGA in English. Yoga is the method of developing the order of body, mind and soul that

reaches the level of samadhi. The first of the four verses of Patanjali Yoga, Patanjali gives the general signs of Yoga in the second sutra of Samadhi pada, "Yogascittavrittinirodhah", that is, defined Yoga as "the restraint of the modification of the mind". And for this, Yoga practice is required. Swami Vivekananda translates the sutra as "Yoga is restraining the mind-stuff (chitta) from taking various forms (vrittis)". 'Bayadhi' is the origin of any disease in the body, senses and mind. Yoga is essential for the prevention of this 'Bayadhi'. Yoga therapy is the medicine to stay physically and mentally healthy. In Yoga there are many Asana (postures), Pranayam which helps to increase immunity, strengthens the respiratory body. Asana, Pranayam helps prevent Coronavirus (COVID-19).

Literary Review:

Yoga is deeply rooted in India's culture. The Scriptures that discuss Yoga or recognize the need for Yoga are - 'Vedas', 'Upanishads', 'Srimadvagbadgita','Puranas', 'Shivasamhita', various 'Tantras' etc. There is also a description of 'Hathayoga' in the 15th century Svatmarama's 'Hathyoga Pradipika'. The first mention of the word Yoga is found in the 'Katha Upanishad'. Yoga is mentioned in the third balli of the second chapter of the 'Kathopanishad'- " Tang yogamiti

Manhyante sthiramindriyadharanam।

Apramattastada bhabati yoga hi prabhabapayayau॥"[345]

That is, Yoga is the state of restlessness of the sense, mind and intellect. Yogis call this feeling Yoga, because at that time Yogi became free from all things. But there is a possibility of origin and breakage of this Yoga. In the famous 'Gayatri mantra' in 'Rigveda', there is mention of meditation- "Tat sabiturbarenyam bhargo debasya dhimati। dhiyo yo nah pracodayat॥"(3/62/10).[346]

That is, the one who sends us intelligence, we meditate on the admirable toast of that Sabita Dev. As a result of which we are able to perform our duties. "Atma ba Are drastabyah srotabayo mantabayo nididhyasitavyo"(Brhadaranyaka upanishad- 2/4/5)[347] that is the soul will see, will listen, will think, will meditate. The method of 'Brahmaposna' spoken by such self-contemplation is the root of Samadhi Yoga. Thus the method of Yoga has emerged from the path of knowledge. Meditation has been mentioned in the 'Shwetasvatara Upanishad'- "Tatra sanjayate manohara"(2/6) that is, in that state of meditation, the human mind is completely pure. How to meditate is told in the Shwetasvatara Upanishad-

(2/8) that is, the meditative devotee should keep the head, neck and chest in an advanced manner, the body should be kept straight. Then the heart should be restrained by the mind by removing all the senses from external things. Then one should chant onkar and meditate on paramatma and overcome the terrible flow. Ahar biharadi and pranayama have been mentioned-sukta (2/9). The results of meditation have been mentioned in the Shwetasvatara Upanishad-" Na tasaya rogo na jara na mrityu praptasya yogagnimayang sharita"(2/12)[348] that is, by meditation a Yogic body is obtained which does not get cause disease, fever or even death cannot touch him. More has been said-

"Laghutbamarogyamalolupatbam barnaprasadam swarasou sthabam ca।

---

[345] Tang yogamiti manhyante sthiramindriyadharanam।
Apramattastada bhabati yoga hi prabhabapayayau॥

[346] Tat sabiturbarenyam bhargo debasya dhimati। dhiyo yo nah pracodayat॥"(3/62/10).

[347] Atma ba Are drastabyah srotabayo mantabayo nididhyasitavyo"(Brhadaranyaka upanishad- 2/4/5)

[348] Na tasaya rogo na jara na mrityu praptasya yogagnimayang sharita (2/12)

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), **SCOPUS** Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with **Journal Factor**]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in **ISSN**-0976-8645 **ISSUE**-44 , **YEAR** 11, **VOL** -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

Gandhah shuva mutrapurishamalpam yogaprabrittiam prathamam badanti।।13।।"

that is, his body is lightened by the practice of meditation Yoga, he is always healthy . There is no addiction to the vishay, physical radiance is revealed. The tone is very sweet and clear. Fragrance is excreted from the body. The excrement is fine. All this is the first accomplishment of Yogamarga. Yoga is mentioned in the 'Gita'-

"Tang bidyaddukhasanyogabiyogang yogasanjnitam।
Sa niscayama yoktabyo yogasnibirnnachetasa।।"(6/23). [349]

In such a situation (citta vrtti nirodhah) the connection of grief is subtracted, this grief is minus the word Yoga is pronounced. Thus Yoga (is obligatory to practice with perseverance) should be practiced diligently with a merciless mind. Yoga is a combination of mental, verbal and physiological processes in jain philosophy. In buddhist philosophy, search is called Yoga. The signs of Yogasiddhi have been mentioned in the first part of the very ancient book 'Shivasamhita' , if there is faith, there is fulfillment, faith is the first sign of fulfillment. The second is respect, the third is guru puja, the fourth is sign is the feeling of equality, the fifth is sense restraint, the sixth is moderate diet. Apart from this, there is nothing like the seventh sign of Yogasiddhi-
"Phalisayatiti bishwasah siddheh pratham laxmanama।

Dbitiyam sraddhaya yuktam tritiyam gurupujanam।।19।। [350]
Chaturtham samatavabam panchamendriyanigrahama।
Sasthancha pramitaharam saptamam naiba bidayete।।20।।"
Yoga has been mentioned in 'Hatha Yoga Pradipika'-
"Chale bate chalam chittam nischale nischalam bhabet।
Yogi sthanutbamapnoti tata bayum nirodhayet।।2।।" [351]

That is, when the soul becomes running, the heart becomes running and when the soul becomes still, the mind also becomes still and yogi becomes static. For this the Yogi needs to control his breathing. In modern times, i.e. in the twentieth century, Swami vivekananda, sage Arvinda, Sri Sri Ravi Shankar and many other Yogagurus have made Yoga a resource in the world. Swami Vivekananda spoke about 'Rajyoga' in 1895 while lecturing at the Chicago Religious Conference. He writes- "The bottom of a lake we cannot see, because it's surface is covered with ripples. It is only possible for us to catch a glimpse of the bottom, when the ripples have subsided and the water is calm. If the water is muddy or is agitated all the time, the bottom will not be seen. If it is clear, and there are no waves, we shall see the bottom. The bottom of the lake is our own true self; the lake is the citta and the waves the vrittis."
Sri Sri Ravi Shankar has set Yoga up-to-date in the context of the 21th century. Modern postural Yoga, which emphasizes 'Hatha Yoga' i.e. Asana and Pranayama.'Yoga Dipika', written by B K S

---

[349] Tang bidyaddukhasanyogabiyogang yogasanjnitam।
Sa niscayama yoktabyo yogasnibirnnachetasa।।(6/23).
[350] Phalisayatiti bishwasah siddheh pratham laxmanama।
Dbitiyam sraddhaya yuktam tritiyam gurupujanam।।19।।
[351] Chale bate chalam chittam nischale nischalam bhabet।
Yogi sthanutbamapnoti tata bayum nirodhayet।।2।।

IYENGAR in 1966, was first published in english, where there are descriptions of more than 200 Yoga Asanas. The book is described as the Bible of modern Yoga and unprecedented Asanas have been presented. K.pattabhi jois during the 20th century, after being promoted as a modern day form of classical indian Yoga. The first series of Asana sequences in the 'Ashtanga vinyasa yoga'(1948) system is known as the primary series (Yoga chikitsa, Yoga therapy). In modern times, Yoga is being published in many ways to save human life.

Methods: The dissertation analyzes Maharshi Patanjali's 'Ashtanga yoga' using contextual methods and discusses the scriptures on Yoga. Various relevant information on human life preservation Yoga practice has been spread.

Discussion: Here are eight helpful ways of Yoga sadhana have been discussed. The eight limbs of Yoga have been mentioned as a meeting place for mood control i.e. 'Cittabrittinirodha', they are – *" Yamaniyamasanapranayamapratyaharadharanadhyanasamadhayah"* that is,*'Yama'*, *'Niyama'*, *'Asana'*, *'Pranayama'*, *'Pratyahara'*, *'Dharana'*, *'Dhyana'* and *'Samadhi'*- the Eight limbs of Yoga.

Yama:

The first part of purification of mind is Yama- "Ahimsasatyasteyabrahmacharyaparigrahah"(2/30) that is, 'Ahimsa' (Non-violence), 'Satya' (Truthfulness), 'Asteya' (Non-stealing), 'Brahmacharya'(chastity, marital fidelity or sexual restraint), 'Aparigraha' (Non-greed, non-grasping, non-possessiveness)- these fives are 'Yama'. 'Ahimsa' is the act of not to hurt any creatures in body-mind-sentence. In sutra 2/31, Patanjali calls the *Yamas 'Mahabratam'*, which means a great vow. Patanjali states that practice of the Yamas is universal and it should not be limited by class, place, time or circumstances. 'Satya' is the utterance of truthfulness and beneficent perceived by the senses and the mind, which does not concern others. Therefore, the importance of 'Yama' for purifying the human mind is immense.

Niyama:

The second component of Patanjali's Yogapath is called 'Niyama'. 'Sadhan pada' verse 32 lists the Niyamas as "Sauchasantoshatapashsbadhayayisbarapranidhanani niyama"(2/32) that is, Saucha, Santosha, Tapa, Svadhyaya, Ishvara Pranidhana- these fives are Niyama. External purification is the use of water to clean the body, clean clothes, vegetarian food, behaviours etc and Internal defecation is the expression of a sacred and pure heart. Eating habits affect a person's character, so in sattvic food the human mind is slow, steady and calm. Ways to bring purity and serenity of mind is mentioned in verse 33 of 'Samadhi pada'- "Maitrikarunamuditopekshanam sukhduhkshpunyapunyobisoyanam vabnatascittaprasadanam"(1/33). [352]That is why it is very important for every human being to practice these methods. 'Santosha' or satisfaction is not having desire or dissatisfaction, that is, being satisfied with profit. In today's society where human demand is constantly increasing,in this case, fallowing the rules of 'Santosha' is a very effective process and it can also be said to be the best process to stay mentally healthy. 'Tapa' is to happily endure the hardships that come along the way of practicing one's religion. 'Tapasya' is the name of body restraint by vows, fasting etc. Quotes in the 'Gita'-" Karmanye Vadhikaraste ma phaleshu kadacana" that is by performing this tapa in a selfless way the human heart is easily purified. By which the feeling of one's own duty- non-duty is born, the study of mantra japa, Vedas or studying Dharmashastra is called 'Svadhyaya'. Besides, the study of one's own life and the removal of one's

[352] Maitrikarunamuditopekshanam sukhduhkshpunyapunyobisoyanam vabnatascittaprasadanam(1/33).

[A First International Electronic Peer-reviewed Quarterly Refereed-
UGC Approved (41039), SCOPUS Registered Sanskrit Tri-lingual Journal with Journal Factor]
URL- www.jahnavisanskritejournal.in ISSN-0976-8645 ISSUE-44 , YEAR 11, VOL -I, DOI-30-01-2021 | Since 2010

faults by judgement is the name of 'Svadhyaya'. 'Ishvarapranidhana' is the worship of God. Abandonment of karma also means 'Ishvarapranidhana'. These five 'Niyamas' are regular habits, it is necessary to stay mentally healthy.

Asana:

The third component of Patanjali's Yoga path is called 'Asana'. Sitting happily while keeping the body straight and stable is the 'Asana'(posture)- "Sthirasukhamasanam"(2/46). But the Sutrakara did not describe the sitting posture here. Swami Vivekananda said that the 'Asana' - the body should be left relaxed keeping the chest, neck and head straight. In the 'Srimadvagabadgita' , it is said to set up a Yoga posture in a stable and moving manner. Yogashastrakar speaks of the perfection of 'Asana' in two ways- the relaxation of effort and keeping the mind immersed in the thoughts of eternity. 'Hatha Yoga pradipika' written by Swami Svalmarama has mentioned many ways of 'Asana'. At present, everyone understands the 'Asana' of 'Hatha Yoga' as Yoga. 'Hatha Yoga' is only a part of 'Rajyoga'. 'Hatha Yoga' is a scientific method in which the mind and body are coordinated. 'Hatha Yoga pradipika' is said in verse 10 of the first sermon -

Hatha is the sanctuary for those suffering every type of pain.It is the foundation for those practicing every type of Yoga. Verse 17 tells us about the 'Asana'-

"Hathasya prathamangatbadasanam purbamucyate।

Kuryattadasanam sthairyamarogyam cangolaghabam॥"

That is, 'Asanas' are described first because they are the first step of 'Hatha'. They give steadiness, health and lightness of body. Further said eighty-four 'Asanas' were taught by Shiva.

Pranayama:

In 'Yogashastra', it is said that 'Pranayama' is completed after completing the 'Asana'. 'Yogashastrakara' have shown signs of 'Pranayama' - "Tasmin sati sbasaprasbasayorgatibicchedah pranayamah"(2/49) that is, 'Pranayama' is to control the speed of breathing. The stability of the 'Asana' is essential while practicing 'Pranayama'. 'Prana'-prana vayu or breath, 'ayama'-nirodh or restraint. 'Pranayama' means breathlessness. Swami Vivekananda says that 'Pranayama' means knowledge of prana or control of prana. There are three types of 'Pranayama' mentioned in 'Yogashastra'- 'Bahyabritti'(Recaka), Abhyantara britti(Puraka), Stambha britti(Kumbhaka). They also vary according to place, time and number. It has been said in 'Hatha Yoga pradipika', as long as there is air in the body, there is life. Exhalation of air is death. This is why the wind needs to be restrained. 'Pranayama is a subject of physiology. Some important 'Pranayama' such as - 'Kapalbhati pranayama', 'Anulome bilome pranayama', 'Bhramari pranayama', 'Bhastrika pranayama', 'Ujjayi pranayama', 'Chandra bhedi pranayama' etc. It is essential to practice these 'Pranayamas' to stay physically and mentally healthy. 'Pranayama' is another Yoga therapy or natural treatment for staying physically and mentally healthy.

Pratyahara:

'Pratyahara' or restraint of the senses from their objects. The mind-senses are purified by the practice of 'Pranayama'. Then 'Pratyahara' is the name of removing the 'Bahyavritti' from all sides and dissolving it in the mind.

Dharana:

'Dharana-dhyana-samadhi: these three are the methods of moderation (mind restraint). 'Dharana' is to hold the mind on a particular subject that is - "Deshabandhaschittasya dharana"(3/1).

Dhyana:

'Dhyana' or meditation is the seventh of the eight limbs of Yoga. Patanjali says in verse 2 of 'Bibhuti pada' is the nature of meditation - "Tatra pratyaikatanta dhyanam" that is, meditation is the concentration of the mind on a meditative object. Meditation is an exercise of the mind. Meditation means to think, the goal of meditation is to control the mind. And when the mind is restrained, all the senses are restrained. Meditation is a natural healing method of gaining peace of mind. There are different types of meditations according to the rules- Yoga meditation, Ashtanga meditation,Chakravhede meditation, Sufi meditation etc.

Samadhi:

'Samadhi' or super consciousness. 'Samadhi' is the restraint of all the forms of the mind.

Results:

Yoga practice is one of the best practice processes in the world. 'Yogashastra' is a natural medical method or medical science. The basis of Yoga sadhana is 'Yama' and 'Niyama'. These are two ways of purifying the mind. The practice of 'Yama' and 'Niyama' is the best way to build moral character and is the basis of spiritual progress. Where the present society is constantly moving towards degradation, every human being will be saved from the degradation of society if they follow the practices of these 'Yama' and 'Niyama'. At present, it is mandatory to follow the 'Saucha Niyama' as a health provision in the world where the Coronavirus or COVID-19 is infected, where there is a provision for washing hands repeatedly, washing clothes after coming from outside, in Patanjali 'Yogashastra' it is called External defecation or 'Bahyashouca Niyama'. By following these five niyama, goodwill is aroused in the mind and inner anger, envy etc. are destroyed. There is no greater virtue or religion than non-violence. Patanjali says, when non-violence is established in a yogi, even the violent animals leave enmity in his contact - (2/35). When the spirit of non-violence arises in all people, a developed society can be formed, where people can live happily and in peace. The word Yoga is now better known as YOGA. This method of Yoga is known as 'Yoga Therapy' all over the world today, 'Yoga Therapy', which speaks of a disease -free life, has asanas at its core. Daily Yoga practice makes you confident. Useful 'Siddhasana' in case of excessive fatigue, restlessness, stomach ailments, exhaustion, shortness of breath, anxiety, colds etc. 'Padmasana' is very useful for rheumatism, loss of mental balance, maintaining the balance of the triglycerides (air-bile-phlegm) in the body. These two 'Asanas' are currently playing an important role in the COVID-19 pandemic.

'Pranayama' helps us to maintain energy and freshness in our body. Diabetes is one of the biggest problems in the world today. According to the world health organization (WHO), 1.7 million people die from the disease. 'Pranayama', 'yogasana' as a natural medicine plays a huge role in the field of diabetes, which is scientifically proven today. 'Kapalbhati pranayama' is called the cure for diabetes. 'Anulome bilome' eliminates various hormonal problems. According to the health rules those who have diabetes during the corona period can take a serious shape if they have Corona disease, so the practice of 'Kapalbhati pranayama' is very effective for them. 'Bhramari pranayama' solves every problem from blood sugar to cholesterol, thyroid. There are also different types of 'Pranayama' to solve physical and mental problems. 'Asana', 'Pranayama' is a helpful physical process of concentration. Meditation is effective in stomach problems, insomnia, high blood pressure, pain etc. Meditation has a positive effect on people of all ages. Meditation

improves mental health and self-awareness. Meditation improves overall psychological well-being. Different methods of twentieth century meditation were invented.

Now-a-days, it is seen that many people pay more attention to their physical constitution. So go to the GYM to strengthen your body. The gym is absolutely artificial and Yoga is the only natural method. Yoga provides well-being both physically and mentally. Also children, the elderly and pregnant women can all do Yoga as instructed. So Yoga is not an alternative to living in a healthy way and in peace.

Conclusion:

As a result of Yoga practice, not only physical and mental well-being, but in general, it helps in the overall improvement of people, Patanjali's explanation of 'Ashtanga yoga' in 'Yogashastra' is an eternal scientific method. However, the current Yoga practice for staying healthy is more focused on the health of the body than the health of the mind, there is not much importance being given to the basis of Yoga. So the importance of Yoga practice in saving human life is undeniable. Today, the whole world has adopted the practice of Yoga irrespective of race-religion-caste. Especially at a time when there is a pandemic all over the world, the practice of Yoga has reached closer to people. Yoga controls stress, brings peace of mind, joy, happiness and self-awareness, improves quality of life. These positive feelings are one of the foundations of our healthy life. One of the great virtues of mankind is Patience, today, there is a great lack of it. Therefore the importance of tolerance in maintaining peace and order is immense. People can be tolerant only through Yoga practice. The current prime minister of india Narendra modi has declared june 21, 2015 as "International Yoga day". This year, the "International Yoga Day" is celebrated by maintaining social distance due to COVID-19 pandemic. Therefore, it can be said that Yoga is an effective process which leads to greater sense of human worth.

BIBLIOGRAPHY

- Katha Upanishad, Gita Press, Gorakhpur-273005
- Sarbadarshana samgraha (volume 2)- Sayan Madhabiya, Editor. Satyajyoti chakraborty, Sahityasri, Kolkata-9
- Srigita, Edited by Srijagadish Chandra ghosh, Presidency library 15, Kolkata-73
- Svetasvatara Upanishad, Gita Press, Gorakhpur-273005
- Upanishad, Printed & Published by Gita Press, Gorakhpur.
- Veda- Rigveda-Samhita, Pabitra Sarkar, Gouri Prakashan, Kolkata-700389
- Vivekananda Rachana Samagra (1), Translator and Editor. Basanta bhattacharya, Publication, Ashok book agency, 36/B, college Ro, Kolkata 700009
- Yogadarshan- Patanjali, Gita Press, Gorakhpur, 273005.